कामायनी की टीका

श्री तारकनाथ बाली एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

दो शब्द

इससे पूर्व 'कामायनी' की दो टीकाएँ निकल चुकी हैं। एक श्री विश्वम्भर 'मानव' की और दूसरी श्री शिवकुमार मिश्र की। उन दोनों में अर्थ सम्बन्धी भ्रांतियाँ प्रतीत हुईं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१—'चिन्ता' में मनु सोच रहे हैं—

मणिमय दीपों के अन्धकारमय
अरे निराशा पूर्ण भविष्य
देव दम्भ के महामेध में
सब कुछ ही बन गया हविष्य।

श्री विश्वम्भर मानव ने प्रथम दो पंक्तियों का यह अर्थ किया है—

"अब हमारा भविष्य उसी प्रकार निराशापूर्ण और अन्धकार से भरा हुआ है जैसे घोर अँधेरे में मणि का दीपक कहीं रख दिया जाए तो वह बेचारा केवल अपने आस-पास ही थोड़ा प्रकाश फैला सकता है, अपने चारों ओर फैले अपार तिमिर को नहीं चीर सकता। देवताओं में से केवल मैं बच रहा हूँ—किसी मणिदीप के समान—एकाकी क्या कर सकूँगा!"

——कामायनी की टीका—पृ० १४, १५

श्री शिवकुमार मिश्र ने इन पंक्तियों का ऐसा ही अर्थ किया है—

जिस प्रकार मणियों का दीपक अपने आसपास प्रकाश उत्पन्न करता है पर सारे अंधकार को नष्ट नहीं कर पाता, उसी प्रकार आज मेरा भविष्य भी अन्धकार पूर्ण है। मैं भी मणि दीपक के समान ही उसे देख सकने में असमर्थ हूँ। वह निराशा से भरा हुआ है—

—कामायनी और प्रसाद की कविता गङ्गा—द्वितीय खण्ड पृ० ७

मैंने इन पंक्तियों का यह अर्थ किया है—

प्रलय के पश्चात् जो निराशापूर्ण दशा है, वह मणि-दीपों से युक्त भवनों

में रहने वाले देवताओं का भविष्य है। मनु उस ऐश्वर्यशाली जाति के इसी अंधकारमय भविष्य का सम्बोधन करते हैं।

२—श्रद्धा मनु को समझा रही है—

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुखमणि गण द्युतिमान।

श्री विश्वम्भर मानव ने इसका अर्थ किया है—

'यदि मनुष्य के जीवन में उतार चढ़ाव न हों और उसे केवल सुख भोग का ही अधिकार भगवान दे दें, तब केवल इसी कारण से वह ऐसे उकता उठे जैसे एक दम शांत समुद्र ज्वार के रूप में उमड़ (घबरा) उठता है। और जैसे समुद्र की प्रकाश पूर्ण मणियाँ तल से निकलकर नीली लहरों में मारी-मारी फिरती हैं, उसी प्रकार उसका सुख पीड़ा से छिन्न भिन्न हो जाएगा।"

कामायनी की टीका—पृ० ८७

श्री शिवकुमार मिश्र ने इसी का अर्थ किया है—

"पर नित्य अर्थात् शाश्वत (सदा रहने वाली) समरसता भी उचित नहीं है। यदि कोई सदा ही सुखी रहने का प्रयत्न करेगा तो एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा जब उसके जीवन में उसी प्रकार घोर उथल-पुथल मचेगी जिस प्रकार ज्वार के आने से सागर में भीषण हलचल मच जाती है। उसके जीवन का वह सुख जिसे वह सदा बनाए रखना चाहता है उसी प्रकार अपरिमित व्यथा से छिन्न भिन्न होकर बिखर जाएगा जिस प्रकार सागर की लहरों में उथल पुथल मचने से उसके तल में पड़ी हुई मणियाँ ऊपर उतरा कर किनारे पर बिखर जाती हैं।"

कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा भाग २—पृष्ठ—३२

वस्तुत इस छन्द में कामायनी का मूल दर्शन व्यक्त है। जिस प्रकार सागर उमड़ता है उसमें लहरें प्रकट होती हैं और बीच बीच में मणियाँ दिखाई देती हैं ठीक उसी प्रकार विराट् चेतना में सृजन के समय सुख की

नीली लहरें उत्पन्न होती हैं और मणियों के समान आकर्षक सुख भी दिखाई देते हैं। सागर के तरंगित होने पर भी वह मूल में समरस रहता है लहरें और मणियाँ उसके स्वरूप को खंडित नहीं करतीं वरन् उसी की अभिव्यक्ति हैं, उसी प्रकार सुख और दुख दोनों विराट् चेतना के व्यक्त स्वरूप हैं। वस्तुत वह मूल शक्ति समरस है। और जीवन में नित्य इसी समरसता का अधिकार रहता है जिसकी अनुभूति साधना के पश्चात ही होती है।

इनके अतिरिक्त अनेक छोटी-बड़ी भूलें उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में पाई जाती हैं।

प्रस्तुत टीका में 'कामायनी' के मूल भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है। इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय आप पर ही छोड़ता हूँ।
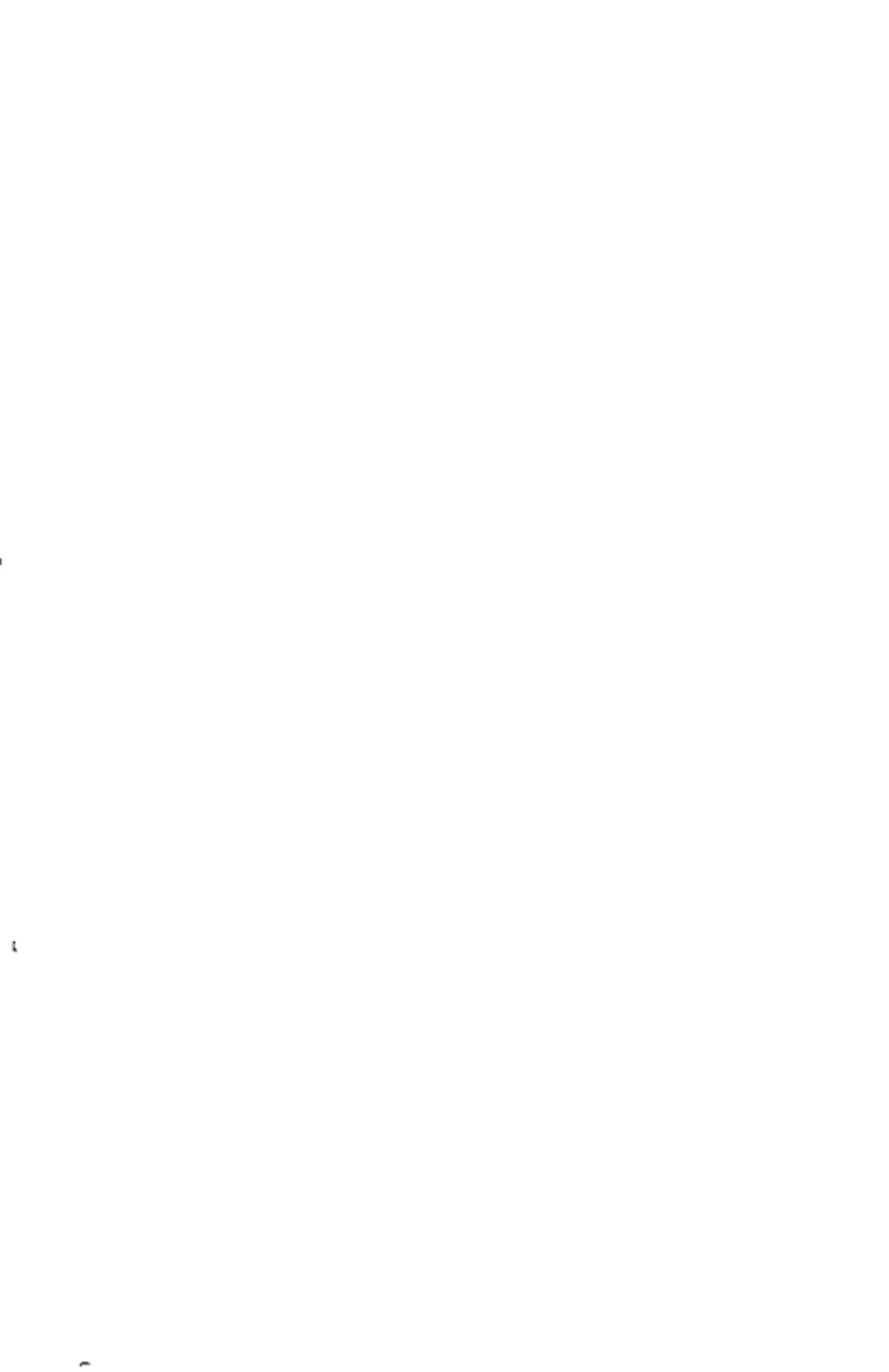
माधव आश्रम
आगरा छावनी।

—तारकनाथ बाली

विषय-सूची

चिंता

मानव जाति के आदि पुरुष मनु माने जाते हैं। ये देवता जाति के थे। देवता जाति के एक शक्तिशाली पुरुष ने क्यों और किस प्रकार मानव जाति की सुदृढ़ प्रतिष्ठा की इसके मूल में विलक्षण घटना है। और यह विलक्षण घटना है खण्ड प्रलय की, जिसमें देवता जाति का नाश हुआ। केवल मनु ही जीवित बच रहे।

कामायनी के प्रथम सर्ग में मनु हिमालय की एक ऊँची चोटी पर बैठे दिखाई देते हैं, खण्ड प्रलय हो चुकी है। चारों ओर जल दिखाई देता है या बर्फ। विनाश के व्यापक दृश्य में बैठे हुए मनु चिंतित हैं। उनका हृदय विषाद-ग्रस्त है। कभी उनकी चेतना अतीत के अतुल वैभव का स्मरण कर सिहर उठती है, कभी प्रलय की विभीषिका में उलझ कर कम्पित हो उठती है, और कभी वर्त्तमान की करुण नश्वरता में रो उठती है।

देवता लोग अत्यन्त सशक्त थे। उनकी सेनाएँ जब संगठित होकर चला करती थीं तो धरती काँप उठती थी और विश्व उनके पाँव चूमती थी।

देवताओं के वैभव तथा ऐश्वर्य की सीमा न थी। नित्य ही उत्सव हुआ करते थे। उनके विशाल भवन मणि-दीपों से कांतिमान रहते थे। प्रकृति भी उनसे परास्त होकर उनके सामने नतमस्तक थी। वे नित्य ही आनन्द में विभोर रहते थे।

संभवतः सदैव ही शक्ति और वैभव का अन्त वासना में होता है। देवता जाति का इतिहास भी इस कथन को प्रमाणित करता है। बल और वैभव के नशे में मस्त, देवता पुरुष देव रमणियों के साथ स्वच्छन्द विहार करते थे। प्रकृति के मनोरम दृश्यों के बीच में उनका वासनामय प्रेम उद्दीप्त होकर तृप्त होता था। देवांगनाओं का रूप अनन्य था, उनका शृंगार अक्षय था और उनका यौवन नित्य नवीन था।

जब स्वच्छन्दता उच्छृङ्खलता जन-जन जीवन की निम्नवृत्तियों को ही साध्य

मान लेती है, पराक्रम उद्दण्डता बनकर मर्यादा की घोर उपेक्षा करने लगता है, तो जीवन वसुधरा के लिए सम नहीं रह पाता। देवताओं की उच्छृंखलता और उद्दण्डता ने किसी अज्ञात शक्ति को कुपित कर दिया। प्रलय प्रलंयकर दृश्य उपस्थित हुआ। देवताओं के दंभ ने उनके सम्पूर्ण ऐश्वर्य को निगल लिया केवल मनु एक नौका में बैठे सागर की लहरों के थपेड़ों में डूबने उतराने लगे। एक बड़ी मछली ने नौका पर प्रहार किया। इस चोट से मनु की नौका उत्तरगिरि पर आ टकराई। वे प्रलय से बच निकले।

मनु सोचते हैं कि वह देवताओं की अतुल शक्ति, अनन्त वैभव और अधीर प्रेमालिंगन सब कहाँ गए ? क्या यह सब कोई स्वप्न था, कोई धोखा था ? किन्तु वहाँ कौन था जो मनु के प्रश्नों का उत्तर देता।

प्रलय के पश्चात मनु को जीवन की नश्वरता का ज्ञान हुआ। उन्होंने सोचा जीवन नहीं, मृत्यु ही सत्य है। जीवन बिजली के समान चमक कर छिप जाता है, किन्तु मृत्यु चिरन्तन है। ध्यान रहे। यहाँ प्रसाद के दर्शन को मनु की दृष्टि से देखना चाहिए। प्रसाद का दर्शन ऐसा ऐकान्तिक नहीं है जो केवल मृत्यु को ही सत्य मानकर चले।

मानव जाति का आदि पुरुष अमर होकर प्रलय के पश्चात् जीवन की नश्वरता की करुण अनुभूति करता है। किन्तु उसने जीवन की क्षणभंगुरता का उपदेश नहीं दिया। उसने इस नश्वरता के बीच अव्यक्त सनातन सत्य को भी देखा। ध्यान देने की बात है कि आर्य जाति के आदि पुरुष के चिन्तन का यह सन्तुलन सदैव आर्य जाति के साथ रहा है।

इस सर्ग में आरंभ से अन्त तक करुण रस की सघन धारा प्रवाहित है। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं—

१—चिंता का मानवीकरण एवं इसकी सूक्ष्मता की स्थूल रूपों के द्वारा चामत्कारिक अभिव्यक्ति।

२—देवताओं के अतीत वैभव तथा प्रणय क्रीड़ाओं का वर्णन।

३—प्रलय की विभीषिका का विलक्षण चित्र जो अत्यन्त रोचक है।

४—जीवन की नश्वरता का वर्णन।

५—सर्ग के अन्त में प्रातःकाल के आगमन का चित्र जो आशा का

प्रतीक है।

हिमगिरि .... प्रवाह।

शब्दार्थ—हिमगिरि=हिमालय पर्वत। उत्तुंग शिखर=ऊँची चोटी।

भावार्थ—हिमालय की एक ऊँची चोटी पर एक शिला की शीतल छाया में एक पुरुष बैठा हुआ है। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए हैं। वह प्रलय के दृश्य को देख रहा था।

यह आरम्भिक वर्णन अत्यन्त चमत्कारिक है जो पाठक के हृदय में कुतूहल एवं जिज्ञासा की सृष्टि करता है।

नीचे जल .... चेतन।

शब्दार्थ—हिम=बर्फ। तत्त्व = सत्ता।

भावार्थ—वह पुरुष जब नीचे देखता है तो उसे सर्वत्र जल ही जल दिखाई देता था। सागर ने उमड़कर सारी धरती को छिपा लिया था ऊपर पर्वत की चोटियों पर सर्वत्र बर्फ पड़ी हुई है। जल तो तरल था किन्तु बर्फ सघन है। वास्तव में जल तथा बर्फ दोनों में सत्ता तो एक ही है। एक जल का तरल रूप है और दूसरा जल का सघन रूप है। जल को हम तरलता के कारण चेतन माना है और बर्फ को ठोस होने के कारण जड़। किन्तु मूल तत्व एक ही है।

यहाँ ब्रह्मवाद की व्यंजना हुई है। संसार की जड़ वस्तुएँ भी ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं और चेतन प्राणी भी। दोनों की मूलसत्ता एक ही है, बाह्यरूप भिन्न भिन्न है।

दूर दूर .... पवमान।

शब्दार्थ—विस्तृत = फैला हुआ। स्तब्ध=शान्त। पवमान=पवन।

भावार्थ—बर्फ दूर-दूर तक फैली हुई थी। जिस प्रकार उस पुरुष का हृदय शान्त था, उसी प्रकार वह बर्फ भी शान्त थी। नीरवता के समान शिला के चरणों से पवन टकरा रहा है।

इस छन्द में दो बार उपमा अलंकार आया है। उपमेय तथा उपमान दोनों ही प्रस्तुत हैं। दूसरी उपमा में उपमेय स्थूल है उपमान सूक्ष्म। आधुनिक युग की कला की एक विशेष प्रकृति है स्थूल की सूक्ष्म से उपमा देना

और सूक्ष्म की स्थूल से।

तरुण ... अवसान।

शब्दार्थ—तरुण=युवा। सुर श्मशान=देवताओं का श्मशान—प्रलय में सारे देवता नष्ट हो चुके हैं। इसलिए सुर श्मशान का प्रयोग सार्थक भी है और जिज्ञासा को तीव्र करने वाला भी। प्रलय सिंधु-लहर=प्रलय के गरजते हुए सागर की लहर। सकरुण=दुःख पूर्ण। अवसान=अन्त।

भावार्थ—वह पुरुष वहाँ बैठा हुआ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि कोई युवा तपस्वी देवताओं के श्मशान में बैठा हुआ सिद्धि के लिए साधना कर रहा हो। और नीचे प्रलय से उमड़े हुए सागर में ऊँची-ऊँची लहरों का दुःख पूर्ण अन्त हो रहा था।

मनु को देवताओं के श्मशान में साधना करने वाला तपस्वी कहना उचित ही है। क्योंकि आगे चलकर उन्हें मानव-सृष्टि की नींव डालनी है। उसके लिए साधना आवश्यक है।

'सकरुण अवसान' में लहरों के ऊपर मानवीय भावना का आरोप किया गया है। जब मनुष्य दुःखी होता है तो उसे सर्वत्र दुःख ही दिखाई देता है। और इससे यह भी संकेत होता है कि जिस प्रकार विशाल लहरें अत्यन्त वेग से उमड़ती हैं और तट पर टकरा कर बिखर जाती हैं, उसी प्रकार देव जाति की लहर भी काल के तट से टकरा कर नष्ट हो चुकी है।

उसी तपस्वी ... खड़े।

शब्दार्थ—देवदारु=एक वृक्ष विशेष। हिम धवल=बर्फ के गिरने से सफेद।

भावार्थ—उसी तपस्वी के समान ही लम्बे कुछ देवदारु के वृक्ष वहाँ खड़े थे। बर्फ के जमने के कारण वे सफेद हो गए थे। और ऐसा प्रतीत होता है मानो सर्दी के कारण वे ठिठुर कर पत्थरों के समान खड़े हुए हों।

अब कवि उस पुरुष का वर्णन करता है।

अवयव ... संचार।

शब्दार्थ—अवयव=अंग। दृढ़=मजबूत। ऊर्जस्वित=उभरा हुआ। वीर्य=शक्ति। स्फीत=उभरी हुई। शिराएँ=नसें।

भावार्थ—उस पुरुष के अंगों की मांस पेशियाँ सशक्त हैं। उसके शरीर में अपार बल उमड़ रहा है। उसकी नसें उभरी हुई हैं जिनमें स्वस्थ रक्त संचरण कर रहा है।

चिंता .... स्रोत।

शब्दार्थ—चिंता-कातर=चिंता से मलीन। पौरुष = ओज। उपेक्षामय यौवन=वह यौवन उसकी ओर जिसका ध्यान नहीं है। मधुमय स्रोत=मधुर झरना।

भावार्थ—उसका मुख चिंता के कारण मलीन हो रहा है। किन्तु उसके हृदय में यौवन का झरना भी बह रहा है किन्तु वह चिन्ता में इतना लीन है कि उसका ध्यान अपने हृदय की भावनाओं की ओर है ही नहीं।

मनु कामायनी का नायक है। नायक विख्यात तथा शक्तिवान है।

बँधी .... मही।

शब्दार्थ—महावट=बरगद का पेड़। जल-प्लावन=जल की बाढ़। मही=धरती।

भावार्थ—मनु की नौका बरगद के पेड़ से बँधी हुई थी। अब तो वह सूखे में है किन्तु जब मनु यहाँ पहुँचे थे, तो यह स्थान भी जलमग्न था। धीरे धीरे जल की बाढ़ उतरने लगी थी और धरती दिखाई देने लगी थी।

निकल रही .... पहचानी-सी।

शब्दार्थ—मर्म-वेदना = हृदय का दुःख।

भावार्थ—अब मनु के हृदय का दुःख, दर्द भरी कहानी के रूप में प्रकट होने लगा। मनु अपने मन की वेदना सुनाने लगे। किन्तु यहाँ सुनने वाला कौन था? केवल प्रकृति! और यह प्रकृति मनु के लिए नवीन नहीं है। वे प्रकृति की कठोरता देख चुके हैं। और आज भी मनु की व्यथा सुनकर वह हँस रही है। जिससे उनकी पीड़ा और भी बढ़ रही है।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी को अपना दुःख सुनाने से जी का भार हल्का हो जाता है। किन्तु कोई सुनने वाला न हो तो तीव्र व्यथा के प्रभाव से मनुष्य अपने आप सुनाने लगता है।

'विकल कहानी' में विशेषण विपर्यय है। कहानी 'विकल' नहीं है, वरन्

कहानी कहने वाले का हृदय विकल है, और सुनने वाला भी इसे सुनकर व्याकुल हो जाता है।

अब मनु चिन्ता से कहते हैं—

"ओ चिन्ता मतवाली !

शब्दार्थ—व्याली=सर्पिणी। स्फोट=फटना। भीषण=भयकर।

भावार्थ—मनु ने जीवन में पहली बार चिन्ता का अनुभव किया है इस लिए वे कहते हैं कि हे चिन्ता की प्रथम रेखा, तू इस संसार रूपी वन की सर्पिणी है जो इसमें रहने वाले सभी मनुष्यों को डस कर उनमें अपने विष का संचार करती है। तू ज्वालामुखी पहाड़ के भयंकर स्फोट के पहले कम्पन के समान मतवाली है। जिस प्रकार ज्वालामुखी का कम्पन किसी की चिन्ता नहीं करता और आस-पास की सभी अच्छी-बुरी वस्तुओं को अस्त-व्यस्त कर देता है, उसी प्रकार चिन्ता भी किसी व्यक्ति का भेद नहीं करती। यह तो सभी मनुष्यों को समान रूप से ग्रस लेती है।

यहाँ 'मतवाली' का अर्थ मस्त नहीं है वरन् उससे है जो किसी का भेद नहीं कर सकती।

हे अभाव वक्र रेखा।

शब्दार्थ—अभाव=कमी। चपल=चंचल। ललाट=भाल। खल=वक्र। हरी भरी=भरपूर। जल माया=जल की चंचलता।

भावार्थ—हे चिन्ता ! तू अभाव की बालिका है। जब मनुष्य अपने पास किसी वस्तु की कमी अनुभव करता है, तो वह उसकी प्राप्ति की चिन्ता करने लगता है। तेरे उदित होते ही माथे पर वक्र रेखाएँ पड़ जाती हैं, इसलिए तुझे ललाट की वक्र रेखा ही कहते हैं। चिन्ता होने पर मनुष्य उसे दूर करने के लिए भरपूर प्रयत्न करता है। तुम जल की चंचलता में उत्पन्न होने वाली वक्र लहरों की रेखा के समान हो।

इस ग्रह लहरी !

शब्दार्थ—ग्रह कक्षा=वह गोलाकार पथ जिस पर ग्रह भ्रमण करते हैं। गरल=विष। लघु-लहरी=छोटी लहर। जरा=बुढ़ापा।

भावार्थ—हे चिन्ता ! तू ही निरन्तर घूमने वाले ग्रहों की हलचल है।

मनु चिन्ताग्रस्त हैं इसलिए उन्हें सर्वत्र चिन्ता ही दिखाई देती है। चिन्ता पिघले हुए विष की छोटी-सी लहर के समान है। जिस प्रकार थोड़ा-सा विष भी शरीर के भीतर पहुँचकर मनुष्य को दग्ध करने लगता है, उसी प्रकार चिन्ता भी मनुष्य को व्याकुल कर देती है। तू अमर-जीवन को भी बुझा कर देने वाली है। तेरे कारण बलवान पुरुष भी अत्यन्त अल्प समय में वृद्धा के समान निर्बल हो जाते हैं। और तू तो बिल्कुल बहरी है। किसी की कुछ सुनती ही नहीं। चिन्तित व्यक्ति को कोई दूसरा कितना ही क्यों न समझाए किन्तु उसकी चिन्ता दूर नहीं होती। इसीलिए चिन्ता को बहरी कहा है।

अरी ... पाप।

शब्दार्थ—व्याधि=शारीरिक रोग। सूत्र धारिणी=जन्म देने वाली। आधि=मानसिक राग। मधुमय=आकर्षक। अभिशाप=शाप। धूमकेतु=पूँछ-दार तारा जिसका आकाश में उदय होना अशुभ माना जाता है। पुण्य-सृष्टि= पुण्य का संसार, रमणीय जगत।

भावार्थ—हे चिन्ता! तू विविध शारीरिक रोगों को जन्म देती है। सदैव चिन्तित रहने वाला व्यक्ति रोगी हो जाता है। तू हृदय को पीड़ा देने वाली है। तू आकर्षक शाप है। तेरे द्वारा ग्रस्त होकर मनुष्य व्याकुल रहता है इसलिए तू शाप है। किन्तु चिन्ता होने पर मनुष्य कर्म पथ पर दृढ़ता से आरूढ़ होता है। इसलिए तू आकर्षक भी है। तू हृदय रूपी आकाश में पुच्छल तारे के समान उदित होती है। जिस प्रकार आकाश में पुच्छल तारे के दिखाई देने पर संसार का अमगल होता है। उसी प्रकार जब तू हृदय में उत्पन्न होती है तो मनुष्य के लिए व्यथा और पीड़ा लेकर ही आती है। तू इस पुण्य से भरे हुए संसार में एक सुन्दर पाप के समान है। जिस प्रकार पाप पीड़क होता है, उसी प्रकार तू भी व्यथा देने वाली है। किन्तु तेरे कारण जीवन में गति आती है इसलिए तू सुन्दर भी है।

'मधुमय अभिशाप' तथा 'सुन्दर पाप' में विरोधाभास है जो छायावादी कला की एक प्रमुख विशेषता है। ऐसे प्रयोगों से कविता में विलक्षणता आती है।

'हृदय-गगन'—रूपक। धूमकेतु-सी—उपमा।

मनन   नींव ।

भावार्थ—हे चिन्ता ! तू मुझे कितना मनन कराएगी । मुझे कितनी देर तक अपने आप में बाँधे रखेगी ! मैं तो देवताओं की निश्चित जाति का जीव हूँ । देवताओं ने कभी भी चिन्ता नहीं की थी । क्या तू मुझे इसी प्रकार उलझा-उलझाकर मार डालेगी ? क्या अमर जाति के जीव का तू मृत्यु के मुख में ले जाएगी ? सचमुच तू बड़ा दुष्कर काम कर रही है ।

तू—नींव' लाक्षणिक प्रयोग है । गहरी नींव डालने के लिए बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है इसीलिए यह कार्य दुष्कर होता है ।

'आह   घन-सी ,

शब्दार्थ—करका = ओले । अन्तरतम = हृदय । निगूढ़ = छिपे हुए ।

भावार्थ—तू हृदय के हर्ष के लहराते हुए खेतों पर ओले बरसाने वाले बादलों के समान घिर आएगी । जिस प्रकार ओले बरसाने वाले बादल घिर कर और बरसाकर खेतों को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार तू हृदय में घिरकर सारे आनन्द को लूट लेगी । तू सबके हृदय के भीतर गड़े हुए धन के समान छिपी रहगी । सभी मनुष्य चिन्ता से ग्रस्त होते हैं किन्तु कई उसे मुख पर नहीं लाते ।

उपमाएँ नवीन हैं ।

बुद्धि   काम ।

भावार्थ—हे चिन्ता ! तेरे बुद्धि, मनीषा, मति, आशा और चिन्ता आदि अनेक नाम हैं । चिन्तित मनुष्य की बुद्धि में व्यग्रता आती है, इसलिए चिन्ता को बुद्धि कहा । चिन्ता ही मनन को प्रोत्साहित करती है इसलिए उसे मनीषा कहा । चिन्ता वाद-विवाद छेड़ देती है इसलिए उसे मति कहा । चिन्ता के पश्चात मनुष्य को अभाव दूर होने की आशा भी होती है इसलिए उसे आशा कहा । यह चिन्तन कराती है, इसलिए उसे चिन्ता कहा । अन्त में क्षुब्ध होकर मनु कहते हैं कि हे चिन्ता तू पाप है । तू यहाँ से तुरंत चली जा, यहाँ तेरा कोई काम नहीं है ।

'तू जा, चल जा—' में मनु के मन की व्याकुलता स्पष्ट हो जाती है ।

विस्मृति आ भर दे।"

शब्दार्थ—विस्मृति = बेहोशी। अवसाद = शिथिलता। नीरवते = मूकता। शून्य = हृदय।

भावार्थ—मनु कहते हैं कि मुझे बेहोशी आ जाए। शिथिलता मेरी सारी वृत्तियों को सुला दे। और मूकता आकर मुझे चुप कर दे। और हे चेतनता! तू यहाँ से चली जा और मेरे हृदय को तू जड़ता से भर दे।

इस प्रकार की पंक्तियाँ देखकर विद्वान आलोचक तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि प्रसाद बेहोशी को ही दुःखों से दूर रहने का साधन मानते हैं। इस प्रकार के निष्कर्ष अत्यन्त असंतुलित एवं भ्रामक हैं। इन विचारों को प्रसाद के दर्शन की छाया में नहीं, मनु के हृदय की भूमिका पर देखना चाहिए। प्रसाद का दर्शन निष्क्रियता का सन्देश नहीं देता।

"चिन्ता मीन हुए। १

शब्दार्थ—अतीत = बीते हुए वैभव की। अनन्त = हृदय। सर्ग = संसार। अग्रदूत = प्रथम आने वाले। अपने मीन हुए = अपने को स्वयं नष्ट करने वाले, बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।

भावार्थ—जितना ही मैं अपने बीते हुए वैभव की चिन्ता करता हूँ, उतना ही मेरे हृदय की व्यथा बढ़ती जा रही है। स्वाभाविक है कि दुःख में सुख की स्मृति और भी उद्दीपन होती है।

देव जाति इस मानव जाति से पूर्व रहने वाली जाति थी। मनु कहते हैं कि संसार में प्रथम आने वाले देवताओं! तुम अपनी उच्छृङ्खलता में असफल हुए हो। चाहे तुम्हें भक्षक कहा जाए या रक्षक दोनों ही ठीक हैं। तुमने अपने ऐश्वर्य की रक्षा में और अपनी वासना की रक्षा में ही अपने आप को नष्ट कर दिया। तुमने स्वयं अपनी जाति का बर्बाद कर दिया।

अरी हविष्य।

शब्दार्थ—बिजली की दिवा-रात्रि = दिन और रात जिनमें बिजलियाँ गिरती रहीं। नर्तन = नृत्य, बिजली का गिरना। प्रत्यावर्तन = बार-बार लौट

रहती है। जब नई बर्फ गिरती रहती है और वह पुञ्जीभूत हो जाती है, तो अपने ही भार के कारण वह फिसल कर सागर में विलीन हो जाती है।

देवताओं ने संसार का बल, संपत्ति, और अनन्त सुख सभी कुछ अपने आधीन कर लिया था। और उस सम्पत्ति का सुख सागर की लहरों के समान उमड़ा करता था। देवताओं के सुख लहरों के समान अपार एवं उच्छृङ्खल था।

कीर्ति आक्रांत।

शब्दार्थ—कांत=यश। दीप्ति=कीर्ति। अरुण किरण=सूर्य की किरण। द्रुम दल=वृक्षों का झुण्ड। पद-तल=पाँव के नीचे। विभ्रांति=थकी हुई।

भावार्थ—देवताओं के देश में सूर्य की किरणों के समान ही सर्वत्र यश, कांति और शोभा बिखरी हुई दिखाई देती थी। सातों सागरों के कण-कण में, वृक्षों के झुण्डों में सर्वत्र ही देवताओं की समृद्धि आनन्द में मग्न होकर खेल रही थी। देवताओं ने सातों समुद्रों पर अधिकार कर लिया था।

देवताओं के पास अतुल शक्ति थी। सारी प्रकृति थककर उनके पाँव के नीचे झुकी रहती थी। और जब देव सेनाएं सुसज्जित होकर रण के लिए चला करती थीं तो सेना के भार से धरती भी काँप उठती थी।

स्वयं देव विहार।

शब्दार्थ—विश्रृङ्खल=अस्तव्यस्त; नष्ट भ्रष्ट। आपदा=विपत्ति। ज्योत्स्ना=चाँदनी। स्मित=हास। मधुप=भँवरा।

भावार्थ—जब हम स्वयं देवता थे और अपने अतिरिक्त और किसी की सत्ता स्वीकार ही नहीं करते थे, तो सृष्टि के विधान अस्तव्यस्त क्यों न होते। जब हमें किसी का भय ही नहीं था तो हम किसी नियम को क्यों स्वीकार करते। हमारी इसी उच्छृङ्खलता के कारण ही तो हम पर दारुण विपत्तियों की वर्षा हुई थी।

आज सब कुछ नष्ट हो चुका है। देवबालाओं का अपूर्व शृङ्गार भी मिट चुका है। ऊषा के समान रमणीय यौवन चाँदनी के समान मधुर हास, और भँवरों के समान निर्बाध रमण सभी कुछ मिट गया।

मनु बार-बार सुरबालाओं का स्मरण करते हैं। इससे उनकी वासना की उत्तेजना का परिचय मिलता है। और इसी वासना के कारण उन्हें देवों के

सम्मुख लज्जित एवं परास्त होना पड़ा।

भरी वासना   कराह।" 33

शब्दार्थ—मदमत्त=तेज। प्रलय जलधि=प्रलय रूपी समुद्र।

भावार्थ—देवताओं की वासना रूपी नदी का प्रवाह अत्यन्त तीव्र था। और जब उसका प्रलय रूपी सागर के साथ संगम हुआ तो इस दृश्य को देखकर हृदय पीड़ा से कराह उठा।

सांग रूपक अलंकार।

"चिर किशोर   मौन। 34-35

शब्दार्थ—चिर किशोर वय=सदैव युवा रहने वाले। तिरोहित हुआ=छिप गया। मधु=रस। पुलकित प्रेमालिंगन=वे प्रेमालिंगन जिनसे शरीर पुलकित हो उठता था—विशेषण-विपर्यय।

भावार्थ—आज वह रस भरा अक्षय वसन्त कहाँ छिप गया है जो सदैव समान भाव से प्रफुल्लित रहता है, जो नित्य ही विलास की प्रेरणा दिया करता था, और जिससे दसों दिशाएँ सुगन्धित रहा करती थीं।

फूलों से लदे हुए कुंजों में प्रिय और प्रियाएँ एक दूसरे का आलिंगन कर पुलकित हुआ करते थे। किन्तु आज वे आलिंगन भी मिट गए। अब वे संगीत की महफिलें भी मूक हो गई हैं। कहीं भी वीणा की ध्वनि सुनाई नहीं देती।

भुज न   अभिसार। 36-37

शब्दार्थ—भुज-मूल=बगल। शिथिल वसन=खुला हुआ वस्त्र। क्वणित=बजना। रणित=बजना। अभिसार=मिलन।

भावार्थ—देवों के मुख की सुगन्धित भाप से देवबालाओं के कपोलों पर छाया सी पड़ जाती थी। देवता खुले हुए वस्त्र वाली देवबालाओं का आलिंगन कर उनके वस्त्रों को नापते से प्रतीत होते थे। किन्तु अब यह सब मिट गया है।

नृत्य करती हुई देवबालाओं के कंगन और नूपुर बजा करते थे। उनके

वक्षस्थल पर पड़े हुए हार हिला करते थे। मधुर संगीत गूँजा करता था। और उनके गीतों में स्वर तथा लय का मिलन होता था।

'कंकण'—'ण' की प्रधानता से कंगनों तथा नूपुरों की ध्वनि का भान होता है। यह नाद सौन्दर्य कहलाता है।

३९-३९ सौरभ आवर्त्तन।

शब्दार्थ—दिगंत=दिशाएँ। अन्तरिक्ष=आकाश। आलोक अधीर=प्रकाश में अधीर दिखाई देता था। अचेतन गति = सहज गति। समीर = पवन। अनंग पीड़ा = काम पीड़ा। अङ्ग भंगियों का नर्तन=अङ्गों की विविध गतियाँ। मधुकर = भँवरा। मरंद-उत्सव = मकरन्द का उत्सव। मदिर भाव से आवर्त्तन= मस्ती से उसका पुनः होना।

भावार्थ—सारी दिशाएँ सुगन्धि से भरी हुई थीं। आकाश भी अपने प्रकाश में व्याकुल दिखाई देता था। सबमें ही एक ऐसी सहज गति थी जो अपनी तीव्रता में पवन को भी मात करती थी। केवल देवता ही सुख से चंचल नहीं थे, धरती और आकाश भी उनका साथ देते थे। यहाँ प्रकृति पर मानव भावों का आरोप है।

देव-बालाएँ अपने अङ्गों को विविध प्रकार से मोड़ती थीं। उनके अङ्गों की चंचलता में उनकी काम-पीड़ा व्यक्त होती थी। और जिस प्रकार भँवरा बार-बार फूलों का रस पीने के लिए उस पर बैठता है और उड़ जाता है, उसी प्रकार देव बालाओं की कामेच्छा बारबार मस्ती के साथ व्यक्त होती थी।

४०-४१ सुरा गये।"

शब्दार्थ—सुरा = शराब। अरुण = लाल। अनुराग = प्रेम। कम्र कपोल = सुन्दर गाल। फिसलता = फिसलता। पीत=पीला। विकल वासना= तीव्र वासना।

भावार्थ—देव-बालाओं के मुख सुगन्धि से युक्त थे तथा सुरापान के कारण उनपर लालिमा झलकने लगी थी। उनके नेत्रों में आलस्य तथा प्रेम भरा हुआ था। उनके गाल इतने सुन्दर एवं मृदुल थे कि उसपर कल्प वृक्ष का पीला पराग भी नहीं ठहर पाता था।

———

तीव्र वासना के प्रतिनिधि वे देवता और उनकी क्रियाएँ सभी नष्ट हो गए। पहले तो वह अपनी वासना और अहंकार की ज्वाला में जले और फिर जल में गल गए। सब कुछ नष्ट हो गया।

"अरी रहीं। 42

शब्दार्थ— उपेक्षा भरी अमरते = उपेक्षा के योग्य अमर जाति। अतृप्ति= असन्तोष, व्यग्रता। निर्बाध विलास = स्वच्छन्द विहार। द्विधा रहित = संकोच रहित। कातरताएँ = अधीर चेष्टाएँ।

भावार्थ—देवताओं की जाति अपने दोषों के कारण उपेक्षा के योग्य है। उस जाति में असन्तोष था व्यग्रता थी और था उसमें अनुरक्त विहार। देवता तथा देव-बालाएँ निस्संकोच होकर एक दूसरे को प्यासे नयनों से देखा करते थे।

हे अमर जाति! तेरे सब प्रेमालिंगन मिट गए। पुलक और स्पर्श भी नहीं रहा। और आज मुख को मधुर चुम्बन तथा व्यग्रता से कष्ट नहीं हो रहा है।

रत्न सृष्टि। 43-44

शब्दार्थ—रत्न सौध = रत्नों से निर्मित भवन। वातायन = खिड़की। मधु-मदिर-समीर = सुगन्धि से युक्त होने के कारण मस्त कर देने वाला पवन। तिमिंगल = मछली। नील नलिनों की सृष्टि = नीले कमलों का सृजन, विविध भावों का उन्मीलन।

भावार्थ—पहले जिन रत्न निर्मित भवनों की खिड़कियों से सुगन्धि से लदा हुआ मस्त कर देने वाला पवन बहता था, आज वहीं मछलियों की भीड़ें घिर रही होंगी।

पहले जहाँ देवबाला के नेत्रों से विविध भावों का उन्नयन होता था, आज उन्हीं स्थानों पर प्रलयङ्कर वर्षा हो रही है।

वे अम्लान माला! 546

शब्दार्थ—अम्लान=प्रफुल्ल। शृङ्खला = जंजीर। देव-यजन = देवताओं के

यश। जलनिधि = सागर।

भावार्थ—देवबालाएँ प्रफुल्ल कुसुमों से सुगन्धित मणियों के सुन्दर हार पहना करती थीं। किन्तु आज वही मालाएँ विलास में अनुरक्त रहने वाली उन देवबालाओं को जकड़ने वाली जंजीरें बन गई होंगी।

देवता लोग बड़े-बड़े यज्ञ करते थे जिनमें पशुओं की बलि दी जाती थी जब अन्त में पूर्णाहुति दी जाती थी तो अग्नि की ऊँची ज्वालाएँ उठा करती थीं। आज वे ही ज्वालाएँ इस सागर में लहरों के रूप में चल रही हैं।

45 उनको देख ... क्रूर।

शब्दार्थ—अम्बरिक्ष = आकाश। व्यस्त = तेजी के साथ। प्रालेय = प्रलय करने वाला। हलाहल = विष। कुलिश = वज्र, बिजलियाँ। बधिर = बहरे। क्रूर = दारुण।

भावार्थ—देवताओं के हिंसापूर्ण यज्ञों को देखकर कौन आकाश में बैठ कर रोया है, जिससे उसके आँसू तेजी के साथ इस प्रलयंकर विनाश जल के रूप में बरसने लगे।

जब प्रलय घिर आई थी, तो सर्वत्र रोने की आवाजें आने लगीं। हाहाकार होने लगा। भयंकर बिजलियाँ गिर रही थीं और सर्वत्र नाश का खेल खेल रही थीं। दिशाएँ बहरी हो गईं। बारबार भयंकर एवं दारुण गर्जन होने लगा।

51 दिग्दाहों ... पीन हुई।

शब्दार्थ—दिग्दाह = दिशा का जलना। जलधर=बादल। भीम-प्रकंपन= भयङ्कर कम्पन। झंझा = तेज आँधी। मलिन मित्र = धुँधला सूर्य। आभा= प्रकाश। वरुण=जल के देवता, सागर। पीन=गहरी।

अब प्रलय-घटनाओं का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—क्षितिज रूपी किनारे के बादल आ रहे हैं या दिशाओं में आग लग गई है और उनका धुँआ उड़ता आ रहा है? बादल धुँए जैसे काले और भयङ्कर दिखाई देते हैं इसीलिए यह निश्चय करना कठिन है। मेघों से भरे हुए आकाश में भयङ्कर कम्पन हो रहा है। आँधी के झटके आ रहे हैं। सन्देह अलङ्कार।

अंधेरा बढ़ने लगा। धुंध से सूर्य का प्रकाश छिप गया। उधर जल के देवता वरुण भी व्यस्त हैं। सागर में भी लहरें आ रही हैं। और अन्धकार सघन होने लगा।

पंचभूत   अशेष। ५२

शब्दार्थ—पंचभूत=क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर। भैरव मिश्रण= भयङ्कर मिलन। शम्पा=बिजली। शकल=टुकड़े। निपात=गिरना। उल्का= मशाल। अशेष=सम्पूर्ण।

भावार्थ—पाँचों भूत प्रलयङ्कर रूप में मिल रहे थे। रेत का तूफान आ रहा था। सागर में जल बढ़ रहा था। बिजलियाँ गिर रही थीं। आकाश भयङ्कर वर्षा कर रहा था। भयङ्कर आँधी चल रही थी। बिजली खण्ड-खण्ड होकर गिर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो बिजली रूपी मशाल हाथ में लिए प्रकृति की अमर शक्तियाँ खोए हुए प्रात काल को ढूंढ रही हैं।

'उल्का—' अभिनव कल्पना है।

धरती और आकाश में कोई भेद नहीं रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो धरती को भयङ्कर गर्जन के कारण काँपता हुआ देखकर सारा आकाश धरती के आलिंगन के लिए उतर आया हो। समासोक्ति द्वारा गर्जन से भय भीत नायिका का अपने नायक द्वारा आलिंगन की व्यंजना है।

उधर   ह्रास।

शब्दार्थ—कुटिल-काल=क्रूर मृत्यु। फेन=झाग। व्याल=सर्प। अवयव= अङ्ग, भाग। ह्रास=नाश।

भावार्थ—उधर सागर में भी तूफान आ रहा था। उसकी लहरें क्रूर मृत्यु के जालों के समान चली आ रही थीं। उनमें फँसकर कोई भी बच नहीं सकता था। वे लहरें सर्पों के समान फन फैलाए हुए और विष की आग उगलती हुई चली आ रही थीं।

धरती धस रही थी। ज्वाला उद्दीप्त हो रही थी। ज्वालामुखी फटकर लावा फेंक रहे थे। और धीरे धीरे धरती के भाग नष्ट होते जा रहे थे।

सबल   प्रतिघात।

शब्दार्थ—तरंगाघात=लहरों के आघात। महाकच्छप=विशाल कछुआ धरणी=धरती। ऊभ चूभ=डाँवाडोल। विकलित=व्याकुल। अति भैरव=अत्यन्त भयङ्कर। जल संघात=जल राशि। तिमिर=अन्धकार। प्रतिघात=धक्का।

भावार्थ—सागर में भयङ्कर तूफान उठ रहा था। उसकी शक्तिशाली तरंगों के आघात से विशाल कछुए के समान दिखाई देने वाली धरती डाँवाडोल हो रही थी और अत्यन्त व्याकुल सी थी।

जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में वासना का वेग बढ़ता है उसी प्रकार वह भयङ्कर जलराशि भी बढ़ने लगी। उधर अन्धकार भी सबत्र फैल गया था। पवन के झोंके अँधकार का आलिंगन करते थे और उससे टकराते थे। –

वेला   कपका।"

शब्दार्थ—वेला=सागर का किनारा। क्षीण=पतला। उदधि=सागर। अखिल धरा=सारी धरती। करका=ओले। ताण्डवमय=ध्वस्त कर देने वाला। नियति=भाग्य।

भावार्थ—धीरे धीरे सागर का किनारा देवताओं के नगर के समीप आ रहा था। क्षितिज पहले तो पतला हुआ और फिर वह भी सागर में लीन हो हो गया। और उसके पश्चात् सागर सारी धरती को डुबाकर सीमा हीन हो गया। सर्वत्र जल ही जल दिखाई देता था।

घोर ध्वनि करते हुए ओले गिरते थे जिसके नीचे सब देवता कुचले जा रहे थे। पता नहीं कितनी देर से पाँचों भूत यह ध्वंस का नाच नाच रहे थे।

अब मनु अपने बचने का वर्णन करते हैं।

"एक नाव   बनी वहीं।

शब्दार्थ—डाँड़=नाव खेने का चप्पू। पतवार=नाव या जहाज का वह पिछला तिकोना भाग जिससे नाव या जहाज घुमाया जाता है।

भावार्थ—मेरे पास एक नाव थी। किन्तु न तो चप्पू ही से वह चल सकती थी और न ही पतवार से मोड़ी जा सकती थी। उसे जिधर लहरें ले

जाती थीं, वह उधर ही बह जाती थी। यह पगली बार-बार कभी तरंगों में ऊँची आ जाती थी और कभी फिर गिर जाती थी।

इस नाव को बड़े जोर के धक्के लगते थे। अन्धकार में किनारा सुझाई नहीं देता था। मेरे हृदय में अधीरता और निराशा भरी थी। ऐसी अवस्था में मेरा भाग्य ही मेरा सहारा बन गया।

'नियति' शब्द को देखकर ही प्रसाद को भाग्यवादी कह देना उचित नहीं है। प्रसाद पर भाग्यवादी होने का आरोप लगाने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि उन्होंने भाग्य को कहाँ और किन परिस्थितियों में प्रधानता दी है।

लहरें रोती थीं। ६२

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। चपलाएँ=बिजलियाँ। गरल जलद=विषैला बादल, नाश करने वाले मेघ। झड़ी झड़ी = जोर की वर्षा। संसृति = संसार। जलधि = सागर। चमत्कृत होना = प्रतिबिम्बित होना। विराट बाड़व ज्वालाएँ = सागर की अग्नि की विशाल लपटें।

भावार्थ—सागर की लहरें आकाश तक पहुँचती थीं। असंख्य बिजलियाँ गिर रही थीं। प्रलय लाने वाले मेघों की वर्षा में बूँदें अपना ही जल का संसार बना रही थीं। सर्वत्र जल ही जल का प्रसार हो रहा था।

सारा संसार सागर में डूब गया था। जब बिजलियाँ चमकती थीं और विश्व को गर्भ में लीन किए हुए उस सागर में प्रतिबिम्बित होकर झलकती थीं तो ऐसा प्रतीत होता था मानो वे इस दृश्य को देखकर चकित हो रही हैं। बिजली को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सागर की अग्नि की विशाल लपटें टुकड़े-टुकड़े होकर रो रही हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

जलनिधि कुछ। ६४, ६

शब्दार्थ—जलनिधि = सागर। जलचर=जल में रहने वाले जन्तु। विलोड़ित = मथित। घनीभूत हो उठे = सघन हो गए। रुदन=रुकना। बिलखाती=रोती, व्यथित होती। विकल=असफल = कुछ भी दिखाई न देने के कारण।

भावार्थ—सागर के भीतर रहनेवाले जितने भी जन्तु थे वे अत्यन्त व्याकुल हो कर कभी जल के ऊपर आते थे और कभी नीचे डूब जाते थे। और यह

स्वाभाविक भी था। जब सागर रूपी घर ही आन्दोलित हो रहा है, तो कौन प्राणी, कहाँ और किस प्रकार सुख प्राप्त कर सकता है।

धीरे धीरे वायु सघन होने लगी जिसके कारण श्वास लेना असंभव सा हो गया। श्वास के रुक जाने के कारण चेतना भी व्यथित हो रही थी। नेत्र देखने का प्रयास करते थे और असफल रहने पर व्यर्थ ही खीझ उठते थे।

६७ उस विराट् ... सकता।

शब्दार्थ—विराट् आलोडन=व्यापक तूफान। ग्रह=नक्षत्र। बुद्-बुद् = बुलबुले। प्रखर=तारक। प्रलय पावस = प्रलयंकर वर्षा। ज्योतिरिंगण=जुगुनू। प्रहर = पहर। सूचक उपकरण=बताने वाले साधन=सूर्य, चन्द्र आदि।

भावार्थ—उस व्यापक तूफान में नक्षत्र तथा तारे बुलबुले के समान दिखाई देते थे। जिस प्रकार सागर में बुलबुले उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं-उसी प्रकार कभी तारे दिखाई देते थे और कभी अन्धकार में विलीन हो जाते थे। प्रलयंकर अथवा ऐसा प्रतीत होता भी कि वे वर्षा में जुगनुओं के समान जगमगा रहे हों यहाँ भी अभिप्राय यही है—चमककर छिप जाने का उपमा।

यह कोई भी नहीं बता सकता कि उस प्रलय को आरंभ हुए कितने पहर अथवा दिन बीत गए थे क्यों कि पहर तथा दिन की सूचना देने वाले साधन सूर्य, चन्द्रादि का तो कहीं निशान भी दिखाई नहीं देता था।

६८ काला ... फिर से।

शब्दार्थ—काला=बुरा, अवांछित। शासन चक्र मृत्यु का=मृत्यु का व्यापार, मृत्यु का तूफान। महा मत्स्य=बड़ी मछली। दीन पोत=बेचारी नाव। उत्तर गिरि=उत्तर का पर्वत। देव सृष्टि=देवताओं का संसार। ध्वंस=नाश। श्वास लगा लेने फिर से=फिर से उसके जीवित रह जाने की आशा होने लगी।

भावार्थ—अब तो यह याद नहीं कि कब तक मृत्यु का यह अवांछित तूफान चलता रहा, किन्तु इतना स्मरण है कि एक बड़ी मछली ने मेरी छोटी नाव से टक्कर मारी जिससे मेरी नाव टूट गई।

किन्तु उसी थपेड़े की शक्ति से ही मैं अपनी टूटी हुई नाव के साथ उत्तर गिरि पर आ टकराया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो देवताओं की नष्ट

होती हुई सम्यता फिर से जीवित हो उठी।

मनु देव सभ्यता के प्रतीक हैं। मनु के जीवित रहने से देवताओं की सभ्यता भी जीवित रहेगी। इसलिए, मनु के जीवित बच जाना देव-जाति के जीवन का लक्षण माना है।

आज अमरता विष्कम।" 70

शब्दार्थ—अमरता = देव जाति। भीषण=भयंकर। जर्जर=बलहीन। दम्भ = गर्व। सर्ग=सृष्टि। प्रथम अंक=नाटक का प्रथम अंक, मानव जाति का प्रथम चरण। अधम=नीच। नाटक का वह अंक जो सामाजिक का उन घटनाओं की सूचना देता है जो नाटक में नहीं दिखाई जा सकतीं।

भावार्थ—आज मैं देवताओं की जाति के भयंकर और टूटे हुए गर्व के प्रतीक के रूप में जीवित हूँ। मुझे देखकर ही व्यक्ति सारी देवता जाति के गर्व का स्मरण होगा। और वह गर्व भीषण था क्योंकि उसीके कारण ही तो प्रलय हुई। किन्तु आज वह मिट चुका है। जिस प्रकार नाटक के प्रथम अंक में ही विष्कमक किसी बीती हुई करुण कहानी की सूचना देता है, वैसे ही मैं भी मानव-जाति के प्रथम चरण में देव जाति के नाश की दुख भरी कथा सुनाने आया हूँ।

अब मनु को जीवन की नश्वरता का विश्वास हो जाता है। जीवन का वैभव मरु मरीचिका के समान दिखाई देने लगता है। नश्वरता का दृश्य देख लेने के पश्चात् स्वभावतः ऐसी भावनाएँ पैदा होती हैं।

"ओ जीवन ठाँव। 71-72

शब्दार्थ—मरु मरीचिका=मृग तृष्णा, असत्य। अलस विषाद=आलस्य से भरा हुआ और दुःखी—विशेषण विपर्यय। पुरातन अमृत=प्राचीन अमृत, अमर जाति अगतिमय=विकास रहित। मोहमुग्ध=मोह में डूबा हुआ। जर्जर= निर्बल। अवसाद=निराशा। प्रकट अभाव=दिखाई देने वाला अभाव। अमरते=अमर जाति।

भावार्थ—जीवन मृग तृष्णा के समान है। जिस प्रकार हरिण सूर्य की

किरण से चमकती हुई रेत को जल समझ कर उसके पीछे दौड़ता है किन्तु न तो उसे जल प्राप्त होता है और थकावट व्यर्थ हो जाती है, उसी प्रकार मनुष्य भी जीवन में आनन्द समझ कर कठोर परिश्रम करता है किन्तु सिवाय थकावट के कुछ हाथ नहीं होता। जिसे वह आनन्द समझता है वह वस्तुतः कुछ भी नहीं। जीवन में कायरता भरी हुई है, इसीलिए वह आलसी हो जाता है और दुखी रहता है। सत्य का सामना करने का साहस न रखना ही कायरता है। प्राचीन देवता जाति विकास रहित है, उसकी उन्नति अवरुद्ध हो गई है। यह जाति मोह में डूबी हुई थी, निर्बल थी और निराशा में विलीन हो गई।

इस समय सर्वत्र शान्ति है, सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो गया है और चारों ओर अंधेरा फैला हुआ है। मनु कहते हैं कि उस समय जो प्रत्यक्ष प्रभाव शून्य के रूप में दिखाई दे रहा है वही सत्य है। नाश और मृत्यु ही सत्य है। अमर देवताओं के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है।

13-17 मृत्यु .... अभिशाप।

शब्दार्थ—चिरनिद्रे=हमेशा रहने वाली निद्रा। अंक=गोद। हिमानी=बर्फ काल = जलधि=समय रूपी सागर। महा-नृत्य=महान नाच सृष्टि जीवन। विषम=कठोर। सम=नृत्य में जब पूरा पाँव धरती पर मारा जाता है वहाँ एक गति-चक्र शान्त हो जाता है, उसे सम कहते हैं शान्ति। अखिल=सम्पूर्ण। स्पन्दन=कम्पन। विभूति=देन। सृष्टि=संसार। अभिशाप=शाप।

भावार्थ—हे मृत्यु तू अनन्त निद्रा है क्योंकि मृत्यु की नींद सो जाने वाला व्यक्ति कभी नहीं उठता। तेरी गोद बर्फ के समान शीतल है। जिस प्रकार बर्फ ठंडी होती है और उसमें जड़ता भी होती है उसी मृत्यु में जीवन का ताप शान्त हो जाते हैं और वह जड़ हो जाता है। जिस प्रकार सागर में लहरें उठती हैं और उसकी अखण्डता में ही उसका विभाजन हो जाता है, उसी मृत्यु भी इस अनन्त समय रूपी सागर में उठी एक लहर के समान है जो उसके हलचल मचा देती है। समय अनन्त है। किन्तु मृत्यु और प्रलय उस अनन्त काल का विभाजन कर देती हैं और उसके आन्दोलन उपस्थित कर देती है। जिस प्रकार लहर के आने पर सागर शान्त बना रहता है, उसी प्रकार यदि मृत्यु न हो तो काल एक रस रहे। काल के उतार

प्रवाह का कारण मृत्यु ही है।

"हे मृत्यु तू इस सृष्टि रूपी महान नृत्य का कठोर सम है। प्रलय ही इस सृष्टि के नृत्य को शान्त कर देती है। शैव दर्शन के अनुसार सारा संसार नटराज शिव का नृत्य ही है। हे मृत्यु, तू सम्पूर्ण कम्पनों और गतियों को नापने वाली है। मृत्यु सब गतियों का अन्त कर देती है जिससे हम उसके समय की सीमा में बाँध सकते हैं। संसार तेरे ही शाप के कारण नष्ट होता है। किन्तु यदि संसार नष्ट न हो तो उसका नव निर्माण कैसे हो सकता है, नाश के उपरान्त जब संसार का नवीन निर्माण होता है, तो वह नया संसार भी तेरी ही देन है। यदि तू पहले युग का अन्त न करती तो नया युग कैसे आता।

प्रसाद को संसार के विकास पर दृढ़ आस्था है। और इस विकास के दो चरण हैं नाश और सृजन। यदि नाश नहीं है तो सृजन भी नहीं है और जहाँ सृजन है वहाँ नाश भी अनिवार्य है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है।

अंधकार .... समाता में।"

शब्दार्थ—अट्टहास=कहकहा, जोर की हँसी। अंधकार के अट्टहास-सी = अंधकार के प्रसार के समान लक्षण। मुखरित=स्पष्ट, प्रकट। सतत=सदैव। चिरंतनसत्य = सनातन सत्य। नित्य = सत्य। क्षुद्र अंश=छोटा भाग। व्यक्त= प्रकट। घन-माला=मेघ। सौदामिनी=बिजली। सन्धि = मिलन, संयोग।

भावार्थ—हे मृत्यु! तू अंधकार के फैलने के समान है। जिस प्रकार अन्धकार में सभी वस्तुएँ विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार मृत्यु में सब कुछ लीन हो जाता है। मृत्यु तो सदैव प्रकट होने वाला सनातन सत्य है। प्रति वर्ष वस्तुएँ मृत्यु की ओर लपकी आ रही हैं। हम नित्य ही वस्तुओं को निर्बल होते हुए नष्ट होते हुए देखते हैं। हे मृत्यु! तू संसार के प्रत्येक कण में छिपी हुई है। सारा संसार नश्वर है। यह रहस्य सनातन है, हमेशा से ऐसा होता आया है किन्तु यह सुन्दर भी है क्योंकि नाश के पश्चात ही तो नवीन निर्माण होता है। उपमा अलंकार।

✓ हे मृत्यु जीवन तो तेरा एक छोटा सा भाग है। जिस प्रकार आकाश पर

छाए हुए मेघों से अल्प समय के लिए बिजली चमकती है और फिर व्यापक अन्धकार में लीन हो जाती है उसी प्रकार जीवन भी एक क्षण भर के लिए व्यापक विस्तार में प्रकट होता है और फिर तुम्हीं में लीन हो जाता है। उपमा अलंकार।

"उजालाके" के स्थान पर 'उजाले में' होना चाहिए। किन्तु तुक मिलाने के लिए यह प्रयोग अनिवार्य है।

१४

पवन मस्य

शब्दार्थ—निर्जनता=मनुष्य का अभाव। साँस उखड़ना=मृत्यु के समीप पहुँचना, नष्ट होना। निर्जनता की उखड़ी साँस=शान्त टूट गई लक्षणा। दीन=दर्द भरी। हिम-शिलाओं=बर्फ की चट्टानों। अनस्तित्व=नाश। ताण्डव नृत्य=भयंकर नृत्य। विद्युत्कण=बिजली के कण। भारवाही=भार ढोने वाले। भृत्य=सेवक।

भावार्थ—मनु ने जो कुछ भी कहा वह सब वायु में लीन हो गया। मनु के शब्दों ने निर्जनता को तोड़ दिया। मनु की ध्वनि बर्फ की चट्टानों से टकरा कर दर्द भरी प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई दे रही थी।

चारों ओर नाश का भयंकर नृत्य हो रहा था। बिजली के कण आक र्षण शक्ति से रहित होकर अलग अलग गतिमान थे। वे बिजली का भार ढोने वाले नौकर बने हुए थे।

आधुनिक विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सभी वस्तुएँ परमा णुओं के संयोग से बनी हैं। और परमाणु बिजली के कणों-इलैक्ट्रान्स Electrons मिलन से बनते हैं। प्रलय और नाश की अवस्था में बिजली के ये कण अलग-अलग हो जाते हैं। इस छन्द से ज्ञात होता है कि प्रसाद को विज्ञान की सूक्ष्मताओं का भी पूरा ज्ञान था।

१५ मस्तु प्रातः।

शब्दार्थ—मृत्यु-सदृश=मृत्यु के समान। शीतल निराश=शान्त निराशा। आलिंगन=मिलन। परमव्योम=विशाल आकाश। मुद्राएँ = मुद्रा। दृष्टि=

वर्षा । वाष्प=भाप । भीषण=भयंकर । जल संघात=जल की राशि । और चक्र= वह चक्र जिसमें सूर्य आदि सब नक्षत्र भ्रमण करते हैं। आवर्तन = गति । निशा=रात ।

भावार्थ—जिधर भी देखते थे उधर ही आँखों को मृत्यु के समान शान्त निराशा ही दिखाई देती थी । उस नाश के दृश्य को देखकर निराशा ही होती थी । और उधर विशाल आकाश से धूल के कणों के समान घने कुहरे की वर्षा होती दिखाई देती थी ।

या वह भयंकर जल की राशि भाप के रूप में उड़ती हुई दिखाई देती थी सूर्य के मण्डल में घूमने वाले सभी नक्षत्र गतिमान थे और अब प्रलय की रात का प्रात काल निकट ही था ।

आशा

चिन्ता सर्ग के अन्त में प्रातःकाल के आगमन का संकेत है। आशा सर्ग का आरम्भ उषा के वर्णन से होती है। उषा आशा का प्रतीक है। इसलिए इस वर्णन में मनुष्य तथा प्रकृति के बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव क दर्शन होते हैं।

जब सूर्य निकल आता है और मनु को सु प्रकृति के रमणीय दृश्य के दर्शन होते हैं तो उनकी चिन्ता की कालिमा धुलने लगती है और उसमें आशा की ज्योति जगने लगती है। तब वह स्वस्थ होकर उठते हैं, एक सुन्दर गुहा में अपना निवास स्थान बनाते हैं। भोजन बनाने के लिए शालियाँ आदि चुनते हैं। वे अपना जीवन तप में लगा देते हैं किन्तु फिर भी अतीत की स्मृति भूलती नहीं। एकान्त जीवन बड़ा निर्मम होता है। उनके हृदय में अनादि वासना का जागरण होता है। किन्तु वहाँ मनु के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। वे प्रकृति के प्रति ही अपने मन के उद्‌गारों को प्रकट करते हैं।

इस सर्ग में निम्नलिखित बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

१—उषा का वर्णन और मानवीकरण।

२—प्रकृति में रहस्यात्मक संकेत।

३—आशा का मधुर वर्णन।

४—हिमालय का विराट एवं मांसल वर्णन।

५—वासना के जागने पर प्रकृति के दृश्यों में प्रणय की छाया।

६—रात्रि का मानवीकरण।

प्रथम सर्ग से इस सर्ग की तुलना करने पर प्रतीत होगा कि इसमें मनु का चिन्तन सन्तुलित है। उन्हें जीवन की सत्ता में आस्था होने लगी है। वे जीवन में निरत ही नहीं होते वरन् जीवन को विकसित करने का प्रयास भी करते हैं। उनमें प्रणय का जागरण होता है और वह कल्पना लोक में विचरण करते हैं।

। ¯उषा सिर से

शब्दार्थ—सुनहले तीर=सुनहला किनारा। जय-लक्ष्मी=विजय की देवी। पराजित=हारी हुई। काल रात्रि=प्रलय की रात। अन्तर्निहित हुई=छिप गई। विवर्ण=रंग हीन, शोभा हीन। त्रस्त=भयभीत।

भावार्थ—उषा सागर के सुनहले किनारे पर बरसती हुई विजय की देवी के समान प्रकट हुई। उषा के अवतरण से पूर्व, प्रलय की रात तथा उषा में जो संघर्ष हो रहा था, उसमें प्रलय की रात हार गई और जल में जाकर छिप गई।

इस छन्द में व्यंजना द्वारा युद्ध का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'बरसती' का अर्थ यदि बरसाती किया जाय तो अर्थ अधिक स्पष्ट और रमणीय हो जाता है। आँसू में भी एक स्थान पर प्रसाद जी ने बरसने का प्रयोग बरसाने के अर्थ में किया है। व्याकरण की दृष्टि से ऐसा प्रयोग दोष माना जाएगा।

प्रलय के समय प्रकृति का मुख भय के कारण शोभाहीन हो गया था। उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो गया था प्रलय बीत जाने पर आज प्रकृति हँस रही है, उसमें सौंदर्य बिखर रहा है। वर्षा बीत गई है। और शरद ऋतु का आगमन हो रहा है।

नव कोमल जल से।

शब्दार्थ—नव कोमल आलोक=नवीन मधुर प्रकाश। हिम संसृति = बर्फ का संसार। अनुराग = प्रेम। सित सरोज=सफेद कमल। मधुमय=रसीला। पिंग पराग=पीली पुष्प रज। हिम आच्छादन=बर्फ का पर्दा। धरातल= धरती।

भावार्थ—नवीन मधुर प्रकाश प्रेम के साथ बर्फ पर फैलने लगा। ऐसा प्रतीत होता था मानो सफेद कमल के ऊपर रसीली पीली पुष्परज फैली हुई है। सफेद कमल के समान है और उस पर पड़ती हुई पीली ज्योति, पीले पराग के समान है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

'भर अनुराग' प्रयोग का अभिप्राय सूर्य की ज्योति और बर्फ के मधुर मिलन को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

यह कौन है जिसका कटाक्ष प्रलय के रूप में प्रकट हुआ था जिसमें ये सब देवता इतने व्याकुल रहे थे ! हम तो इन्हें प्रकृति के शक्तिशाली चिन्ह मानते थे, देवता मानते थे। किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि ये कितने अशक्त हैं।

विकल ... जुत ले।'

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल। सकल भूत चेतन समुदाय=सारे प्राणियों का समूह। तुरंग=घोड़ा।

भावार्थ—प्रलय के समय सारे प्राणी अत्यन्त व्याकुल होकर काँप रहे थे। उनकी दशा अत्यन्त बुरी थी। न तो कोई उनका सहारा था और नहीं उनका कोई उपाय चलता था।

अब मनु को सत्य ज्ञान हुआ और वे कहते हैं—न तो हम ही देवता थे और न ये देवता हैं। सभी परिवर्तनशील है। हाँ यह बात जरूर है कि कोई, गर्वरूपी रथ में घोड़े के समान चाहे जितना जुत ले। गर्व में चाहे कोई अपने आपको कितना ही शक्तिमान क्यों न समझ ले और परिश्रम करता रहे, किंतु सत्य नहीं बदल सकता। रूपक और उपमा।

"महानील ... छिपे हुए।

शब्दार्थ—परमव्योम=विशाल आकाश। अंतरिक्ष=आकाश और धरती के बीच का स्थान। ज्योतिर्मान=चमकते हुए। संधान=खोज। तृण=तिनके। वीरुध=लताएँ।

भावार्थ—इस विशाल नीले आकाश में चमकते हुए यह नक्षत्र और बिजली के कण किसे खोज रहे हैं!

सारे नक्षत्र आकर्षण में बँधे हुए चलते रहते हैं, छिप जाते हैं और फिर उदय होते हैं। किसके रस से तिनके और लताएँ हरी-भरी हो रहा है?

मनु के मन की जिज्ञासा का व्यापक प्रभाव। उन्हें प्रकृति भी किसी विराट शक्ति की खोज करती दिखाई देती है।

सिर ... सह सकता।

शब्दार्थ—प्रवचन=स्तुति। रमणीय=सुन्दर।

भावार्थ—यह कौन है, जिसकी सत्ता को सभी सिर झुकाकर स्वीकार करते हैं! हम मौन रहकर भी जिसकी स्तुति करते हैं, वह शक्ति कहाँ है! हमारे मौन में भी उसी शक्ति की स्तुति है क्योंकि हमारी सत्ता से ही उसकी विराट सत्ता का संकेत मिलता है।

हे अनन्त और सुन्दर! तुम कौन हो। यह मैं कैसे बता सकता हूँ। तुम्हारे विषय में कौन और क्यों का उत्तर विचार द्वारा, तर्क के द्वारा नहीं दिया जा सकता।

'मार विचार—' प्रसादजी तर्क-ज्ञान के विरुद्ध हैं। आगे चलकर उन्होंने तर्कमयी इडा की भी असफलता दिखाई है।

हे विराट् गान।"

शब्दार्थ—सयुक्त=युक्त।

भावार्थ—हे विराट्, हे विश्वदेव! तुम्हारी सत्ता है अवश्य इतना तो मुझे आभास होता है किन्तु इससे अधिक तुम्हारे विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता समुद्र अपने धीर और गम्भीर स्वर से गा-गा कर यह बता रहा है कि तुम्हारी सत्ता, है अवश्य। प्रकृति में रहस्य संकेत।

अब मनु के हृदय में आशा का उदय होता है। आगे उसी का वर्णन है।

"यह क्या तान।

शब्दार्थ—झिलमिल=कभी प्रकट होने वाली और कभी छिपने वाली। सदय=करुण। समीर=वायु। प्राण समीर=प्राणों का उत्साह। स्पृहणीय=वांछनीय। छविमान=सुन्दर। स्मिति=हँसी। मधुमय तान=मनोहर संगीत।

भावार्थ—स्वप्न के समान मनोहर तथा कभी प्रकट होने वाली और कभी छिप जाने वाली आशा मेरे करुण हृदय में अधीरता के साथ प्राणों के उत्साह के रूप में व्यक्त हो रही है। मनु का हृदय करुणा से भरा है। उसमें आशा व्यक्त होती है और हृदय में उत्साह का संचार करती है। उपमा अलङ्कार।

आशा मनोहर जागरण के समान सुन्दर है। जिस प्रकार निद्रा पूरी कर

मुकने के पश्चात् मनुष्य जागता है, तो उस समय उसे अपने शरीर में अदम्य शक्ति और साहस का अनुभव होता है। उसी प्रकार आशा के उदय होने पर भी शक्ति और आनन्द की अनुभूति होती है। यह आशा बड़ी वांछनीय, हो गई है। यह हृदय में हँसी की लहरों के समान उठती है—मन में हर्ष की लहरें उठाती है। इसमें मनोहर संगीत की सी मोहकता है।

स्थूल प्रतीकों के द्वारा सूक्ष्म आशा का सफल एवं कलापूर्ण चित्रण है। उपमा अलंकार।

खोयम! गानों में।

शब्दार्थ—खेल रहा है=व्यक्त हो रहा है। शीतलदाह=आशा में सुख के साथ साथ परिश्रम की प्रेरणा भी है। इसलिए उसे शीतल दाह कहा—विरोधाभास। शारसत=भ्रमर। नभ के गानों में=आकाश के संगीत में, संसार के इतिहास में।

भावार्थ—आशा के उदय होने पर अब जीवन की प्रेरणा मिल रही है। हृदय में आशा के कारण हर्ष भी है और जीवन के विकास की आशा में परिश्रम का ताप भी है। पता नहीं आज मेरे हृदय का उत्साह किस अज्ञात शक्ति के पाँव पर झुका जा रहा है। मैं अपने आपको किसके चरणों में अर्पित किए देता हूँ। यहाँ फिर रहस्यात्मक संकेत है।

आज मुझे अपनी सत्ता की गूँज वरदान के समान सुनाई देने लगी है। चिन्ता में ग्रस्त रहकर मैंने जीवन को क्षणिक और मरण को शाश्वत माना था, किन्तु आज मुझे जीवन पर आस्था होने लगी है। मेरे मन में भी यह इच्छा होने लगी है कि मैं संसार के इतिहास में अमर हो जाऊँ।

यह संकेत होगा!"

शब्दार्थ—विकास मयी=उन्नति संयुक्त। लालसा=इच्छा। प्रखर=तीव्र। विलासमयी=आनन्द भरी।

भावार्थ—पता नहीं आज किसी की विकासमान सत्ता मुझे भी जीवन की ओर बढ़ने का संकेत कर रही है। पता नहीं आज क्यों मेरे जीवन की इच्छा इतनी तीव्र और आनन्दप्रद बन गई!

तो फिर क्या मुझे जीवित रहना पड़ेगा! मैं भी कर क्या करूँगा! इस

एकान्त प्रदेश में मेरे जीवन का क्या उद्देश्य होगा ? हे देव ! मुझे यह तो बता दो कि कब मैं अपनी गंभीर व्यथा को लेकर मरूँगा। यद्यपि आशा का उत्साह मनु के मन है किन्तु अभी प्रलय का दृश्य भी उनकी आँखों में है और अपनी पीड़ा भी। इसलिए यहाँ यह दुविधा सी दिखाई देती है। आशा जीवन की ओर बढ़ाती है। हृदय की व्यथा निराशा का सृजन करती करती है और पलायन वृत्ति को उद्दीप्त करती है।

एक यवनिका गैल रही।

शब्दार्थ—यवनिका=पर्दा। पवन से प्रेरित=पवन के द्वारा। माया पट जैसी=माया के पर्दे जैसी यवनिका। आवरण मुक्त = अवगुणों से रहित प्रलय के समय सर्वत्र अन्धकार का आवरण छा गया था, अब वह दूर हो गया। स्वर्ण शालियों की = सुनहली धानों की। शरद इन्दिरा=शरद लक्ष्मी। गैल=सड़क, मार्ग।

भावार्थ—आँधी और तूफान के द्वारा निर्मित माया के पर्दे जैसी अन्धकार और मेघों की यवनिका दूर हो गई। जिस प्रकार माया मनुष्य को मोह में डाल देती है, उसी प्रकार प्रलय में फैले अन्धकार ने सब दृश्यों को अपने गर्भ में लीन कर लिया था। अन्धकार के दूर हो जाने पर प्रकृति का पहला सा सौंदर्य फिर निखर आया।

उस समय दूर-दूर तक सुनहली धानों की कलमें दिखाई दे रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह सुनहले खेत शरद लक्ष्मी के मन्दिर में जाने के मार्ग हैं। दूर से देखने पर सुनहली धानों की कलमें मार्ग के समान दिखाई देती हैं। शरद लक्ष्मी के भवन का मार्ग सोने का होना स्वाभाविक ही है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

इसके पश्चात् हिमालय का वर्णन आरंभ होता है।

विश्व-कल्पना अधीर।

शब्दार्थ-विश्व कल्पना=विश्व का निर्माण करनेवाली कल्पना। उपनिषदों में

ऐसा आया है कि जब ब्रह्म ने एकाकी जीवन में विरसता का अनुभव किया तो उसने कहा कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ और तब संसार का जन्म हुआ। उस ब्रह्म की यह कल्पना जितनी विराट होगी, हिमालय भी उतना ही विराट है। निदान = कारण। अचला=धरती। अवलम्बन=शान्त। शोभनतम= अत्यन्त सुन्दर। लता कलित=लताओं से युक्त। शुचि = पवित्र। सानु= चोटियों वाला।

भावार्थ—यह हिमालय संसार की निर्माण करने वाली कल्पना के समान है। यह अपने मुख में अत्यन्त शीतल है और सन्तोष का देने वाला है। यह मणियों और रत्नों का घर है तथा डूबती हुई धरती को बचाने वाला सहारा है। जैसे कोई डूबने वाला व्यक्ति ऊपर से गिराई हुई रस्सी आदि का सहारा लेकर बच जाता है उसी प्रकार प्रलय के सागर में डूबती हुई धरती भी हिमालय का सहारा लेकर बच गई है।

यदि हिमालय का शरीर बड़ा सुन्दर है, लताओं से युक्त है, पवित्र है और चोटियों से युक्त है। ऐसा प्रतीत होता मानों हिमालय सो रहा है और कोई मधुर स्वप्न देख रहा है जिसके कारण यह पुलकित एवं अधीर हो उठा है।

'निद्रा—अधीर' इन पंक्तियों में हिमालय का मानवीकरण किया गया है। यहाँ मानवीय पक्ष की प्रधानता भी होगई। हिमालय अचल है इसलिए उसे निद्रा में मग्न बताना ठीक है। हिमालय में चोटियाँ हैं इसलिए उसे पुल कित भी कह सकते हैं। लताएँ वायु में डोलती हैं इसलिए उसे अधीर भी कह सकते हैं।

उमड़ रही गान।

शब्दार्थ—नीरवता = शान्ति। विमल विभूति = पवित्र विभूति। असीम नीले अंचल में=आकाश के अंचल के भीतर। मृदु मुस्कान = मुस्करा हट। कल गान = मधुर संगीत।

भावार्थ—उस हिमालय के चरणों पर शान्ति की पवित्र विभूति का अक्षय भण्डार है। सबत्र शान्ति का साम्राज्य है, जो हृदय को विभोर कर कर देने वाली है। उसमें शीतलझरने बह रहे हैं जो हिमालय के जीवन के

अनुभवों को समाज के, कल्याण के लिए फैला रहे हैं। महान व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों से सब का कल्याण करते हैं।

उन झरनों के मनोहर संगीत को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो हिमालय ने नीचे आकाश के भीतर किसी की मधुर मुस्कराहट देखली है और वह स्वयं भी हँस रहा है। झरने सफेद रंग के हैं हँसी का वर्ण भी श्वेत माना जाता है। हँसने में मधुर ध्वनि होती है। झरनों में मधुर संगीत है। इन पंक्तियों में रहस्य संकेत है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

शिला   किरीट।

शब्दार्थ—शिला संधियाँ=दो चट्टानों के बीच का रिक्त स्थान। दुर्भेद्य= जिसे भेदा न जा सके, जिसे तोड़ा न जा सके। अचल=शान्त। चारण सदृश= भाट के समान। संध्या-घनमाला = संध्या के रंगीन बादल। गगन-चुम्बिनी= आकाश तक पहुँचने वाली। शैल श्रेणियाँ=पर्वत की शाखाएँ। तुषार=बर्फ। किरीट=मुकुट।

जब वायु दो चट्टानों के बीच के रिक्त स्थान में टकराती थी तो वहाँ आवाज होती थी। जिस प्रकार भाट राजाओं की निर्भीकता और दृढ़ता के गीत गाते हैं, और उसी प्रकार वायु की वह आवाज भी उस पर्वत की कठोरता और दृढ़ता का प्रचार करती सी प्रतीत होती थी।

भावार्थ—आकाश तक पहुँचने वाली पर्वत की श्रेणियों ने सध्या के रंगीन बादलों से बना रंग-बिरंगी छींट का वस्त्र पहना हुआ था। उनके सिर पर बर्फ का स्वच्छ मुकुट था। सांगरूपक।

विश्व मौन   भ्रांत रही।

शब्दार्थ—मौन=नीरवता। गौरव = गरिमा। प्रतिनिधि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को ही अपने समाज का प्रतिनिधि बनाया जाता है, हिमालय में मौन, गौरव, महत्त्व की जो शोभा है वह उनका प्रतिनिधित्व करती है। भरी विभा=पूर्ण शोभा। अनन्त प्रांगण = विशाल आँगन। व्योम=आकाश। अभाव=कमी। भ्रान्त रही=भटकती रही।

भावार्थ—संसार की शान्ति, गरिमा और महत्ता की जो पूर्ण शोभा हिमालय में लक्षित होती है वह उनका प्रतिनिधित्व करती है। संसार में

कहीं भी शक्ति गरिमा और महत्ता की यह शोभा नहीं है जो हिमालय में है। ऐसा प्रतीत होता था कि शान्ति आदि की यह शोभा हिमालय के विशाल आँगन में चुपचाप खेला कर रही हों। उत्प्रेक्षा अलंकार।

प्रथम दो पंक्तियों का अन्वय प्राय, गलत किया जाता है। श्री विश्वम्भर मानव ने भी उनका अन्वय गलत किया है। उनका सही अन्वय यह है "विश्व मौन गौरव महत्त्व की भरी विभा प्रतिनिधियों सी है।"

अनन्त आकाश की नीलिमा अभावात्मक है। आकाश में कुछ नहीं है इसलिये उसका वर्ण नीला दिखाई देता है। यह नीलिमा शान्त है, अनन्त ऊँची है किन्तु यह अपने अभावात्मक रूप में ही भटकी सी दिखाई देती है।

उसे दिखाती ... वरणीय।

शब्दार्थ—अज्ञात=जो उस नीलिमा के लिए अज्ञात है। तुंग-तरंग= ऊँची लहर। सुदर=सुन्दर। विस्तृत=बड़ी। गुहा=गुफा। रमणीय=सुन्दर। वरणीय=स्वीकार करने योग्य वांछनीय।

भावार्थ—हिमालय की यह सुन्दर उठान संसार की एक ऊँची लहर के समान है जो आकाश की अभावात्मक नीलिमा को संसार का सुख, हँसी और आनन्द दिखा रही है।

इस छंद में विशेष बात ध्यान देने की यह है कि प्रसाद ने संसार के सुख, हँसी और उल्लास को मिथ्या नहीं सत्य माना है, वांछनीय माना है। अभावात्मक नीलिमा की तुलना संसार को असत्य रूप में अस्वीकार करने वाले अद्वैतवाद तथा शून्यवाद से की जा सकती है। प्रसाद जी के अनुसार इस प्रकार के दर्शन अपनी अभावात्मकता में ही भटक कर रह जाते हैं। इनके विपरीत प्रसाद जी ने संसार के सुख सौंदर्य को महत्त्व दिया है।

इसी पर्वत में जा आकाश की गोद के समान विशाल गुहा थी उसी में मनु ने अपने रहने का स्थान बना लिया। उनका निवास स्थान बड़ा सुन्दर, निर्मल और वांछनीय था। उपमा अलंकार।

पहला संचित ... धीर।

शब्दार्थ—पहला संचित=पहले से ही प्रज्वलित किया हुआ। मलिन धूम=धुँधली आभा। रविकर=सूर्य की किरण। सम्पन्न किया=लगा दिया।

भावार्थ—उस गुफा में धु धली आभा वाली सूर्य की किरणों के पास ही पहले से प्रज्वलित की हुई अग्नि जल रही थी। मनु ने वहाँ पहुँच कर उसे और भी तेजकर दिया और वह शक्ति तथा ज्ञान के प्रतीक के रूप में फिर से जलने लगी।

अग्नि शक्ति और ज्ञान का प्रतीक मानी जाती है।

सागर के किनारे मनु ने निरंतर यज्ञ करना आरंभ किया। उन्होंने बड़े धैर्य के साथ अपना जीवन तपस्या में लगा दिया।

सजग हुई .... छाया।

शब्दार्थ—सजग हुई = जाग उठी। सुर संस्कृति=देवताओं की संस्कृति जिसमें यज्ञ आदि किए जाते थे। यजन=यज्ञ। वरमाया=श्रेष्ठ स्वरूप। कर्ममयी=कर्म की प्रेरणा देने वाली। शीतल=आनन्द देने वाली। छाया= प्रभाव।

भावार्थ—मनु के प्रयत्नों से देवताओं की संस्कृति फिर से जाग उठी। वे निरंतर देवताओं द्वारा निर्धारित यज्ञ करने लगे। और वे यज्ञ उनको कर्म में प्रेरित करने लगे और उनके मन को शान्ति प्रदान करने लगे।

उठे स्वस्थ .... धुनने।

शब्दार्थ—क्षितिज=आकाश। अरुणोदय कांति=मनोहर प्रातःकाल। क्षुब्ध = मोहित। पाक यज्ञ=भोजन बनाना। वह्नि ज्वाला=आग की लपटें। धूम पट थी धुनने=उसमें से धूँआ निकलने लगा था।

भावार्थ—जिस प्रकार आकाश में मनोहर प्रातःकाल का आगमन होता है उसी प्रकार मनु भी अपने चित्त को दृढ़कर के उठे। प्रातःकाल से उपमा देने से नवीन सभ्यता के निर्माण की ओर भी संकेत है। वे मोहित नेत्रों से प्रकृति के मनोरम एवं शान्त रूप को देखने लगे।

इसके पश्चात उन्होंने भोजन बनाने का निश्चय किया और इसके लिए वे धानें धुनने लगे। आग की लपटों से भी धूआँ निकलने लगा था।

शुष्क .... रचे हुए।

शब्दार्थ—शुष्क=सूखी हुई। अर्चियाँ=लपटें। समिद्ध=उद्दीप्त। नभ कानन=आकाश और वन। समुद्र=सुशोभित।

भावार्थ—मनु ने वृक्षों की सूखी डालियाँ अग्नि में डाल दी जिससे आग की लपटें तेजी के साथ जल, उठीं। उसमें आहुति डालने से जो धुँए की सुगन्धि उठी उस से आकाश और वन सुशोभित हो गया।

मनु ने मन में यह सोचा कि जिस प्रकार हम बच गए हैं संभव है उसी प्रकार अन्य कोई प्राणी भी बच गया हो।

अग्निहोत्र ... रहते थे।

शब्दार्थ—अग्निहोत्र अवशिष्ट=यज्ञ के पश्चात बचा हुआ भोजन। तृप्त=सन्तुष्ट। गहन=कठोर। नीरवता=शान्ति।

भावार्थ—यह सोचकर यज्ञ से बचे हुए भोजन को दूर एक स्थान पर रख आते थे। यदि कोई जीवित हुआ तो वह उसे खा कर सन्तुष्ट हो जाएगा, यह सोच कर वह भी सुखी होते थे।

दुख का कठोर पाठ पढ़ लेने के पश्चात अब मनु ने सहानुभूति का महत्व समझा था। यह स्वाभाविक है। सदा सुखी रहने वाला व्यक्ति दूसरों के दुखों से उदासीन रहता है। दुखी व्यक्ति दूसरे दुखी व्यक्ति से सहानुभूति रखता है। मनु उस शान्त वातावरण में अकेले ही मस्त रहते थे।

मनन ... दीन।

शब्दार्थ—ज्वलित=जलती हुई। सजीव तपस्या=की मूर्ति। पतझड़= नीरस तथा उदास वातावरण प्रतीक योजना। अस्थिर=चंचल। दीन= निस्सहाय।

भावार्थ—मनु जलती हुई आग के पास बैठकर विचार किया करते थे, जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में चिन्तन किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो तपस्या की मूर्ति एकान्त तथा उदास वातावरण में निवास कर रही है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

उस मनोहर वातावरण की पतझड़ से तुलना करना इसलिए उचित है कि मनु अकेले हैं, इस कारण उदास हैं।

यद्यपि वे अपना अधिकांश समय चिन्तन में व्यतीत करते थे किन्तु कभी उन्हें चिन्ताएँ सताया ही करती थीं। श्रम की समाप्ति पर, लकड़ियों आदि की समाप्ति पर उन्हें निन्द्रा आ ही जाती थी। इसी प्रकार उनका अस्थिर

एक असहाय जीवन धीरे-धीरे बीतने लगा।

प्रश्न ... व्यस्त।

शब्दार्थ—अर्थकार की माया=एकान्त वातावरण। रंग बदलते=नए रूप धारण करते। विराट्=महान शक्ति। अर्ध स्फुटित=आधे स्पष्ट अर्थ व्यक्त। सकर्मक=कर्म में लीन। निज अस्तित्व=अपनी सत्ता।

भावार्थ—उस एकांत तथा अपरिचित प्रदेश में मनु के सामने नित्य ही नए-नए प्रश्न उपस्थित होते थे। उस महान शक्ति की छाया में वे प्रश्न नित्य ही नए रूप बदल कर आते थे।

उन्हें अपने प्रश्नों के अर्थ व्यक्त उत्तर ही मिलते थे। उधर सारी प्रकृति अपने कार्य में लीन थी। आज मनु का जीवन अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए क्रिया शील था।

तप में ... तीरे।

शब्दार्थ—निरत=लीन। नियमित=नियम के अनुरूप। विश्व रंग= संसार रूपी रंग स्थल। कर्म जाल के सूत्र=कर्मकाण्ड के तन्तु। घन = बादल। नियति शासन=भाग्य का शासन। स्पंदन = कम्पन। तीरे=किनारे।

भावार्थ—मनु ने अपना जीवन तप में व्यस्त कर दिया और वे नियमानुसार सारे कर्म करने लगे। विश्व रूपी रंग स्थल में कर्मकाण्ड के तन्तु बादलों के समान घिरने लगी। आकाश पर पहले बादल के टुकड़े दिखाई देते हैं और फिर घने मेघ घिर आते हैं। उसी प्रकार मनु ने कर्म करने आरम्भ किए जो आगे चल कर गंभीर एवं सघन हो गए। संसार को रंगस्थल, कहना भी उचित है। प्रथम तो शैव 'दर्शन के अनुसार संसार शिव की क्रीड़ा स्थली माना जाता है। वैसे भी संसार को रंगस्थल माना जाता है जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपना अपना कार्य करता रहता है।

मनु विवश से उस एकान्त प्रदेश में भाग्य के शासन में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। उनका यह जीवन ऐसा ही था जैसे सागर के किनारे पर धीरे से किसी लहर का कम्पन होता हो। किनारे पर उठने वाली लहर जिस प्रकार किनारे से बँधी रहती है, स्वच्छंद नहीं होती उसी प्रकार मनु भी उस एकांत वातावरण में भाग्य द्वारा नियमित हैं। जिस किनारे की लहर में

उच्छ्वास वेग नहीं होता, उसी प्रकार मनु के प्रयत्न भी विराट नहीं हैं क्योंकि वहाँ वे चपल ही हैं।

मनु की परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिस में एक भाग्य का ही सहारा है।

विजन नवीन।

शब्दार्थ—विजन=निर्जन। तन्द्रा=निद्रा। आलोक वृत्त=वह भाग जिस पर भ्रमण करते हैं। ग्रह—ज्ञापना=समय की गति ग्रहों की गति के द्वारा ही नापी जाती है। ग्रहों के भ्रमण से काल अपने आप को अभिव्यक्त कर रहा था। प्रहर=पहर। विराग-पूर्ण=विरक्ति से भरी हुई। संसृति=सृष्टि।

भावार्थ—मनु उस एकान्त स्थान में सोए हुए सूने सपने देखा करते थे। एकान्त जीवन में अनासक्ति के कारण ही मनु का जीवन उदास होता जा रहा था। और उधर समय नक्षत्रों की गति के प्रकाश पूर्ण मार्ग के द्वारा अपने आपको अभिव्यक्त करता था। *समय अपनी गति से आगे बढ़ता रहा। चाहे कोई सुखी हो चाहे कोई दुखी, समय किसी की चिन्ता नहीं करता।*

पहर आते थे, दिन आते थे और रातें आती थीं और फिर बीत जाती थीं किंतु उनमें मनु के लिए कोई नया सन्देश नहीं था। उनका जीवन अपनी परिस्थितियों में बंध गया और प्रतिदिन उनका जीवन वैसे ही व्यतीत होता था। दिन और रात का आना उस उदासी के संसार में व्यर्थ ही नवीनता का आरम्भ होता था। रात के बाद नया दिन आता था और दिन के बाद नई रात आती थी। किन्तु रात और दिन की यह नवीनता, निष्फल थी, उसमें मनु के लिए कोई सन्देश नहीं था। और इस नवीनता में भी निष्फलता का कारण था। मनु के वातावरण की उदासी।

धवल मनोहर गम्भीर।

शब्दार्थ—धवल=श्वेत। चन्द्रबिम्ब=चन्द्रमण्डल। अंकित=युक्त। स्वच्छ=निर्मल। निशीथ=अर्धरात्रि। पावन उद्गीथ=पवित्र सामगान। *विस्तृत था=फैला था। उर्मिल=लहरों से युक्त। व्यथित अधीर=दुखी एवं चंचल। चन्द्रिका निधि=चाँदनी का सागर।*

भावार्थ—*निर्मल अर्धरात्रि श्वेत चन्द्र मण्डल से सुशोभित थी। धीरे* धीरे शीतल वायु चल रही थी और उसका शब्द ऐसा प्रतीत होता था मानो

यह पवित्र सामगान हो।

नीचे दूर-दूर तक लहरों से भरा हुआ दुखी एवं चचल सागर फैला था। और अन्तरिक्ष में उसी के समान ही चाँदनी का गंभीर सागर भी व्यस्त था।

इस छन्द में सागर तथा चाँदनी पर मानवीय भावों-व्यथा और अधीरता का आरोप किया हुआ है। इस समय मनु भी एकान्त जीवन से व्यथित और अधीर हैं। इसलिए इन भावनाओं का चाँदनी तथा सागर पर आरोप हुआ है।

खुली उसी ... उलझता था !

शब्दार्थ—रमणीय दृश्य=मधुर दृश्य। अलसचेतना की आँखें=अलसाई चेतना जाग उठी सहसा। हृदय कुसुम = हृदय रूपी फूल। मधु=रस प्रेम। पाँखें = पंखुड़ियाँ, भावनाएँ—प्रतीक योवना। चल प्रकाश=चंचल प्रकाश। कम्पन=चंचलता। अतीन्द्रिय = इन्द्रियों से परे। स्वप्न लोक=स्वप्न का ससार, कल्पना का जगत। मधुर रहस्य उलझता था=सुन्दर रहस्य उपस्थित होता था।

भावार्थ—उस सुषमा के प्रभाव से मनु की सोई हुई चेतना जाग उठी। अभी तक मनु ने अपने जीवन को संयम से तप में लीन किया था। किन्तु उस दृश्य के माधुर्य के उद्दीपन के फलस्वरूप उनके हृदय में विविध भावनाएँ जाग उठीं। अचानक ही उनके हृदय रूपी कुसुम की रसीली भावनाओं रूपी पखुड़ियाँ खिल गईं। रूपक। प्रकृति का उद्दीपक प्रभाव।

नीले आकाश में जो चंचल प्रकाश फैला हुआ था वही सुख के रूप में हृदय में गूँज उठा। उसी ने हृदय में माधुर्य भर दिया। और उस समय मनु के सामने एक अलौकिक कल्पना का लोक उपस्थित था।

नव हो ... पार।

शब्दार्थ—अनादि=जिसका आरंभ न हो। वासना=इच्छा। प्राकृतिक भूख=भोजन आदि की इच्छा। चिर परिचित-सा = जो युग्म के सुख से चिर परिचित साथ। द्वन्द्व=जोड़ा, युग्म। दिवा रात्रि = दिन रात। मित्र=सूर्य। वरुण=जल का देवता। अक्षय शृङ्गार=अनन्त सौन्दर्य।

भावार्थ—मनु के हृदय में अनादि इच्छा नवीन रूप से जाग उठी। तपस्या में लीन रहने के कारण उन्होंने अपनी इच्छा को दबा दिया था। किन्तु आज प्रकृति की रमणीयता में वह प्रखर हो उठी। जिस प्रकार भोजन की भूख समय पर लगती ही है, उसी प्रकार इच्छा की भी उत्पत्ति होती है। दोनों में कोई बुराई नहीं है वरन् ये तो स्वास्थ्य की ही निशानियाँ हैं। प्रसादजी कामेच्छा के अप्राकृतिक संयम के विरुद्ध हैं और उसकी क्षति भी उन्हें स्वीकार नहीं है। *मनु का हृदय नारी की सुखद इच्छा कर रहा था।* ऐसा प्रतीत होता था मानो वह नारी के संयोग से सदैव से परिचित है।

मनु के समक्ष दिन का, रात्रि का, सूर्य का और चाँदनी का अनन्त शृंगार बिखरा रहता था। और प्रकृति के उसी सौंदर्य के बीच ही उनकी इच्छा जाग्रत हुई थी। किन्तु उनका जीवन लहराते हुए सागर के समान कठिनाइयों से भरा हुआ है। मनु जीवन की इन वर्तमान कठिनाइयों को भूलकर वस्त्ना में मिलन की आकांक्षा करने लगे।

तप से   अधीर।

शब्दार्थ—संचित=एकत्रित। *तृषित=प्यासा। व्याकुल=इच्छा के कारण।* अट्टहास = हँस पड़ा। रिक्त का=शून्य का। अधीर समन=अत्यन्त अधीर करने वाला—विशेषण विपर्यय। परस=स्पर्श। भीँव=पका हुआ। अलकों से=केशों से। *मधुगन्ध अधीर=रसीली सुगन्धि से युक्त, आनन्द देने वाली।*

भावार्थ—मनु ने तपस्या तथा संयम के द्वारा जिस शक्ति को संचित किया था आज वह इच्छा के कारण प्यासी और व्यथित थी। *किंतु मनु* अकेले थे, विवश थे। अधीर कर देने वाला वह शून्य वातावरण मनु की बेबसी पर खिलखिला कर हँस पड़ा। *मनु को वह एकान्त वातावरण अपनी* हँसी उड़ाता दिखाई देता है।

धीरे धीरे चलने वाली वायु के स्पर्श से मनु का शरीर पुलकित हो उठा। उस समय उन्हें केवल आशा से ही सुख प्राप्त हुआ।

'आशा की उलझी अलकों से, इसलिए कहा कि मनु की आशा किसी आधार पर नहीं है। सम्भव है किसी से भी उनका मिलन न हो क्योंकि प्रलय हो चुकी है। इसलिए उनकी आशा भी स्पष्ट एवं निर्दिष्ट नहीं वरन्

उलझी हुई तथा धूमिल है।

मनु का   चोट।

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल। संवेदना=यथार्थ ज्ञान। जीवन जगती=जीवन के संसार को, कल्पनाओं को। कटुता से=कठोरता के साथ।

भावार्थ—मनु उस एकांत वातावरण के ज्ञान के कारण और भी व्यथित हो उठे। ज्ञान तो जीवन के संसार को कठोरता के साथ कुचल देता है। मनुष्य अनेक इच्छाएँ करता है किन्तु यथार्थ ज्ञान सदैव उसकी इच्छाओं का विरोध कर उन्हें कुचल देता है।

"आह   बकता।

शब्दार्थ—सुख स्वप्नों का दल=सुखद स्वप्नों का समूह। छाया में=शीतलता में।

भावार्थ—मनु दुखी होकर कहते हैं कि यदि संवेदन न होता तो केवल कल्पनाओं का बना हुआ यह संसार कितना रमणीय होता। उसमें मनुष्य के सभी स्वप्न पूरे हो जाते। उसके स्वप्न उदित होते और पूरे भी हो जाते। कोई उनका विरोध नहीं करता।

यदि बुद्धि और हृदय का यह सघष न होता तो इस ससार में किसी को कोई अभाव नहीं होता, कोई असफल नहीं होता। फिर कौन अभावों और असफलताओं की कहानी सुनाता? प्रेम आदि की असफलता का कारण तो समाज की रीति-नीतियाँ ही हैं जिनका सृजन बुद्धि करती है।

कब तक   खोलो।

शब्दार्थ—निधि=खजाना, व्यथा।

भावार्थ—मनु व्याकुल होकर अपने आप से पूछ उठते हैं कि मुझे कब तक और अकेला रहना पड़ेगा? मैं अपनी व्यथा किसे सुनाऊँ? हे मेरे हृदय तुम चुप रहो। अपनी व्यथा को व्यर्थ ही क्यों सुना रहे हो?

"तम के   संदेश !

शब्दार्थ—तमःअन्धकार। कांति किरण रंजित=सुन्दर किरणों से सुशोभित। सात्विक शीतल बिंदु=पवित्र और आनन्द देने वाली बूँद। नवरस=नवीन आनन्द। आतप तापित=धूप से व्यथित, विपत्तियों से दुःखी। अनन्त की गणना=तारे अनन्त आकाश पर बिखरे हुए हैं इसलिए उन्हें अनन्त की गणना कहना उचित है। मधुमय सन्देश=सुखद सन्देश।

भावार्थ—हे सुन्दर किरणों से सुशोभित तारे। तुम अन्धकार के सब से सुन्दर रहस्य हो। तुम्हारा सौंदर्य प्रत्यक्ष है, किन्तु तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई, तुम्हारे स्वरुप क्या हैं, ये सब बातें रहस्य बनी हुई हैं। तुम दुःखी संसार के लिए एक पवित्र और शीतल बूँद हो जिसमें सारा नवीन रस भरा हुआ है। दिन भर का थका हुआ व्यक्ति, तारों की छाया में उन्हें देखता हुआ सुख का अनुभव करता है।

तुम धूप रूपी विपत्तियों से दुःखी जीवन के लिए सुख, शान्ति और शीतलता के देश हो। तुम्हारी छाया मनुष्यों को सुख तथा शान्ति प्रदान करने वाली होती है। तुम सारे सागर पर फैले हुए हो। तुम्हारे सन्देश कितने मधुर और सुखद होते हैं।

दुःखी व्यक्ति प्रायः रात को तारों की ओर देखा करता है। और इससे कुछ सन्तोष का लाभ करता है। दिन भर सूर्य की गर्मी करने वाले व्यक्ति के लिए तो तारों की छाया सचमुच ही पूर्ण सुख प्रदान करने वाली होती है।

आह शून्यते   मधुर हुई ?

शब्दार्थ—शून्यता = सूना पन। इन्द्रजाल जननी=जादू को जन्म देने वाली, मस्ती पैदा करने वाली। रजनी रात्रि।

भावार्थ—मनु अपने हृदय की कहानी कहते ही जाते हैं किन्तु वहाँ शून्यता है, इसलिए कोई उत्तर नहीं मिलता। वह शून्यता से भी कहते हैं कि तू क्यों इतनी चुप रहती है। तू ही मेरी बातों का कुछ उत्तर दे। और हे जादू जैसी मस्ती उत्पन्न कर देने वाली रात। तू क्यों अब इतनी सुन्दर हो रही

है। रात का सौंदर्य उद्दीपक है इसलिए मनु के लिए यह कमनीय नहीं है।

"अब कामना मृदु हास।

शब्दार्थ—कामना=इच्छा। सिंधु तट=सागर के किनारे। सुनहली=साड़ी=सन्ध्या का रंगबिरंगे बादलों का आवरण, आकर्षक रूप। प्रतीप=विपरीत आचरण करने वाली, वक्र। कालशासन=दुख भरा समय का शासन। उच्छृङ्खल=अनियन्त्रित—उच्छृङ्खल शासन का विशेषण है इतिहास का नहीं इसलिए यहाँ विशेषण विपर्यय है। आँसू=ओस।

भावार्थ— जब सन्ध्या रंग विरंगे बादलों की आकर्षक साड़ी पहन कर, सागर के किनारे तारा रूपी दीपक प्रवाहित करने के लिए आती है तो हे रात्रि तू उसकी सुनहली साड़ी को फाड़ कर हँसने लगती है। सन्ध्या के बीच से ही रात्रि का जन्म होता है।

स्त्रियाँ अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए नदी में दीपक प्रवाहित करती हैं। यहाँ सन्ध्या का मानवीकरण है और उसे दीपक प्रवाहित करने वाली बाल के समान दिखाया है।

इस छन्द का व्यञ्जना द्वारा एक दूसरा अर्थ भी निकलता है जिसमें कामना का मानवीकरण है। यह इस प्रकार है—

जब, इच्छा सन्ध्या के तारे रूपी दीपक को लेकर हृदय के तीर पर उदित होती है, तब रात्रि उसके मधुर स्वरूप को खण्डित कर निराशा का वातावरण सृजन कर देती है। रात्रि के समय हृदय में विभिन्न इच्छाएँ उदित होती हैं जो अपनी पूर्ति के लिए व्याकुल रहती हैं। किन्तु मनु की इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं। एकान्त रजनी उनकी इच्छाओं को मिटा देती है।

जब सन्ध्या समय के दुख भरे और अनियन्त्रित इतिहास का ओस के आँसू में अन्धकार को घोलकर लिखना आरम्भ करती है, तभी तू हँस पड़ती है और सर्वत्र छा जाती है।

इन पंक्तियों में भी सन्ध्या का मानवीकरण है। जैसे कोई स्त्री दिन के व्यतीत होने पर दिन भर की घटनाओं का इतिहास लिखने के लिए बैठे! किन्तु अँधेरा छा जाने के कारण न लिख सके।

विश्व पात।

शब्दार्थ—विश्व कमल=संसार रूपी कमल। मृदुल मधुकरी=मधुर भँवरी
कोने=भाग। दिगन्त रेखा=दिशा। मिस=बहाने से।

भावार्थ—यहाँ से रात्रि का मानवीकरण आरम्भ होता है।

हे रात्रि तू संसार रूपी कमल की सुन्दर भँवरी है। पता नहीं तू किस कोने से भाग में बँधी आती है और संसार रूपी कमल को चूम-चूमकर चली जाती है। सांग रूपक अलंकार। *कल्पना नवीन एवं रमणीय है।*

तूने किस दिशा की रेखा में सिसकी जैसी साँस का संचित किया है और समीर के बहाने से हाँफती हुई सी किस के पास चली आ रही है।

'सांस संचित करना' दूर तक भागने से पहले भागने वाला व्यक्ति अपनी साँस साधता है। वैसे ही रात्रि ने भी अपनी साँस साधी है। वायु के झोंके ही रात्रि की तेज साँस है। यहाँ रात्रि का वर्णन किसी अभिसारिका नायिका के समान किया गया है।

विकल लाती।

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल। सिलसिलाती=हँसती-चाँदनी रात की हँसी है। तुहिन कण=ओस के कण। फेनिल=झाग भरी। विजन गगन=एकान्त आकाश।

भावार्थ—हे रात्रि तू क्यों व्याकुल होकर चाँदनी के रूप में खिलखिला कर हंस रही है। तू अपनी चाँदनी को इस प्रकार न बिखेर। ऐसा न हो कि फिर से बादलों में तथा सागर की *झाग भरी लहरों में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाए।* पूर्णिमा को सागर में ज्वार भाटा आता है इसलिए मनु का यह भय संगत है।

'मच जायेगी' प्रयोग व्याकरण सम्मत नहीं है। 'मच जायेगा' होना चाहिए।

तू घूँघट उठा कर किसे देखती है और देखकर मुस्कराती है। *क्यों ठिठकी हुई सी आ रही है।* जिस प्रकार कोई व्यक्ति कोई बात भूल जाता है और फिर स्मरण करने का प्रयास करता हुआ कभी ठिठक जाता है उसी प्रकार *तू भी उस एकान्त आकाश में किस प्रेमी को स्मरण करने का प्रयास करती है।*

इस छंद में मानवीय पक्ष की प्रधानता हो गई है। जिस प्रकार कोई स्त्री अपने प्रियतम को देखकर हँसती है, ठिठकती है, उसी प्रकार रात्रि भी मानो प्रियतम को देख रही है।

मनु को रात्रि में नायिका का सौंदर्य दिखाई देता है। उस पर वे अपने भावों का भी आरोपण करते हैं। आगे उन्होंने स्वयं ही कहा है कि मैं भी कुछ भूल गया हूँ, आदि।

रजत ... चंचल।

शब्दार्थ—रजत कुसुम=चाँदी का फूल। नव पराग = नवीन पुष्प रज। ज्योत्सना = चाँदनी की (धूल)। मणियों की राशि = तारे। बेसुध=बेहोश।

भावार्थ—अरी पगली।। तू चाँदी के फूल की पुष्प-रज के समान उज्ज्वल चाँदनी की इतनी धूल मत उड़ा। तू इस चाँदनी की घनी धूल में अपने आप को ही भूल जाएगी, अपना मार्ग भी खो देगी।

देख तेरा अँचल छूट पड़ा है। तू उसे शीघ्र संभाल ले। तेरी तारों की मणियाँ बिखर रही है। हे बेसुध और अधीर। तू उन्हें बटोर ले।

रात के समय तारे टूट-टूट कर गिरते हैं। और उन्हीं की ओर संकेत है। चंचल से प्रस्तुत पक्ष में क्या अभिप्राय है यह स्पष्ट नहीं है।

फटा हुआ ... दाग।

शब्दार्थ—नील वसन = नीला वस्त्र। अकिंचन=दरिद्र। अतुल=अनुपम विभव=ऐश्वर्य। विराग=विरक्ति। जीवन की छाती के दाग = बीते हुए दुखों के दाग।

भावार्थ—तू जवानी में मदहोश हो रही है। तेरा नीला वस्त्र फट गया है और तुझे ध्यान भी नहीं है। देख यह दरिद्र आकाश तेरी सरल शोभा को लूट रहा है। तू शीघ्र ही अपना वस्त्र ठीक कर ले।

चाँदनी के रूप में रात्रि का यौवन फूट पड़ा है।

तेरे पास तो अनुपम और अपार ऐश्वर्य है। फिर भी तू क्यों इतनी विरक्त हो उठी है जो तुझे अपने यौवन का भी ध्यान नहीं है और तू खोई खोई सी जा रही है। अथवा क्या तू अपने अतीत जीवन की विपत्तियों का स्मरण कर रही है।

नखशिख पर प्रकाश पड़ता है। वह निस्संकोच होकर अभाव में डूबे मनु को अपना सहारा देती है। मनु के मन में नवीन उत्साह निखर उठता है।

इस सर्ग में ये बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१—श्रद्धा का वर्णन या नखशिख वर्णन की प्राचीन परम्परा का आधुनिक रूप है श्रद्धा के इस नखशिख वर्णन का आरम्भ किसी एक निश्चित क्रम से—पाँव से सिर तक या सिर से पाँव तक नहीं होता। प्रसाद ने प्रत्येक अंग का पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं किया। उनकी दृष्टि श्रद्धा के समग्र सौंदर्य की ओर रहा है उसके चित्रण में वे सफल हुए हैं। अप्रस्तुत योजना नवीन तथा रमणीय है।

प्रसाद ने केवल श्रद्धा के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया परन् उसके हृदय की उदारता को भी अभिव्यक्त किया है। मानसिक सौंदर्य के अभाव में शारीरिक सौंदर्य व्यर्थ हो जाता है।

२—मनु और श्रद्धा का वार्तालाप नाटकीय है। मनु के कथन में निराशा और अवसाद है किन्तु श्रद्धा की कोमल वाणी में अदम्य विश्वास और शक्ति है। जो आलोचक प्रसाद को पलायनवादी कहते हैं, उन्हें श्रद्धा की इन उक्तियों को पढ़ना चाहिए, जिनके द्वारा वह मनु को कूट विराग के प्रभाव से बाहर खींच लाती है, उसके हृदय में निराशा को मिटाकर स्फूर्ति का संचार करती है। श्रद्धा की अभिलाषा है कि मानवता सदैव उन्नति करती जाए। भयङ्कर बाधाएँ मानवता को नष्ट न कर सकें। और यह सन्देश श्रद्धा का ही नहीं ईश्वर का भी है। यह नाद सारे संसार में गूँज रहा है कि मनुष्य शक्तिशाली और विजयी बनें।

३—दार्शनिक संकेत भी कहीं-कहीं मिलते हैं। प्रसाद की मान्यता है कि जिस प्रकार सागर में लहरें उठती हैं और उन लहरों में मणियाँ चमकती हैं उसी प्रकार इस संसार में दुःख की लहरें उठती हैं और बीच बीच में सुख भी मिलते हैं। फिर मनुष्य को दुःख से उद्विग्न नहीं होना चाहिए और सुख से आन्दोलित नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार लहरों का कारण सागर भीतर से शान्त और समरस है उसी प्रकार यदि संसार पर समरसता से विचार किया जाए, तो उसके भीतर भी समरसता का ही आभास होगा।

"कौन तुम ... आलस्य !"

शब्दार्थ—संसृति जलनिधि=संसार रूपी सागर। निर्जन=एकांत सूना पन। प्रभा=कांति। अभिषेक करना=तिलक करना, सुशोभित करना-शक्षणा। मधुर=आकर्षक। विश्रान्त=थके हुए।

भावार्थ—श्रद्धा मनु से पूछती है कि तुम कौन हो ? जिस प्रकार सागर की लहरों के द्वारा किनारे पर फेंकी गई मणि उस सूनेपन को अपनी ज्योति से सुशोभित करती है उसी प्रकार ही तुम भी इस संसार रूपी सागर के किनारे बैठे हुए मणि के समान ही इस एकान्त और सूने स्थान को अपनी कांति से सुशोभित कर रहे हो।

आरम्भ नाटकीय है। रूपक और उपमा अलंकार।

तुम्हारा रूप मोहक है, तुम थके से प्रतीत होते हो और इस सूने स्थान पर बैठे हो। तुम्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो तुमने संसार के रहस्य को सुलझा लिया है इसलिए तुम यहाँ निश्चिन्त होकर बैठे हो। तुम्हारे मुख पर करुणा भी है, और तुम्हारा मौन बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। तुम्हारी यह शान्ति सदैव चंचल रहने वाले मन की शिथिलता के समान है। जिस प्रकार मन सदैव चंचल रहता है और उसमें अपार वेग होता है उसी प्रकार तुममें भी अपार शक्ति दिखाई देती है। किन्तु तुम शान्त हो।

सुना ... मौन।

शब्दार्थ—मधु-गुंजार = मनोहर शब्द। मधुकरी = भँवरी। सानन्द = आनन्द के साथ। कुतूहल—मौन = कुतूहल के कारण मनु शान्त न रह सके—लक्षणा।

भावार्थ—उस समय मनु झुके हुए कमल के समान ही मुख नीचा किए हुए बैठे थे। उन्होंने भँवरी की गुंजार के समान यह मधुर वाणी बड़े हर्ष के साथ सुनी। वे अकेले थे, किसी अन्य की मधुर वाणी सुनकर उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। मनु के लिए ये शब्द आदि-कवि वाल्मीकि के

चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वह निस्संकोच होकर अभाव में डूबे मनु को अपना सहारा देती है। मनु के मन में नवीन उत्साह निखर उठता है।

इस सर्ग में ये बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१—श्रद्धा का वर्णन जो नखशिख वर्णन की प्राचीन परम्परा का आधुनिक रूप है श्रद्धा के इस नखशिख वर्णन का आरम्भ किसी एक निश्चित क्रम से—पाँव से सिर तक या सिर से पाँव तक नहीं होता। प्रसाद ने प्रत्येक अंग का पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं किया। उनकी दृष्टि श्रद्धा के समग्र सौंदर्य की ओर रहा है उसके चित्रण में वे सफल हुए हैं। अप्रस्तुत योजना नवीन तथा रमणीय है।

प्रसाद ने केवल श्रद्धा के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया वरन् उसके हृदय की उदारता को भी अभिव्यक्त किया है। मानसिक सौंदर्य के अभाव में शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ हो जाता है।

२—मनु और श्रद्धा का वार्तालाप नाटकीय है। मनु के कथन में निराशा और अवसाद है किन्तु श्रद्धा की कोमल वाणी में अदम्य विश्वास और शक्ति है। जो आलोचक प्रसाद को पलायनवादी ठहराते हैं, उन्हें श्रद्धा की इन उक्तियों को पढ़ना चाहिए, जिनके द्वारा वह मनु को झूठे विराग के प्रभाव से बाहर खींच लाती है, उसके हृदय में निराशा को मिटाकर स्फूर्ति का संचार करती है। श्रद्धा की अभिलाषा है कि मानवता सदैव उन्नति करती जाए। प्रमुख बाधाएँ मानवता को नष्ट न कर सकें। और यह सन्देश श्रद्धा का ही नहीं ईश्वर का भी है। यह नाद सारे संसार में गूँज रहा है कि मनुष्य शक्ति शाली और विजयी बनें।

३—दार्शनिक संकेत भी कहीं-कहीं मिलते हैं। प्रसाद की मान्यता है कि जिस प्रकार सागर में लहरें उठती हैं और उन लहरों में मणियाँ चमकती हैं, उसी प्रकार इस संसार में दुःख की लहरें उठती हैं और बीच बीच में सुख भी मिलते हैं। फिर मनुष्य को दुःख से उद्विग्न नहीं होना चाहिए और सुख से आन्दोलित नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार लहरों का कारण सागर भीतर से शान्त और समरस है उसी प्रकार यदि संसार पर गम्भीरता से विचार किया जाए, तो उसके भीतर भी समरस तत्व का ही आभास होगा।

"कौन तुम .... आलस्य !"

शब्दार्थ—उसति जलनिधि=संसार रूपी सागर। निर्जन=एकांत सूनापन। प्रभा=कांति। अभिषेक करना=तिलक करना, सुशोभित करना-लक्षणा। मधुर=आकर्षक। विभ्रान्त=थके हुए।

भावार्थ—श्रद्धा मनु से पूछती है कि तुम कौन हो ? जिस प्रकार सागर की लहरों के द्वारा किनारे पर फेंकी गई मणि उस सूनेपन को अपनी ज्योति से सुशोभित करती है उसी प्रकार ही तुम भी इस ससार रूपी सागर के किनारे बैठे हुए मणि के समान ही इस एकान्त और सूने स्थान को अपनी कांति से सुशोभित कर रहे हो।

आरम्भ नाटकीय है। रूपक और उपमा अलंकार।

तुम्हारा रूप मोहक है, तुम थके से प्रतीत होते हो और इस सूने स्थान पर बैठे हो। तुम्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो तुमने ससार के रहस्य को सुलझा लिया है इसलिए तुम यहाँ निश्चिन्त होकर बैठे हो। तुम्हारे मुख पर करुणा भी है, और तुम्हारा मौन बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। तुम्हारी यह शान्ति सदैव चंचल रहने वाले मन की शिथिलता के समान है। जिस प्रकार मन सदैव चन्चल रहता है और उसमें अपार वेग होता है उसी प्रकार तुममें भी अपार शक्ति दिखाई देती है। किन्तु तुम शान्त हो।

सुना .... मौन—।

शब्दार्थ—मधु-गु जार = मनोहर शब्द। मधुकरी = भँवरी। सानन्द = आनन्द के साथ। कुतूहल—मौन = कुतूहल के कारण मनु शान्त न रह सके—लक्षणा।

भावार्थ—उस समय मनु झुके हुए कमल के समान ही मुख नीचा किए हुए बैठे थे। उन्होंने भँवरी की गु जार के समान यह मधुर वाणी बड़े हर्ष के साथ सुनी। वे अकेले थे, किसी अन्य की मधुर वाणी सुनकर उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। मनु के लिए ये शब्द आदि-कवि वाल्मीकि के

प्रथम सुन्दर छन्द के समान थे। यह उपमा अत्यन्त कलात्मक है। वाल्मीकि कवि में करुणा का भाव लहराया था। श्रद्धा की वाणी में भी करुणा है। और वाल्मीकि के इस छन्द से काव्य का आरम्भ हुआ और फिर उन्होंने रामायण की रचना की। उसी प्रकार इन शब्दों से मनु और श्रद्धा का प्रथम परिचय हुआ जिसने पल्लवित होकर मानव सृष्टि को जन्म दिया।

'प्रथम कवि—' एक बार वाल्मीकि स्नान करके लौट रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक व्याध ने क्रौंच के एक जोड़े में से एक को मार गिराया। इस दृश्य को देखकर उनका हृदय करुणा से उमड़ आया और अकस्मात् ही अनुष्टुप छन्द के रूप में उन्होंने उस शिकारी को यह शाप दिया—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगम शाश्वती समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकम वधी काममोहितम् ॥

यह वाणी सुनते ही मनु को एक झटका सा लगा और वे मोहित होकर यह देखने लगे कि कौन यह संगीत से मधुर वचन कह रहा है ! जब उन्होंने श्रद्धा को देखा तो कुतूहल के कारण वह शान्त न रह सके।

अब श्रद्धा का रूप-वर्णन आरम्भ होता है।

और ... संयुक्त।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल = जादू। अभिराम = सुन्दर। कुसुम-वैभव = फूलों का ऐश्वर्य, अनेक फूल। चन्द्रिका = चाँदनी। घनश्याम = काला बादल। अनुकृति = अनुरूप। वाम = देखने में। उन्मुक्त = स्वच्छन्द। मधुपवन = वसन्त की वायु। शिशु साल = छोटा साल का वृक्ष। सौरभ संयुक्त = सुगंधिपूर्ण।

भावार्थ—मनु ने यह सुन्दर दृश्य देखा जो नेत्रों को जादू के समान मोहित कर देने वाला था। श्रद्धा फूलों की शोभा से वेष्टित लता के समान थी। फूलों से वेष्टित कहा क्योंकि श्रद्धा के चारों ओर उसकी कांति जगमगा रही थी। श्रद्धा चाँदनी से घिरे हुए काले बादल के समान दिखाई दे रही थी। श्रद्धा ने नीली खाल का वस्त्र पहन रखा है इसलिए वह काले बादल के समान दिखाई देती है। किन्तु उसकी कान्ति उसके परिधान के बाहर भी जगमगा रही है।

भद्रा हृदय की भी उदार थी और उसके अनुरूप ही वह देखने में भी उदार दिखाई देती थी। उसका कद लम्बा था और उससे स्वच्छन्दता झलकती थी वायु के झोंकों में वह ऐसी लगती थी मानो वसन्त की वायु से हिलता हुआ कोई छोटा साल का पेड़ हो और वह सुगन्धि में डूबा हो। उत्प्रेक्षा अलंकार।

मसृण रंग।

शब्दार्थ—मसृण=चिकने। गांधार देश=कन्धार देश। रोम=रोयें। मेष= मेढ़ा। चर्म=खाल। वपु=शरीर। कान्त=सुन्दर। वर्म=आवरण वस्त्र। परि धान = वस्त्र। मृदुल=कोमल।

भावार्थ—गांधार देश के नीले रोयेंवाले मेढ़ों की कोमल खाल से उसका सुन्दर शरीर ढका हुआ था। वह खाल ही उसका कोमल वस्त्र था।

उस नीले आवरण के बीच से उसका कोमल अङ्ग दिखाई दे रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो मेघ वन के बीच में गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिला हो। भद्रा का आवरण नीले बादलों के समान था और उसका लाल खुला अङ्ग बिजली के फूल के समान। उत्प्रेक्षा अलंकार।

यह शंका हो सकती है कि बिजली गुलाबी रंग की नहीं होती इसलिए यह उत्प्रेक्षा उचित नहीं है। किन्तु उत्प्रेक्षा सम्भावित भी हो सकती है।

आह अश्रांत।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। अरुण=लाल। रवि-मण्डल=सूर्य मण्डल। छविधाम=सुन्दर। इन्द्रनील=नीलम। लघु शृङ्ग=छोटी चोटी। माधवी रजनी=वसन्त की रात। अश्रांत=निरन्तर।

भावार्थ—और उसका मुख बहुत ही सुन्दर था। सन्ध्या के समय पश्चिम दिशा में काले बादल आ जाते हैं और सूर्य अस्त होने से पहले उनमें छिप जाता है। किन्तु जब लाल सूर्य उन नीले मेघों को चीर कर दिखाई देता है, तो वह अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है। भद्रा के मुख का सौंदर्य भी वैसा ही था। उत्प्रेक्षा अलंकार।

भद्रा का आवरण नीला है इसलिए नीले मेघों के बीच सूर्य की कल्पना की गई है।

श्रद्धा के मुख के लिए दूसरी उत्प्रेक्षा करते हैं। नीलम की नन्हीं सी चोटी हो, और वसन्त की मधुर रात्रि में एक छोटी ज्वालामुखी उसी नीलम की चोटी को फाड़कर जल रही हो, तो जैसी उसकी शोभा होगी वैसी ही शोभा श्रद्धा के मुख की होगी।

नीलम की चोटी की कल्पना नवीन सुन्दर तथा उपयुक्त है क्योंकि श्रद्धा का आवरण भी नीला है।

घिर रहे ... अभिराम।

शब्दार्थ—अंस=कन्धा। अवलम्बित=सहारे से। घन शावक = बादल के बच्चे, छोटे बादल। सुधा = अमृत। विधु=चन्द्रमा। रक्त किसलय=लाल कोंपल। अरुण=सूर्य। अम्लान=कांतिमान। अभिराम=सुन्दर।

भावार्थ—श्रद्धा के मुख के पास उसके कंधे पर घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो छोटे मेघ चन्द्रमा के पास अमृत भरने को आए हैं। बाल नील मेघों के समान हैं और मुख चन्द्रमा के समान जिसमें शोभा का अमृत है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

और श्रद्धा के मुख पर मुस्कराहट कैसी सुहाती थी! वह ऐसी शोभा देती थी मानो कोई सूर्य की कांतिमान किरण लाल कोंपल पर विश्राम कर के अलसा रही है। श्रद्धा के ओष्ठ लालाभ कोंपल के समान हैं और उसकी मुस्कराहट कि सूर्य की किरण के समान है। उत्प्रेक्षा अलंकार। किरण के अलसाने में मानवीकरण है।

नित्य ... गोद।

शब्दार्थ—यौवन की छवि=यौवन की शोभा। दीप्त=सुशोभित। करुण= दयावान। कामना मूर्ति=इच्छा की मूर्ति। स्पर्श-पूर्ण=श्रद्धा का देखकर उसे स्पर्श करने की इच्छा होती थी। स्फूर्ति=चेतना। लेखा कान्त=सुन्दर किरण। माधुरी=सुषमा। मोद=हर्ष। मद भरी=मस्ती से भरी हुई। भोर=प्रातःकाल। तारक द्युति की गोद=तारों की शोभा की छाया में।

भावार्थ—श्रद्धा के अनन्त यौवन की शोभा से सुशोभित थी। वह संसार भर की सदय इच्छा की मूर्ति थी—उसके हृदय में करुणा थी और वह सारे विश्व के लिए कमनीय थी। उसे देखकर उसे स्पर्श करने की तीव्र इच्छा

उत्पन्न होती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों उसका सौंदर्य जड़ वस्तुओं में भी चेतना भर देता था। उत्प्रेक्षा अलंकार।

श्रद्धा उषा की पहली रम्य किरण के समान है। उषा की पहली किरण माधुर्य से भींगी होती है उसमें हृय आल्हादित होता है और जिस यह मस्ती में भरी लज्जा से युक्त प्रातःकाल के समय तारों की छाया में उठती है उसी प्रकार श्रद्धा में माधुर्य है, आनन्द है, मस्ती है और लज्जा है। जिस प्रकार उषा की प्रथम किरण को दूर करती हुई निकलती है उसी प्रकार श्रद्धा के दर्शन से मनु के हृदय का निराशा का अंधकार दूर होने लगा। किन्तु उषा की प्रथम किरण अंधकार को पूर्णतः नष्ट नहीं कर सकती। उसी प्रकार श्रद्धा के प्रथम मिलन में मनु की सारी निराशा दूर नहीं हो पाई किन्तु अनिवार्यतः धीरे धीरे मनु की निराशा श्रद्धा द्वारा दूर होगी, यह भी इससे ध्वनित है। उपमा अलंकार है।

उषा की प्रथम किरण का मानवीकरण है। इससे वर्णन में प्रभाव की तीव्रता आगई है क्योंकि कवि श्रद्धा का वर्णन भी कर रहा है।

कुसुम ... अबाध।

शब्दार्थ—कानन अंचल=वन के बीच। मंद पवन=धीरे-धीरे चलनेवाली वायु। सौरभ साकार=सौरभ की मूर्ति। परमाणुपराग=पराग के परमाणु। मधु=पुष्परस। शुभ्र=स्वच्छ, निर्मल। नवल=नवीन। मधु-राका=वसन्त की पूर्णिमा। मद विह्वल=मस्ती से भरा हुआ। मधुरिमा खेला सदृश अबाध= हंसी का प्रतिबिम्ब अक्षय माधुर्य से खेला हुआ दिखाई देता है—हँसी में अक्षय माधुर्य भरा है।

५१ भावार्थ—प्रसाद जी फिर श्रद्धा के शरीर का वर्णन करते हैं। श्रद्धा फूलों से भरे हुए वन के बीच सौरभ की मूर्ति के समान दिखाई देती है। जिससे कि मन्द पवन खेल रहा है। यह सौरभ की मूर्ति पराग के परमाणुओं से बनी है और ये परमाणु पुष्परस के द्वारा परस्पर सुयुक्त किए गए हैं।

इस पराग निर्मित मूर्ति पर मन की कामना रूपी नवीन वसन्त-पूर्णिमा की चाँदनी पड़ रही हो तो जैसी शोभा होगी वैसी ही शोभा श्रद्धा की भी है। पराग की मूर्ति पर चाँदनी के पड़ने से उसकी शोभा और भी दीप्त हो

उठेगी। उसी पर जब श्रद्धा पर हृदय की कामना की छाया पड़ती थी तो उसका सौंदर्य और भी निखर उठता था। और श्रद्धा की मधुर हंसी निरंतर अपार माधुर्य से खेला करती थी। उपमा अलंकार।

श्रद्धा का वर्णन पराग के परमाणुओं से निर्मित मूर्ति के समान करके प्रसाद जी ने उसके अपार सौंदर्य सुगन्धि और कोमलता का परिचय दिया है।

श्री विश्वम्भर मानव ने अपने कामायनी की टीका में 'उषा की—' से लेकर 'सहज प्रवाह' तक की पंक्तियों का अर्थ श्रद्धा की मुस्कराहट के वर्णन में किया है जो संगत नहीं है, और जिसके कारण इन पंक्तियों का सही अर्थ भी नहीं किया जा सका। श्रद्धा की 'मुस्कान' का वर्णन तो और उस'—वाले छन्द में ही समाप्त हो जाता है। 'नित्य यौवन'—छन्द से श्रद्धा का वर्णन आरम्भ होता है। श्रीविश्वंभर मानव ने इस छंद का अर्थ ठीक किया है, किंतु आगे के छन्दों में श्रद्धा का वर्णन न समझ कर मुस्कान का ही वर्णन समझा है।

कहा मनु ने पालखंड।

शब्दार्थ—नभ धरणी=आकाश और धरती। निरुपाय=असाध्य। उल्का=टूटा हुआ तारा। शैल निर्झर=पर्वत का झरना। हतभाग्य=भाग्यहीन। हिम खंड=बर्फ का टुकड़ा। जलनिधि अंक=सागर की गोद। पालखंड=दम्भ।

भावार्थ—मनु ने उत्तर दिया कि इस धरती और आकाश के बीच में मेरे लिए जीवन रहस्य बन गया है और मैं उसका समाधान करने में असमर्थ होगया हूँ। मैं एक टूटे तारे के समान जलता हुआ पथ भ्रष्ट होकर बे सहारा घूम रहा हूँ। तारा जब अपने भ्रमण के मार्ग से गिर जाता है तो वह बे सहारा होकर आकाश में गिरता हुआ नष्ट हो जाता है। उपमा अलंकार।

मैं उस बर्फ के अभागे टुकड़े के समान हूँ, जो गल कर पर्वत के झरने का रूप नहीं लेता और आकाश में जाकर नहीं मिल पाता। बर्फ के टुकड़े का लक्ष्य है गलकर सागर में मिल जाना। जो गलता नहीं, सागर में नहीं मिल

पाता उसका जीवन असफल है। मनु भी अपने जीवन की असफलता प्रकट करते हैं। वे नहीं जानते कि उनका लक्ष्य क्या है, उन्हें कहाँ जाना है। इसी लिए वे अपने आपको पागल कहते हैं। उपमा अलंकार।

पहेली-सा   सङ्गीत।

शब्दार्थ—उलझा=उलझा हुआ। विस्मृति=निराशा। सजल-अभिलाषा=सुन्दर इच्छा। कलित=युक्त। अतीत=भूतकाल। तिमिर गर्भ=अंधकार के भीतर। दीन=निस्सहाय।

भावार्थ—मेरा जीवन पहेली के समान उलझा हुआ है। जब मैं उसे सुलझाने का प्रयास करता हूँ, तो मैं और भी घनी निराशा से भर जाता हूँ। मैं समझ ही नहीं पाता कि आखिर मेरे जीवन की मंजिल कौन सी है। इस लिए मैं मूर्ख के समान चला जा रहा हूँ।

मैं अपनी सुन्दर इच्छाओं से सुशोभित व्यतीत जीवन को निरन्तर भूलता जा रहा हूँ। पहले मुझ में अपार साहस था, इच्छाओं की स्फूर्ति थी, किन्तु धीरे धीरे सब मिट रहा है। और मेरे जीवन का यह दर्द भरा संगीत अंधेरे में विलीन होता जा रहा है। संगीत को कोई सुनने वाला न हो तो वह असफल है। उसी प्रकार मेरे जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है।

क्या कहूँ   विलम्ब।

शब्दार्थ—उद्भ्रान्त=पथ-भ्रष्ट। विवर=बिल, अंतरिक्ष। विस्मृति=बेहोशी धुंधला-सा प्रतिबिम्ब=धुंधली छाया। सकलित=संचित। विलम्ब=देरी।

भावार्थ—मैं अपने विषय में क्या कहूँ। क्या मैं पथ भ्रष्ट हो गया हूँ। हाँ, आज मेरी दशा इस अंतरिक्ष में भटकी हुई एक वायु की लहर के समान है जो अपना लक्ष्य नहीं खोज पाती। मैं उजड़े हुए शून्यता के राज के समान हूँ। राज्य में बड़ा वैभव और ऐश्वर्य होता है। जब वह उजड़ जाता है तो सर्वत्र निराशा और उदासी का वातावरण दिखाई देता है। मनु के जीवन में भी निराशा और अवसाद है। उपमा अलंकार।

मैं बेहोशी का एक टीला हूँ मैं कुछ भी नहीं सोच पाता। मैं प्रकाश की धुंधली छाया हूँ—मेरे सामने कोई लक्ष्य नहीं है। सर्वत्र एक धुंधलापन और अंधकार है। मैं संचित जड़ता हूँ—मुझ में कोई कार्य करने का उत्साह

भी नहीं रहा। और मैं सफलता की लम्बी देरी हूँ। मेरा जीवन कभी भी सफल नहीं हो सकता क्योंकि मैं स्वयं ही सफलता के मार्ग में बाधा बना हुआ हूँ।

यहाँ मनु ने अपने दुख का वर्णन किया है। मनु दुखी हैं क्योंकि उनका सारा वैभव नष्ट हो चुका है। इसके साथ ही दुख के इस अतिरंजित, वर्णन का एक और महत्व भी है। स्त्रियाँ स्वभाव की कोमल होती हैं। दुखी व्यक्तियों पर वे सहसा द्रवित हो जाती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर ही यह प्रतीत होगा कि मनु के इस वर्णन के मूल में भी श्रद्धा को आकर्षित करने की भावना है, उसकी सहानुभूति प्राप्त करने की इच्छा है। आगे के दो छन्दों में मनु ने श्रद्धा को आशा और सुख का दूत कहा है। इसके मूल में भी उपयुक्त भावना ही मिलेगी।

"कौन शान्त।"

शब्दार्थ—विरस=नीरस। पतझड़=उदासी का वातावरण—प्रतीक योजना। घन तिमिर=घना अन्धकार निराशा। चपला=बिजली-आशा। तपन=दुख। बयार=वायु, शीतलता प्रदान करने वाली। नखत=नक्षत्र। काँत= सुन्दर। लघु लहरी दिव्य=नन्हीं अलौकिक लहर। मानस=हृदय, तालाब—श्लेष।

भावार्थ—मनु श्रद्धा से पूछते हैं कि उदासी के इस नीरस पतझड़ में बसंत के दूत के समान हर्ष का संचार करने वाली तुम कौन हो! तुम निराशा के घने अन्धकार में आशा की बिजली की चमक के समान हो। तुम दुख की गर्मी को शान्त करने वाली शीतल तथा धीरे धीरे चलने वाली वायु हो। उपमा अलंकार।

श्रद्धा मनु को सुख और शीतलता का सन्देश देती है।

तुम नक्षत्र की आशा की किरण के समान हो। तुम्हें देख कर फिर मुझे यह आशा हो चली है कि मेरा जीवन उन्नति कर सकेगा। तुम कोमल हृदय वाले कवि की सुन्दर, नन्हीं और अलौकिक कल्पना की लहर के समान हो जो

मनु को शान्ति पहुँचाती है। मधुर कल्पना से दुख का वेग मिट जाता है। उपमा अलंकार।

नीचे की दो पंक्तियों में विरोधाभास भी है जो मानस का अर्थ तालाब करने से प्रतीत होता है। श्रद्धा लहर होकर भी तालाब की हलचल को शान्त करती है। विरोधाभास।

लगा सन्तान।

शब्दार्थ—आगन्तुक व्यक्ति = आगे आने वाला व्यक्ति प्रसाद जी ने श्रद्धा के लिए भी 'लगा कहने—' में पुल्लिंग प्रयोग किया है। उत्कंठा= जिज्ञासा। कोकिल=कोयल–इसका प्रयोग भी पुल्लिंगवत् है। मधुमय=रसमय, बसंत का। ललित कला=संगीत आदि ललित कलाएँ।

भावार्थ—आने वाली श्रद्धा कहने उत्कंठा को पूर्णतया मिटाते हुए मनु को उत्तर दिया। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोमल आनन्द में भरकर फूल को बसंत का सन्देश दे रही हो। यहाँ श्रद्धा की वाणी कोयल के संगीत के समान मधुर भी है और बसन्त के समान नवीन मधुर जीवन का सन्देश भी देने वाली है। वही तो मनु को कर्म में प्रवृत्त करती है। मनु फूल के समान हैं जो उसका सन्देश सुनकर लहलहा उठते हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार।

श्रद्धा ने कहा कि मैं अपने पिता की प्रिय पुत्री हूँ। मेरे मन में नवीन उत्साह भरा हुआ था। मैंने सोचा था कि गन्धर्व देश में रह कर ललित कला का ज्ञान प्राप्त कर लूँ।

घूमने पीर।

शब्दार्थ—मुक्त = स्वच्छन्द। व्योमतल=आकाश के नीचे। हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य=भाव का मूल सत्य। हिम-गिरि=हिमालय। धरा की यह सिकुड़न भयभीत=धरती भयभीत होकर सिकुड़ गई है। भयभीत सिकुड़न का नहीं धरा का विशेषण है—विशेषण विपर्यय।

भावार्थ—आकाश के नीचे स्वच्छंद रूप से घूमने का मेरा अभ्यास, नित्य ही बढ़ता जा रहा था। मेरा हृदय भाव सत्ता का मूल रहस्य खोजने में

व्यस्त था। मैं यह सोचा करती थी कि हमारे इस हृदय की सत्ता का मूल सत्य कौन सा है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि श्रद्धा हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य ढूंढने के लिए उत्कंठित है, बुद्धि सत्ता का नहीं। इसका कारण यह है कि प्रसाद जी बुद्धि के तर्क जाल को सत्य की प्राप्ति की बाधा मानते हैं। उन्होंने जीवन में भाव और हृदय को ही प्रधान स्थान दिया है। बुद्धि गौण है और हृदय की सहकारिणी बन कर आती है।

प्रसाद जी का ही नहीं, पन्त तथा महादेवी का भी जीवन सम्बन्धी दृष्टि कोण भावात्मक ही है। पन्त जी ने भी जीवन में हृदय पक्ष को अधिक महत्त्व पूर्ण माना है और महादेवी जी ने भी। दोनों का विश्वास है कि शुष्क तर्क अपने उद्देश्य को ढाँप लेता है और उलझनों को जन्म देता है। उन्होंने भी तर्क को भाव की अपेक्षा गौण स्थान दिया है।

इस बात को लेकर प्रसाद जी की आलोचना की गई है। शुक्ल जी ने उनके बुद्धि विरोधी विचार का खण्डन किया है। किन्तु यह असंगत है। आज के युग के लिए तर्कवादों की असफलता विचार करने की नहीं प्रत्यक्ष दर्शन की चीज है। कितने दार्शनिक मत आए और हैं और सबका परस्पर विरोध है। इस विरोध ने समय समय पर समाज में भीषण हलचल पैदा की है।

श्रद्धा आगे कहती हैं कि जब मैं हिमालय की ओर देखती तो मेरा मन अधीर होकर यह प्रश्न करता था कि क्या भयभीत धरती की सिकुड़न है! क्या धरती को कोई पीड़ा है जिसके भय से यह सिकुड़ गई है!

श्रद्धा का हृदय करुणा से भरा हुआ है। इसलिए उसने हिमालय को धरती की पीड़ा की सिकुड़न कहा है।

मधुरिमा   सम्भार।

शब्दार्थ—मधुरिमा = सौन्दर्य। चेतना मचल उठी अनजान=स्वयमेव मेरा हृदय अधीर हो गया। शैल मालाओं का=पर्वत की श्रेणियों का। सम्भार = साज-सज्जा, भंडार।

भावार्थ—मेरे हृदय में अपने सौन्दर्य में ही शान्त एक महान सन्देश सोया हुआ था। वह सन्देश सजग हो गया और मुझे इंगित करने लगा।

जब मुझे अपने हृदय में महान सन्देश की अपार प्रेरणा का आभास हुआ तो मेरा हृदय अपने आप मचल उठा।

मेरे मन में उत्साह से भर गया और मेरे पाँव अपने आप ही प्रकृति के दृश्यों को देखने चल दिए। पर्वत श्रेणियों का सौंदर्य देख कर मेरी आँखों की भूख मिट गई, मेरा हृदय तृप्त हो गया। सचमुच यहाँ की साज-सज्जा रमणीक है।

एक दिन अनुमान।

शब्दार्थ—सहसा=अकस्मात। सिंधु अपार=अनन्त सागर। नग तल= पर्वत के नीचे। क्षुब्ध=आन्दोलित। विश्रब्ध=शान्त, निर्भय। बलि का अन्न= यज्ञ का बोया हुआ अन्न जो कि मनु कहीं दूर रख आते थे। भूत हित-रत= प्राणियों के कल्याण में लीन।

भावार्थ—जब मैं घूम रही थी तो एकदिन अचानक ही अनन्त सागर आन्दोलित होकर पर्वत के नीचे टकराने लगा। उसके पश्चात प्रलय हुई। तभी से मेरा यह एकान्त और शान्त जीवन बे सहारा होकर घूम रहा है।

जब मैं इधर पहुँची तो पास ही एक स्थान पर यज्ञ का बचा हुआ अन्न दिखाई दिया। इसे देखकर मन में यह प्रश्न हुआ है कि कौन संसार के कल्याण में लगा हुआ है और किसने यह दान किया है? मुझे ऐसा अनुमान हुआ कि इधर अभी तक कोई जीवित है।

तपस्वी वेश!

शब्दार्थ—क्लान्त=व्यग्र, व्याकुल। हताश=निराश। उद्वेग=व्याकुलता लालसा = इच्छा। निश्शेष = पूर्ण। वंचित करना=धोखा देना। सुन्दर वेश= आकर्षक रूप। कर-वेश=कभी ऐसा होता है कि नाश का दृश्य देखने पर-मन में निराशा का उदय होता है और उस आवेग में त्याग ही आकर्षक दिखाई देता है। जैसे उन लोगों को जिनकी 'नारि मुई घर सपति नासी' और वे मूँड मुड़ाए सन्यासी। यह त्याग सच्चा नहीं धोखा मात्र है क्योंकि उसका उदय शान्त चिन्तन में नहीं, जीवन की अधीरता में होता है।

भावार्थ—हे तपस्वी तुम क्यों इतने व्याकुल हो रहे हो? तुम्हारे मन में यह कैसी व्यथा उमड़ रही है? तुम क्यों इतने निराश हो गए हो। आखिर

तुम्हारी इस व्याकुलता का कारण क्या है यह तो बताओ।

क्या तुम्हारे हृदय में जीवन की पूर्ण एवं उत्कट अभिलाषा नहीं है! ऐसा तो नहीं है कि कहीं तुम्हें इस आवेग में त्याग ही अधिक सुन्दर दिखाई दे रहा हो। यदि तुम्हें विरक्ति हो रही है, तो यह सच्ची विरक्ति नहीं छल है।

दुःख अनुरक्त।

शब्दार्थ—आगत=आने वाली। जटिलताओं=कठिनाइयों का। काम= इच्छा जो जीवन की मूल प्रेरणा है। काम यहाँ संकुचित अर्थ में मैथुन की इच्छा के लिए नहीं, इच्छा मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। महा चिति= विराट् चेतन शक्ति। लीलामय आनन्द = अपनी संसार की लीला में आनन्द कर रही है। उन्मीलन=सृजन। अभिराम=सुन्दर। अनुरक्त=लीन।

भावार्थ—तुम दुःख से भयभीत होकर इसलिए आने वाली कठिनाइयों का अनुमान करके और भविष्य के विषय में न सोचकर आज काम से दूर भाग रहे हो, जीवन से विमुख हो रहे हो। तुम केवल आज के क्षणिक आवेग में ही जीवन से विरक्त हो गए हो, कल की बात नहीं सोचते। जब यह निराशा की यह हलचल शान्त हो जाएगी तब क्या होगा यह तुम सोच ही नहीं रहे हो।

देखो तो सही विराट चेतन शक्ति जगा कर अपने आप को उस संसार के रूप में व्यक्त कर अपनी लीला में आनन्दित हो रही है। इस सुन्दर सृष्टि का निर्माण इस आनन्द की लीला में ही होता है। सारे मनुष्य इसी संसार में लीन होते हैं।

– शाक्त दर्शन के अनुसार शक्ति ही सारी सृष्टि के मूल में है। शक्ति के बिना ब्रह्म, विष्णु और महेश तीनों असमर्थ हैं, कुछ भी नहीं कर सकते।

काम भवधाम।

शब्दार्थ—मंगल से मंडित=कल्याण से सुशोभित। श्रेय=वांछनीय। सर्ग = सृष्टि। तिरस्कार कर = अस्वीकार कर उपेक्षाकर। भवधाम = संसार।

भावार्थ—काम कल्याण की भावना से सुशोभित है, इसी लिए यह वांछनीय है, त्याज्य नहीं। संसार का जन्म ही इच्छा से हुआ है। तुम काम

की उपेक्षा कर, अपने संसार को असफल बना रहे हो। संसार का उद्देश्य ही यही है कि जो कोई भी यहाँ आए वह मानव के कल्याण के लिए प्रयास करे। और जो कर्म से विमुख हो जाता है, वह सृष्टि को असफल बनाता है।

"दुख की मूल,

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि। नवल प्रभात=नवीन प्रातःकाल। झीना= पतला। ज्वालाएँ=विपत्तियाँ। ईश=ईश्वर।

भावार्थ—यह सोचकर कि मनु प्रलय के दुख से व्याकुल होकर जीवन से विमुख हो रहे हैं, श्रद्धा उन्हें समझाती है कि जिस प्रकार रात्रि के पश्चात प्रभात का उदय होना अनिवार्य है उसी प्रकार दुख में ही सुख का विकास होना निश्चित है। दुख और सुख का क्रम तो रात और दिन के क्रम के समान अनिवार्य तथा आवश्यक है। आकाश के नीले और पतले पर्दे के भीतर ही उषा छिपी रहती है। उसी प्रकार दुख के पतले पर्दे के पीछे ही सुख छिपा रहता है। उपमा अलंकार।

दुख के पर्दे को नीला कहा क्योंकि अंधकार दुख का प्रतीक माना जाता है। उसे पतला इसलिए कहा कि दुख के भीतर छिपा हुआ सुख अपने आप को छिपा नहीं पाता। दुख के पश्चात सुख की प्राप्ति होगी यह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

तुमने जिस दुख को संसार का शाप समझ लिया है और जिसे तुम संसार की विपत्तियों का मूल कारण समझ रहे हो वह तो ईश्वर का रहस्यमय वरदान ही है। तुम्हें इस बात को कभी भी भूल नहीं जाना चाहिए।

दुख ईश्वर का रहस्यमय वरदान है क्योंकि देखने में तो दुख शाप ही दिखाई देती है किन्तु गंभीर दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि बिना दुख के सब सुख भी व्यर्थ हो जाता है। जैसे पन्त ने कहा है 'जग पीड़ित रे अति सुख से।' यदि दुख न होता तो सुख का महत्व कौन समझ पाता।

विषमता य विमान।

शब्दार्थ—विषमता=वह अवस्था जिसमें संसार का जन्म होता है।

का दौर्य=जीवन की बाजी। करुण=दुखी करनेवाला। क्षणिक=एक क्षणभर का अस्थायी। दीन अवसाद=दीनता और वेदना। तरल आकांक्षा=सजीव इच्छा। आशा का आह्लाद = आशा का हर्ष।

भावार्थ—श्रद्धा ने फिर प्रेम पूर्वक कहा और तुम तो इतने अधीर हो गए हो। जिस जीवन की बाजी को वीर पुरुष मरकर भी जीतने का प्रयास करते हैं, तुमने जीते जी उसे हरा दिया है। अन्य वीर उत्साह पुरुष तो मृत्यु की कीमत चुकाकर भी सफलता की प्राप्ति करते हैं।

तपस्या ही नहीं जीवन सत्य है। तुम्हें विरक्त होकर नहीं रहना चाहिए वरन जीवन में रत रहकर विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। दुख देने वाली यह दीनता और वेदना तो क्षणभंगुर है। थोड़े काल के पश्चात तुम यह सब भूल जाओगे। इस समय तुम्हारे जीवन की सजीव इच्छाओं से हुई आशा की प्रसन्नता सो रही है। निराशा और दुख ने तुम्हारे जीवन की इच्छाओं को दबा दिया है। किन्तु शीघ्र ही तुम्हारी यह निराशा दूर होगी और तुम में सजीव आकांक्षाएं जाग उठेंगी।

प्रकृति टेक।

शब्दार्थ—पुरातनता=प्राचीनता। निर्मोक = केंचुली। टेक = आश्रय।

भावार्थ—जीवन में ही नहीं प्रकृति में भी देखो। मुरझाए हुए फूल प्रकृति के सौंदर्य का उद्दीप्त नहीं कर सकते। वे तो अपना कार्य कर चुके हैं। धूल उन्हें अपने में विलीन करने को उत्सुक है। ये झरकर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। नए फूल ही प्रकृति की शोभा को बढ़ाते हैं। देव जाति के नाश पर हमें दुखी नहीं होना चाहिए क्योंकि उनकी दशा बासी फूल के समान ही थी।

प्रकृति एक पलभर के लिए भी प्राचीनता की केंचुली को सहन नहीं कर सकती। उसे तो नित्य नवीनता में ही आनन्द आता है और नवीनता की इस शोभा के कारण ही वह नित्य परिवर्तनशील रहती है। देवजाति भी प्राचीन हो चुकी थी। प्रसादजी ने स्वयं उसे 'पुरातन अमृत' के नाम से मनु द्वारा स्मरण कराया है। देवजाति की प्रलय प्रकृति की स्वाभाविक गति की एक कड़ी थी। उस पर तुम्हें इतना शोक नहीं करना चाहिए। वरन् प्रकृति

के सत्य को समझ कर उसके अनुसार ही प्रयास करना चाहिए। उपमा अलंकार।

युगों ... अधीर।

शब्दार्थ—युगों की चट्टानों पर=युग रूपी चट्टानों पर। अनुसरण=पीछे चलना।

भावार्थ—संसार युग रूपी चट्टानों पर अपने गंभीर चरण चिह्न छोड़ता हुआ विकसित हो रहा है। देवता, असुर तथा गंधर्व सभी अधीर होकर उसी का अनुसरण कर रहे हैं। यह संसार का नियम है कि एक जाति विकास करती है और अपना इतिहास छोड़ कर विलीन हो जाती है। इस नियम की अवहेलना नहीं की जा सकती। सृष्टि के विकास के लिए यह आवश्यक भी है। उपमा अलंकार।

"एक तुम ... विस्तार।

शब्दार्थ— विस्तृत भूखंड=विशाल पृथ्वी का भाग। अमद=प्रचुर। यजन=यज्ञ। आत्म विस्तार=अपना विस्तार।

भावार्थ— यहाँ पर एक अकेले तुम हो और इधर यह पृथ्वी का विशाल भाग है जो प्रचुर प्राकृतिक सौंदर्य से भरा हुआ है। कर्म की भोग करना चाहिए। उस भोग का व्यापक प्रभाव पड़ता है। कर्म के भोग में तथा उसके प्रभाव में ही हम जड़ प्रकृति से सजीव आनन्द की प्राप्ति कर सकते हैं। यदि हम कर्म से विमुख हैं तो हमारे लिए प्रकृति का यह अपार सौंदर्य व्यर्थ है, उसमें कोई सजीवता नहीं, कोई सरसता नहीं। यदि हम कर्म पथ पर चलते हैं तो यही जड़ प्रकृति हमें आनन्दित करने लगती है। हमारे प्रयास के फल स्वरूप इस प्रकृति के सौंदर्य में और भी अधिक कांति आ जाएगी।

तुम अकेले हो और असहाय हो। इसलिए तुम यज्ञ नहीं कर सकते। अकेले व्यक्ति द्वारा यज्ञ सम्पन्न होने का विचार अवांछनीय है। हे तपस्वी! तुम्हें कोई आकर्षण नहीं है, तुम्हें किसी से प्रेम नहीं है। इसीलिए तुम अपनी शक्ति को नहीं जगा पाए।

दब रहे विकार।

शब्दार्थ—अवलंब=सहारा। सहचर=साथी। उन्मुक्त=मुक्त। बिना विलम्ब=बिना देर किए। सबल सस्रति=संसार रूपी सागर। उत्सर्ग=बलिदान। पद तल=पाँव के नीचे। विगत विकार=निश्छल रूप से।

भावार्थ—तुम अपने एकान्त जीवन के भार से ही दब रहे हो। और और तुम कहीं कोई सहारा भी तो नहीं ढूंढ़ता। इस समय मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं तुम्हारा साथी बनकर तुम्हें सहायता दूँ और अपने कर्त्तव्य के भार से मुक्त हो जाऊँ।

समर्पण ही सेवा का सार है और वह संसार रूपी सागर से पार हो जाने के लिए पतवार के समान सहायक होता है। मैं आज मैं अपने आपको तुम्हारे प्रति समर्पण करती हूँ। आज से मेरा जीवन निश्छल रूप से तुम्हारे चरणों पर ही बलिदान हो जाएगा।

इन पंक्तियों से श्रद्धा की उदारता और सेवा भावना प्रकट होती है।

दया खेल।

शब्दार्थ—मधुरिमा=माधुर्य। अगाध=अथाह। रत्ननिधि=रत्नों का भंडार, सुन्दर भावों से भरा हुआ। स्वच्छ=निर्मल। संसृति=संसार। मूल=कारण। सौरभ=सुगन्धि, यश। सुमन=फूल। सुमन के खेलो सुन्दर खेल=फूलों के खेल करो, सुन्दर कर्म करो।

भावार्थ—आज तुम मुझसे दया, स्नेह, ममता, सौंदर्य और अगाध विश्वास लो। ये सब हृदय की वे विभूतियाँ हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य जीवन में सरलता को सहज ही प्राप्त कर लेता है। रत्न जैसे सुन्दर भावों से भरा हुआ हमारा निर्मल हृदय, आज तुम्हारे लिए खुला हुआ है। तुम जो आदेश मुझे दोगे, मैं उसे पूरा करूँगी।

तुम संसार के मूल कारण बन जाओ। यह सृष्टि की लता अब तुम्हारे प्रयासों द्वारा ही फैलेगी। तुम शुभ कर्म करो जिससे तुम्हारा यश सौरभ के समान सर्वत्र फैल जाए।

नीचे की दो पंक्तियों का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि (तुम्हारे प्रयासों द्वारा पल्लवित मानव समता की लता में „ऐसे पुष्प खिलें कि सारा

संसार सुगन्धि से भर जाए, सर्वत्र आनन्द बिखर जाए।

"और यह समृद्धि।

शब्दार्थ—विधाता=ईश्वर। मंगल वरदान=शुभ वरदान। अमृत संतान=देव पुत्र। अग्रसर है=विकासमान है। मंगलमय वृद्धि = शुभ विकास। समृद्धि = संपत्ति।

भावार्थ--और क्या तुम ईश्वर का यह कल्याणकारी वरदान नहीं सुन रहे हो। सारे विश्व में विजय का यह गीत गूंज रहा है कि तुम शक्तिशाली बनो और विपत्तियों पर विजय प्राप्त करो।

हे देव पुत्र! तुम भयभीत मत हो जाओ। तुम्हारी शुभ उन्नति होगी। जीवन तो पूर्ण आकर्षण का केन्द्र है जिससे खिंचकर संसार की सारी विभूतियाँ स्वयमेव प्राप्त हो जाएँगी।

इस छन्द से ज्ञात होता है कि प्रसाद जी को जीवन की अपार शक्ति पर कितना अधिक विश्वास है।

देव नित्य।

शब्दार्थ–ध्वंस=नाश। प्रचुर उपकरण=बहुत अधिक साधन। पूर्ण हो मन का चेतन राज=मन का संसार पूर्ण रूप से निर्मित हो जाए। अखिल=संपूर्ण। हृदय-पटल=हृदय रूपी आधार। दिव्य अक्षर = अलौकिक अक्षर जो कभी न मिटें। अंकित हो=लिखा जाए।

भावार्थ—देवताओं की असफलताओं के कारण जो उनका नाश हुआ है उससे निर्माण के बहुत अधिक साधन प्राप्त हुए हैं। अब ये सब उपकरण मानव को संपत्ति के रूप में प्राप्त हुए हैं। उन्हीं की सहायता से हमारे मन के संसार की पूर्ण प्रतिष्ठा हो।

जब एक मकान गिरता है तो उसके मलबे से दूसरे मकान के निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। उसी प्रकार देव सभ्यता के ध्वंस से मानव सभ्यता के निर्माण के साधन प्राप्त हुए हैं। देवताओं के जो गुण थे वे मानव जाति में भी प्रतिष्ठित किए जाएँ और उनकी बुराइयों से उसे मुक्त रखा जाए।

चेतन सृष्टि का इतिहास मानव जाति के भावों का संत्म ही है। इतिहास में मानव के भावों का समष्टिगत सङ्कलन होता है, इसके सभी कार्मों का उल्लेख होता है। श्रद्धा मनु से कहती है कि तुम्हारे प्रयासों के फलस्वरूप सृष्टि का इतिहास नित्य ही संसार के हृदय-पट पर अलौकिक तथा अमिट अक्षरों में अङ्कित होता रहे—मानव जाति सदैव ही अपना विकास करती रहे। और मानव जाति का इतिहास कैसा हो? घृणा और द्वेष से भरा हुआ नहीं, बस उसम पवित्र भावों की अभिव्यक्ति हो। यहाँ भी प्रसाद जी ने मनुष्य की भाव शक्ति पर ही बल दिया है।

विधाता न बन्द।

शब्दार्थ—विधाता=ब्रह्मा। कल्याणी सृष्टि=कल्याणमय संसार। बिखरें ग्रह पुञ्ज=नक्षत्रों के समूह छिन्न भिन्न हो जाएँ। सदर्प=अभिमान के साथ। अनिल=वायु।

भावार्थ—ब्रह्मा की कल्याणमयी मानव सृष्टि इस धरती पर पूर्ण हो और सफल हो। चाहे सागर फट जाएँ, चाहे नक्षत्रों के समूह छिन्न-भिन्न हो जाएँ और चाहे ज्वालामुखियाँ फटती रहें, किन्तु—

मानव जाति उन्हें चिनगारी के समान साभिमान कुचलती रह और आनन्द की साधना में लीन रहे। आज से मनुष्यता का यश धरती, आकाश और जल सब में व्याप्त हो जाए।

जलधि संसार।

शब्दार्थ—उत्स=झरने। कच्छप=कछुए। दृढ मूर्ति=अचल मूर्ति। अभ्युदय=सांसारिक उन्नति, भौतिक प्रगति। सविलास=आनन्द पूर्वक।

भावार्थ—चाहे सागर के कितने ही झरने फूट पड़े और उसमें द्वीप कछुओं के समान डूबने तथा प्रकट होने लगें, किन्तु मानवता की अचल मूर्ति के समान बनी रह और भौतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे।

प्रसाद पर आध्यात्मिकता का गहरा रंग बताया जाता है। आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में प्रायः यह कहा जाता है कि वह संसार की भौतिक समृद्धि को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। प्रसाद जी ने संसार की भौतिक उन्नति पर विशेष आस्था प्रकट की है। उससे इस प्रकार के आक्षेप निराधार हैं।

संसार की दुर्बलताएँ ही उसे शक्ति प्रदान करें। पराजित होने पर मानव जाति विषाद ग्रस्त न हो वरन यह उसमें शक्ति का संचार करे और उसे आनन्द प्रदान करती रहे। किसी कार्य में पराजित होने पर उसे यह प्रेरणा मिले कि इस कार्य को करने के लिए और भी अधिक शक्ति तथा साधना की आवश्यकता है और वह इस आवश्यकता की पूर्ति करे। इसीलिए यह कहा है कि पराजय उसमें शक्ति को तरंगित कर। अङ्गरेजी में कहा जाता है—

Every failure is a step towards success

शक्ति के ... हो जाए।"[१]

शब्दार्थ—विद्युत्कण=बिजली के कण, इलैक्ट्रॉन्स। विकल=व्याकुल।

भावार्थ—जाल जो शक्ति के बिजली के कण अशक्त होकर इधर-उधर बिखरे हुए हैं, मानव जाति उन सब का समन्वय कर अपार बल प्राप्त करे जिससे कि वह सदैव विजय प्राप्त करती रहे।

श्रद्धा के सन्देश में ऐसा प्रतीत होता है मानों यह मानव जाति को वर दान दे रही है। प्रसाद जी ने उसे मावशक्ति का प्रतीक माना है इसलिए यह उचित भी है।

—

काम

श्रद्धा के आगमन से मनु के एकान्त जीवन की विरसता भंग हो गई। उसकी बातों से मनु के मन की निराशा छीजने लगी और उसमें आशा का नवीन संचार हुआ। धीरे धीरे उनके हृदय में प्रणय की मधुर भावनाओं का जन्म होने लगा। प्रकृति के सौंदर्य ने उनकी कोमल भावनाओं को और भी उद्दीप्त किया।

इस सर्ग की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—

१—घटना क्रम का अभाव—इस सर्ग में कोई भी घटना नहीं होती। श्रद्धा आगई है किन्तु इस सर्ग में वह कहीं भी उपस्थित नहीं होती। मनु अकेले सोच रहे हैं। मनु को स्वप्न में काम के दर्शन अवश्य होते हैं जिसके वार्तालाप में नाटकीयता है।

२—यौवन का वर्णन—सर्ग के आरंभ में मनु यौवन का दर्शन करते दिखाई देते हैं। यौवन तथा बसन्त का साँग रूपक दूर तक चलता है। किन्तु यह साँग रूपक वैसा स्पष्ट और सरल नहीं है जैसा कि प्राचीन कवियों में मिलता है। इस वर्णन की अभिनव कलात्मकता इस बात में है कि प्रसादजी ने यौवन के पक्ष को मुखरित करने के लिए ऐसे अप्रस्तुत रूपों का विधान किया है, जो *प्रतीकों के रूप में प्रकट हुए हैं।* बसन्त यौवन के प्रतीक के रूप में भी आता है और यहाँ उसे प्रसाद जी ने यौवन का उपमान बना दिया है। किन्तु आगे के छन्दों में उपमान तो है किन्तु उपमेय नहीं हैं। शास्त्री दृष्टि से यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार माना जाएगा। आधुनिक शब्दावली में इन्हें प्रतीक कहा जाएगा। उपमान और उपमेय का सम्बन्ध प्रतीक और प्रतीत्य के सम्बन्ध की अपेक्षा प्रायः अधिक स्पष्ट और परम्परा प्रसिद्ध होता है। जैसे जैसे यौवन का वर्णन आगे चलता है, उसमें प्रतीकों का ही अबाध साम्राज्य दिखाई देने लगता है।

३—प्रकृति वर्णन—यौवन के वर्णन के पश्चात् मनु प्रकृति में अनुरक्त होते हैं। इस वर्णन में रहस्यात्मक संकेत भी है और माधुर्य रूपों का विस्तार भी जो कि कोमल भावनाओं को उद्दीप्त करता है।

प्रसाद जी प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। इस सर्ग में हमें इन दोनों विषयों का अत्यन्त कलात्मक और नवीन वर्णन मिलता है। प्रसाद के कवित्व में आकर प्रेम और प्रकृति में अभिन्नत्व की सहज स्थापना हो जाती है।

प्रकृति की रमणीयता का यह प्रभाव होता है कि मनु संयम और तप से उदासीन हो उठते हैं।

४—मनु का स्वप्न—मनु को स्वप्न में काम के दर्शन होते हैं। काम की उक्तियाँ अत्यन्त महत्व रखती हैं, क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रसाद जी ने जीवन में काम को किस रूप में स्वीकार किया है और उसे क्या महत्व दिया है।

आज के युग में जब कि वासना को अपनी समझ में फ्रायडवाद का वैज्ञानिक आधार प्रदान कर लेखक और कवि उसकी उपासना करते हैं, काम के शब्दों का महत्व और भी अधिक है।

काम और रति सृष्टि के मूल में हैं किन्तु देव सृष्टि में वे उच्छृङ्खल हो गए। उनका रूप विकृत हो गया और वे जीवन के सहायक नहीं उसके विनाशक बनकर आए। काम उसका पश्चात्ताप करता है और मानव सृष्टि में 'ऋण शोध' करने का निश्चय करता है।

अन्त में काम मनु से कहता है कि श्रद्धा मेरी और रति की पुत्री है। (यह काम गोत्रजा है इसलिए उसका नाम कामायनी भी है।) यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहते हो तो उसके योग्य बनो।

इतना कहकर काम की ध्वनि विलीन हो जाती है, मनु का स्वप्न टूट जाता है और वे यह ही पूछते रह जाते हैं कि मैं कैसे श्रद्धा के योग्य बनूँ।

इस सर्ग में प्रतीकों के प्रचुर प्रयोग के कारण अस्पष्टता-सी दिखाई देती है किन्तु स्थूल प्रतीकों के प्रयोग से हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है और गंभीरतापूर्वक देखने से सम्बद्ध अर्थ भी निकल आता है।

छायावादी कवियों में अर्थ की अस्पष्टता प्रभाव को खण्डित नहीं करती।

इसका एकमात्र कारण यह है कि वे ऐसे प्रतीकों का प्रयोग करते हैं जो अपनी स्थूलता में हृदय को प्रभावान्वित कर देते हैं। और प्रतीकों का प्रभाव वही है जो प्रतीत्य का होता है।

"मधुमय   खोली थी ?

शब्दार्थ—मधुमय=रसीला। वसंत=यौवन—प्रतीक। अन्तरिक्ष की लहरों में=पवन के झोंकों में हृदय की भावनाओं में—प्रतीक। रजनी=रात। बचपन—प्रतीक। कोयल=मन—प्रतीक। नीरवता=सूनापन, बचपन की सरलता। अलसाई कलियाँ = सोए हुए भाव प्रतीक आँखें खोली थीं=जाग उठी थीं=लक्षण।

भावार्थ—वसंत का पक्ष—हे रसीले वसंत तुम पवन के झोंकों में बहते हुए न जाने कब पतझर की अन्तिम रात के पिछले पहर में आ जाते हो। पतझर के पश्चात् वसंत का आगमन किस विशेष क्षण में होता है यह ज्ञात नहीं होता इसीलिए उसका चुपके से आना कहा है। वसंत ऋतु के आगमन पर पवन के मधुर झोंके चलने लगते हैं इसलिए उसे वायु के झोंके में बहकर आने वाला बताया है। पतझर में तो वायु को गिराती है किन्तु वसंत के आगमन पर वायु फूलों को खिलाती है।

यौवन का पक्ष—यौवन जीवन रूपी वन का रसीला वसंत है। वसंत के आगमन पर प्रकृति का वैभव और माधुर्य पूर्ण विकसित हो जाता है उसी प्रकार यौवन के आने पर जीवन का सौंदर्य और बल चरम अवस्था को प्राप्त करता है। किन्तु यह पता नहीं चलता कि बचपन की समाप्ति पर हृदय की भावनाओं के माध्यम से व्यक्त होता हुआ यह यौवन कब चुपके से आ जाता है। बचपन के पश्चात् यौवन कब पहले-पहले प्रकट होता है यह नहीं कहा जा सकता। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस वर्णन में प्रतीकों के आधार पर सांग रूपक की योजना की गई है।

वसंत का पक्ष—हे वसंत! क्या तुम्हें इस प्रकार चुपके-चुपके आते हुए देखकर ही मतवाली कोयल कूक उठी थी। जैसे किसी को चोरी-चोरी आते देखकर चौकीदार बोल उठता है उसी प्रकार कोयल ने भी वसंत के आगमन

की सूचना सबको दी। उसने सबको सजग कर दिया। हे बसंत! क्या तुम्हारे आगमन पर ही उस पतझर के सूनेपन में अलसाई हुई कलियाँ खिल उठी थीं। बसंत के आगमन पर ही कोयल बोलती है और फूल खिलते हैं किन्तु कवि इसका सीधा वर्णन न करके उसे प्रश्न के रूप में व्यक्त करता है जिससे व्यंजना में विलक्षणता आती है।

जिस प्रकार कोयल बसंत के आगमन को पहचान लेती है, उसी प्रकार पक्षी भी सूर्य की प्रथम किरण का आगमन जान लेते हैं और उनका संगीत मुखरित होता है। पन्तजी विहंगनी से प्रश्न करते हैं—

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना!'

यौवन का पक्ष—हे यौवन! क्या तुम्हें इस प्रकार आते हुए देखकर ही मन की मधुर वाणी गूँजने लगी और इस बचपन की सरलता में ही सोई हुई भावनाएँ जागने लगीं। यौवन के आने पर हृदय में विविध कोमल भावनाओं का संगीत मुखरित होने लगता है।

जब लीला ... कल-कल में।

शब्दार्थ—लीला=क्रीड़ा, चंचलता। कोरक=कली, नयन=प्रतीक। छुप रहना=छिप रहना। शिथिल सुरभि=अलसाई सुगन्धि, प्रेम का आवेग। धारणी=धरती। फिसलन=चिकनापन, फिसलन। सरस हँसी=मधुर-हँसी। कलकंठ=सुन्दर कंठ। कल-कल = कल-कल संगीत।

भावार्थ—बसंत का पक्ष—हे बसंत! जब तुम अपनी क्रीड़ा की चंचलता में कलियों के कोनों में छिपना सीख रहे थे, तब उन कलियों के खिलने से जो सुगन्धित बिखरी थी क्या उससे धरती में फिसलन नहीं हो गई थी? बसंत के आगमन पर कलियाँ निकलती हैं इसलिए कवि ने बसन्त को कलियों में छिपा हुआ कहा है। पुष्प रस के बिखरने से धरती में एक उन्माद भी आता है जिसके कारण मनुष्य का हृदय भावुकता में आकार संयम के मार्ग से फिसल जाता है।

यौवन का पक्ष—हे यौवन जब तुम अपनी चंचलता में नयनों के कोनों में छिपना सीख रहे थे, तब प्रेम के आवेग में इस धरती पर फिसलन नहीं

हुई थी क्या ? यौवन के आने से नयनों में सौंदर्य आ जाता है। यौवन की सारी चचलता नयनों में ही छिपी रहती है। जब आँखों में यौवन का आकर्षण समा जाता है तब प्रेम के आवेग में सभी व्यक्ति फिसल जाते हैं। यौवन की हलचल में सभी व्यक्तियों से भूलें हो ही जाया करती हैं।

वसंत का पक्ष—हे वसंत तुम अपनी हँसी-फूलों के रूप में व्यक्त करते थे और भरनों के कल-कल संगीत के रूप में गाया करते थे। फूलों का खिलना वसंत की हंसी है और भरनों का कल-कल नाद वसंत का संगीत।

यौवन का पक्ष—हे यौवन तुम्हारे आ जाने पर नायक और नायिकाओं की हंसी फूलों जैसी मधुर हो जाती है। तुम्हारे आगमन पर नायक और नायिकाए अपने मधुर कंठ से भरनों के संगीत का अनुकरण करने लगते हैं।

निश्चिंत   अम्बर में।

शब्दार्थ—निश्चित=चिंता रहित। मस्त। उल्लास = आनन्द। काकली के स्वर=कोयल के स्वर, प्रियतम का गीत। यौवन दिगंत=यौवन रूपी दिशा। अम्बर=आकाश, हृदय।

भावार्थ—वसंत का पक्ष—कोयल के मधुर संगीत में कितना आनन्द और कितनी मस्ती थी। आकाश में सदैव उसकी प्रतिध्वनि गूँजकर आनन्द संचार किया करती थी।

यौवन का पक्ष—प्रियतमा के मधुर गीत में कितना माधुर्य और हर्ष भरा होता था। हृदय में नित्य ही उसके गीत प्रतिध्वनित होते थे और रस की हिलोरें जगा देते थे।

जैसा कि इस अन्तिम छंद को ध्यान पूर्वक देखने से स्पष्ट होगा, यौवन के सम्बन्ध में विचार करते-करते मनु का मन अपने अतीत में उलझ जाता है जिसमें यौवन की रंगरलियाँ मनाई जाती थीं। ऐसा स्वाभाविक भी है क्योंकि देव जाति नित्य ही आनन्द-साधन में लीन रहती थी। इस छंद में वर्णित 'काकली का स्वर' यौवन के पक्ष को तो स्पष्ट करता ही है, साथ ही मनु के अतीत विलास की ओर भी संकेत करता है।

शिशु   सारा

शब्दार्थ—शिशु=बच्चे। शिशु चित्रकार = तरुण प्रेमी प्रेमिकाएँ।

अस्पष्ट=जो समझी न जा सके। लिपि=अभिव्यक्ति। ज्योतिमयी=आकर्षक। जीवन की आँख = चेतना, इंग्य=लक्षण। लतिका घूँघट=लता रूपी घूँघट। तुष्प=तृप। मधु-रस। प्लावित करती = भरती रही, तृप्त करती। अजिर = आँगन।

भावार्थ—नन्हें बच्चे अपनी चंचलता में ही स्लेट अथवा कापी पर अपनी आशाओं के चित्र बना डालते हैं। किन्तु उन बच्चों के चित्रों की अभिव्यक्ति ऐसी होती है जिसे कोई दूसरा नहीं समझ पाता। किन्तु बच्चों के लिए यही अभिव्यक्ति अत्यन्त आकर्षक और हृदय को भाने वाली होती है। इसी प्रकार तरुण प्रेमी तथा प्रेमिकाएँ प्रेम के आवेग में आकर आशाओं के अनेक संसार बनाते हैं, अपने भविष्य के सुखमय जीवन के अनेक चित्र बनाते हैं। उनके ये चित्र कल्पित होने के कारण धुँधले होते हैं किन्तु उनका हृदय इन चित्रों को अत्यन्त आकर्षक समझता है तथा उनकी कल्पना कर विभोर हो उठता है।

वसंत को भी एक नन्हा चित्रकार कहा जा सकता है जो अपनी चंचलता में प्रकृति के बीच विविध वर्णों के फूल-पत्ते खिलाकर अनेक सुन्दर चित्र बनाता है जिनमें उसकी आशाएं अभिव्यक्त होती हैं। किन्तु वसंत रूपी चित्रकार की यह लिपि आकर्षक तो है किन्तु साथ ही अस्पष्ट भी है। इन चित्रों को देखकर रहस्य भावना जाग उठती है।

किन्तु यहाँ 'शिशु चित्रकार' प्रयोग बहुवचन में है इसलिए वसंत का अर्थ लगाने से व्याकरण का दोष आ जाएगा। वसंत का अर्थ व्यंजना में लिया जा सकता है।

नीचे वाले छंद में यौवन तथा वसंत दोनों पक्ष स्पष्ट हैं।

वसंत का पक्ष—वसन्त में लताएँ फूलों से भर जाती हैं। लताओं के भीतर छिपे हुए फूलों से सुगन्धि की ऐसी धारा फूट निकलती थी जो प्रकृति के सारे प्रांगण को भर देती थी। प्रकृति के इस सौंदर्य और माधुर्य के सामने संसार का सारा ऐश्वर्य तुच्छ था।

यौवन का पक्ष—यौवन के आने पर नायिकाएँ लज्जा से घूँघट काढ़ लेती हैं। किन्तु घूँघट के बीच से ही उनकी दृष्टि रस की धारा का संचार

करती है। उनकी यह चितवन हृदय को तृप्त कर देती थी। यौवन के इस आनन्द के सामने संसार की सारी समृद्धि व्यर्थ थी।

दृष्टि के लिए 'कुसुम-कुंज सी मधुधारा' कहा है। वह चितवन फूलों के दूध जैसी उज्ज्वल तथा रसीली थी।

वे फूल ... अभिलाषा की।

शब्दार्थ—निश्वास=वायु, प्रेम की धारा। कलरव = कोयल या संगीत प्रेमिकाओं के गीत। रहे=चुप रहे। प्रगति=बहाव। अभिलाषा=इच्छा, उमंग।

भावार्थ—वसंत पक्ष—जिस समय देव जाति आनन्द में मग्न रहती थी, उस समय नित्य ही वसन्त रहता था। उसमें फूल मुस्कराते थे, सुगन्धि बिखरती थी। और मधुर वायु बहती थी। आकाश पक्षियों के संगीत से और झरनों की कल-कल से गूँज उठता था। किन्तु आज देव जाति के अनन्त वसन्त की हलचल समाप्त हो गई है।

— यौवन का पक्ष—देव जाति के यौवन काल में नायिकाएँ फूलों से शृंगार करती थीं, प्रेमी और प्रेमिकाएँ आनन्द में लीन रहती थीं प्रत्येक ओर साँसों में प्रेम की सुगन्धि थी। किन्तु आज प्रेमिकाओं के गीत और उनके साथ बजने वाला वाद्य-संगीत सब शान्त हो गया।

मनु अपने मन की बात कहते-कहते कुछ सोचकर और निराशा की सांस लेकर चुप हो गए। किन्तु उनकी उमँग का बहाव शान्त न हुआ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि जब मन विचार में लीन हो, और अचानक ही कोई दूसरा विचार आ जाने से वह विचार टूट जाए, फिर भी मन के चिन्तन की उमंग शान्त नहीं होती। उसके प्रभाव में आकर मन पहले विचार को छोड़कर किसी दूसरे विचार में लीन हो जाता है। मनु यौवन के सम्बन्ध में विचार करते करते रुक गए। और यह रुकना स्वाभाविक था क्योंकि अन्तिम छंद में वह यौवन और वसंत के नाश की बात कह चुके हैं। अब उनका मन यौवन से विरक्त होकर प्रकृति के रहस्य की ओर प्रवृत्त होना है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर उसका कारण स्पष्ट हो जायगा। यौवन के नाश का स्मरण मन को उससे विमुख कर ही देगा।

"ओ नील ... तेरी।

शब्दार्थ—नील आवरण=नीला पर्दा अंधकार। दुर्बोध=अज्ञात, जिसका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन हो। अवगुंठन = पर्दा। आलोक रूप=प्रकाश में दिखाई देने वाली वस्तुएँ। चल-चक्र=चंचल चक्र। वरुण=पहले वरुण अन्तरिक्ष का देवता माना जाता था, अन्तरिक्ष = तारका।

भावार्थ—अंधकार संसार का पर्दा है जो सभी वस्तुओं को अपने भीतर छिपा लेता है। किन्तु अन्धकार में ज्ञान प्राप्त कर लेना इतना कठिन नहीं है। प्रकाश के फैलने पर जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं वे ही हमारी आँखों के सामने सबसे ऐसे दुर्भेद्य पर्दा बना देती हैं। हमारे नेत्र वस्तुओं के रूप में उलझकर रह जाते हैं। और इस सौंदर्य के परे मूल सत्य क्या है इसका ज्ञान प्राप्त करना असंभव हो जाता है। जब तक मनुष्य बाह्य रूप में अटका रहता है, तबतक वह मूल सत्य तक नहीं पहुँच पाता।

श्री विश्वम्भर मानव के 'नीले आवरण' का अर्थ आकाश किया है किन्तु मुझे उसके स्थान पर अंधकार का अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है।

हे अन्तरिक्ष में गतिमान और चमकते हुए चंचल नक्षत्रों तुम क्यों व्याकुल होकर घूम रहे हो? किसके आदेश से तुम निरंतर गतिमान हो? किन्तु नक्षत्रों का यह समूह असफल हुआ है। उनका प्रकाश सत्य ज्ञान कराने की अपेक्षा, सत्य को छिपाने वाला बन गया है। उनकी इसी असफलता के फलस्वरूप ही तो तारों के फूल बिखर रहे हैं। तारों का टूटना इन नक्षत्रों की असफलता का प्रतीक है। हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

नव नील ... कारा।

शब्दार्थ—झीम रहे=झूम रहे। कुसुमों की कथा न बन्द हुई=फूलों का खिलना बन्द नहीं हुआ—सदृश्यता। आमोद=उल्लास। हिम कणिका=ओस। मकरंद = पुष्प रस। इंदीवर = नील कमल। मधु = रस। मन मधुकर=मनरूपी भँवरा। मोहिनी-सी=जादू सी। कारा=कैद।

भावार्थ—प्रकृति के नए नीले लताकुञ्ज पवन के झोंकों के स्पर्श से झूम

रहे हैं। उनमें निरन्तर फूल खिल रहे हैं। सारे आकाश में उल्लास भरा हुआ है। ओस की बूँदें ही पुष्प रस के समान गिर रही हैं। जब फूलों पर ओस की बूँदें पड़ती हैं तो सुगन्धि क मिल जाने के कारण वे ही पुष्परस बन जाती हैं।

आकाश नीले कुञ्ज के समान है। उसमें तारे रूपी फूल खिल रहे हैं। सर्वत्र आनन्द का वातावरण है। ओस की बूँदें ही आकाश के तारक-फूलों से झरने वाला पुष्प रस है।

इस नीले कमल की रस की धारा ने सुगन्धि पूर्ण एक जाली सी बुन दी है। उसी प्रकार इस आकाश रूपी नील कमल ने एक मोहक जाली सींदी है। जिस प्रकार भंवरा कमल की सुगन्धि में मोहित होकर उसमें कैद हो जाता है उसी प्रकार मेरा मन भी इस सुगन्धिपूर्ण आकर्षक वातावरण के बंधन में पड़ गया है। जिस प्रकार भँवरे को सुगन्धि का बंधन प्रेम लगता है, उसी प्रकार मन को भी यह रूप और आकर्षण का बन्धन सुन्दर लगता है।

अणुओं छाया।

शब्दार्थ—अणु = किसी वस्तु का छोटे से छोटा भाग—ऐटम। कृतिमय= सृजनात्मक। अविराम=निरंतर। नृत्य शिथिल=नाच से थक कर। निश्वास= साँस। प्राणों की छाया = प्राणों की शीतलता।

भावार्थ—अणुओं को तो एक पल भर के लिए भी विश्राम नहीं है। वे सदैव गतिशील हैं। किन्तु उनका अनन्त वेग सृजनात्मक है। अणुओं के वेग से ही उनका परस्पर सम्मिलन होता है और नवीन वस्तुओं का निर्माण होता है। अणुओं में निरंतर कम्पन नाचा करता है वे सदैव गतिशील रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों अणुओं की इस चंचलता में मूल शक्ति का आनन्द सजीव हो उठा है। जब कोई मनुष्य बहुत प्रसन्न होता है तो वह नाचने लगता है।

कोई नर्तकी नाचते-नाचते थक जाए और अपने प्रियतम के अंक में लेट जाए। तो नृत्य से थके होने के कारण उसके तेजी से चलने वाले सुरभित श्वास उसके प्रियतम को कितना आनन्द प्रदान करेंगे, उसके प्राणों का वैसा अपूर्व तृप्ति प्रदान करेगा। उसी प्रकार अणुओं के निरन्तर नृत्य के फलस्वरूप

ही वायु तेज साँस के समान चलने लगती है। अणुओं के नृत्य के फलस्वरूप ही वायु का जन्म होता है और वह प्राणों को पुलकित कर देता है।

इस छन्द में अणुओं का वर्णन, प्रस्तुत है और नर्त्तकी का वर्णन अप्रस्तुत। किन्तु स्पष्टत यहाँ अप्रस्तुत का रंग अधिक गहरा है। प्रस्तुत अर्थ को समझने से पहले ही अप्रस्तुत को समझना पड़ता है। 'जिनसे—छाया' इन दो पंक्तियों का अर्थ नर्त्तकी के पक्ष में अधिक स्पष्ट है। वायु ही नर्त्तकी के श्वासों के रूप में छन-छन कर प्रेमी के प्राणों को शीतल करता है। प्रस्तुत में इसका सामान्य अर्थ—अणुओं की गति के फलस्वरूप पवन की उत्पत्ति का होना—किया गया है।

आकाश ... आँख रही।

शब्दार्थ— आकाश, रंध्र = आकाश के छिद्र, तारे। पूरित = भरे हुए। गहन = जटिल। आलोक = प्रकाश देने वाले नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि—लक्षणा। कृतियाँ=वस्तुएँ।

भावार्थ— आकाश के छिद्र प्रकाश से भरे हुए हैं और तारों के रूप में दिखाई दे रहे हैं। रात्रि के अन्धकार में सारी सृष्टि और भी जटिल हो गई है। जितने भी प्रकाश देने वाले सूर्य आदि विशाल नक्षत्र हैं, वे सब मूर्छित से होकर सो रहे हैं। सर्वत्र घना अंधकार छाया हुआ है। दिन भर की थकान के कारण और इस अन्धकार के कारण यह आँख थक कर और देखने में असमर्थ होकर दुखी हो रही है।

दिन के समय जो वस्तुएँ सुन्दर और चंचल दिखाई देती हैं, इस समय वे रहस्यमय बनकर नाचती सी दिखाई दे रही हैं। वृक्ष और लताएँ पवन से आन्दोलित होकर हिल रही हैं और नाचती-सी दिखाई देती हैं। किन्तु अंधकार की अस्पष्टता के कारण वह रहस्य बन गई हैं। मेरी आँखों को ये वस्तुएँ अपने में उलझा लेती हैं और इस प्रकार मेरी परीक्षा लेती हैं कि मैं उनसे परे देख सकता हूँ या नहीं।

मैं देख ... तुम्हें।

शब्दार्थ—अक्षय निधि=अमर खजाना।

भावार्थ—क्या जो कुछ भी मैं देख रहा हूँ, यह सब किसी की छाया है कोई उलझन है ? क्या यह सब सत्य नहीं है, क्या इस दशा में सौंदर्य के पीछे कोई अन्य गूढ़ सत्ता है ?

यह गूढ़ सत्ता ही मेरा अमर खजाना है। किन्तु क्या मैं यह जान सकूँगा कि वह क्या है। मेरे भावों के धागे उलझे हुए हैं, मन में विविध प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। क्या यह मूल सत्ता मेरे इन सब प्रश्नों को हल कर देगी ? क्या मैं उसे इनकी सुलझना का आधार समझूँ ?

श्री विश्वंभर मानव ने 'निधि' का अर्थ 'कामना, इच्छा' किया है जो असंगत है। और जिसके कारण सारे छन्द का अर्थ गलत हो गया है।

माधवी   बोल रहा !

शब्दार्थ—माधवी निशा=वसन्त की रात्रि। अलसाई अलकें=अंधकार, मेघ, प्रतीक। मरु-अंचल=रेगिस्तान। अंतः सलिला=भीतर बहने वाली। श्रुतियों में=कानों में। मधुधारा=रस की धार, मधुर वाणी। नीरवता=मूकता।

भावार्थ—हे मेरी अनन्त सत्ता ! क्या तुम वसन्त की रात्रि के बादलों में छिपे हुए तारे के समान हो। अथवा क्या तुम सुनसान रेगिस्तान के भीतर बहने वाली नदी के समान हो। इन दोनों उपमाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूलशक्ति छिपी रहती है। किंतु जिस प्रकार बादलों के चले जाने से तारा निकल आता है और रेगिस्तान को ऊपरी भूमि हटाने से जल की धारा प्रत्यक्ष हो जाती है उसी प्रकार साधना करने से उस अव्यक्त सत्ता का ज्ञान हो सकता है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो इस शान्त वातावरण के भीतर से कोई कुछ कह रहा है और चुपचाप मेरे कानों में मधुर ध्वनि का रस बहा रहा है। यहाँ रहस्यात्मक संकेत है।

है   भीग रही।

शब्दार्थ—मलय=मलयाचल से आने वाली वायु जो शीतल, मंद और सुगन्धित होती है। संज्ञा=चेतन। तंद्रा=निद्रा, आलस्य। व्रीड़ा=लज्जा। विभ्रम=अधीरता। मृदुल कर=कोमल हाथ।

भावार्थ—मुझे उस अव्यक्त शक्ति के स्पर्श का अनुभव हो रहा है जो

मलय पवन के स्पर्श के समान ही पुलकित कर देने वाला है। इस स्पर्श से मेरी चेतना और भी निद्राग्रस्त होती है। यह स्पर्श मुझे पुलकित कर आलस्य को मेरे पास बुला रहा है।

दूसरे छन्द को समझने से पहले इसमें वर्णित अप्रस्तुत चित्र को समझना अनिवार्य है।

नायिका अपने प्रियतम को देखकर लज्जा के कारण शीघ्रता से घूँघट काढ़ लेती है। वह स्वयं प्रियतम के पीछे छिप कर अपने कोमल हाथों से प्रियतम की आँखें बन्द कर लेती है। उसका प्रियतम उस स्पर्श से पुलकित हो जाता है किन्तु वह अपनी प्रेमिका का रूप नहीं देख पाता।

उसी प्रकार वह अव्यक्त शक्ति लज्जा के कारण अपने आपको छिपा कर मेरी आँखें बन्द कर रही है। मैं उसके स्पर्श से पुलकित होता हूँ किन्तु उसके स्वरूप को नहीं देख पाता। यह लज्जा कैसी अधीरता उत्पन्न कर देती है।

उद्बुद्ध .... वंशी।

शब्दार्थ—उद्बुद्ध=जागा हुआ प्रकाशित। उदित=निकले हुए। काया= शरीर। किसलय=कोंपल। छाजन=छापा। मधु निस्वन=मधुर शब्द। रन्ध्रों में= छेदों में, बाँस के छेदों में जब वायु टकराती है तो उसमें वंशी की ध्वनि पैदा होती है।

भावार्थ—चन्द्रमा की किरणों से क्षितिज का अन्धकार हल्का होगया है और उनके प्रकाश से उसकी नीली शोभा बिखर रही है। पता नहीं वह क्षितिज की शोभा निकले हुए शुक्र नक्षत्र की छाया में चन्द्रमा की किरणों से लिपटी हुई ऊषा जैसा कौन सा रहस्य अपने में छिपाए हुए है। आकाश के अंधकार के बीच से ही ऊषा स्फुट होती है इसलिए ऊषा को उस अन्धकार में सोया हुआ बताया गया है।

व्यंजना के द्वारा यह भी संकेतित है कि जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार में ऊषा सोई रहती है, उसी प्रकार इस संसार के सौंदर्य के पीछे मूल शक्ति वर्त्तमान है।

चन्द्रमा की किरणें कोपलों से छन छन कर आ रही हैं। इन छन छन कर आती हुई किरणों के ऊपर कोमल किसलय छाया के समान दिखाई देता

है। बाँस के छिद्रों में पवन के टकराने से उसमें से मधुर स्वर गूंज उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ दूर पर बंशी बज रही है।

सब की।

शब्दार्थ—जीवन धन=जीवन का मूल। आवरण=पर्दा।

भावार्थ—वैसे तो सभी व्यक्ति यह चाहते हैं कि वे जीवन के रहस्य को समझलें, जीवन की मूल शक्ति के दर्शन कर लें। किन्तु जब वे इस मूल शक्ति के दर्शन का प्रयास करते हैं, तो उसके फलस्वरूप वे स्वयं ही उसका आवरण बन जाते हैं, उसे अन्य व्यक्तियों की दृष्टि से और भी दूर छिपा देते हैं। उदाहरण के लिए कोई भी प्रसिद्ध दार्शनिक भी शंकर या भी नागार्जुन लिए जा सकते हैं। उन्होंने जीवन की मूल शक्ति के दर्शन का प्रयास किया किंतु उनके अद्वैतवाद या इनका शून्यवाद मूल सत्य का आवरण बन गया।

इन पंक्तियों में व्यंग्य चित्र एक मन्दिर का है जिसके किवाड़ बन्द हैं। अनेक व्यक्ति दर्शन करने के लिए उस मन्दिर के सम्मुख आते हैं और कहते हैं कि किवाड़ खोल दो हम भगवान के दर्शन करना चाहते हैं। किन्तु वे व्यक्ति स्वयं ही पीछे वाले व्यक्तियों के लिए आवरण बनते जा रहे हैं।

चाँदनी गाता सा।"

शब्दार्थ—अवगुंठन=पर्दा। कल्लोल=आनन्द। फेनिल धन=फेन से भरी हुई लहरें। उन्निद्र=जगा हुआ। उन्मत्त=मस्त।

भावार्थ—यदि कभी आज मूलशक्ति का यह सुन्दर रूप का अवगुण्ठन चाँदनी के समान दो बिखर कर खुल जाए, तो उस मूल शक्ति के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। आगे प्रसादजी ने मूलशक्ति का वर्णन सागर के समान किया है। वे कहते हैं कि रूप का पर्दा हट जाने पर हमें मूल शक्ति का ऐसा सागर दिखाई देगा जिसमें अनन्त आनन्द भरा हुआ है, जो अपनी ही लीला की लहरों में मस्त है। उसकी लहरों में फेन भरा होगा और फेन भरी लहरें बार-बार उठकर गिर रही होंगी। उसमें गलों के गमूह कुल के समान बिखर रहे होंगे। और वह सागर जागा हुआ तथा मस्ती में गाता हुआ सा दिखाई देगा।

इस वर्णन में विशेषता यह है कि चाँदनी के पूर्ण के बिखर कर पुन

पड़ने से सागर में भी आन्दोलन आ जाता है। वह आनन्द में भर कर लहरों से भर जाता है। फेन से भरी लहरें बार-बार उठकर गिरती हैं। उनमें मणियाँ चमकती हैं। और सागर जागकर कुछ गाता सा दिखाई देता है। इसी वर्णन के द्वारा ही मूलशक्ति का वर्णन किया गया है जिसमें अनन्त आनन्द है, जो लीला की लहरों से युक्त है, जिसकी सृजन की अनेक लहरें नष्ट भी हो रही हैं, और जिसमें सुख की मणियाँ भी हैं। प्रलय के समय यह शक्ति सोई मानी जाती है और सृजन के समय जागी हुई मानी जाती है। अब सृष्टि का विकास हो रहा है इसलिए उसका वर्णन जागे हुए सागर के समान किया गया है।

प्रसाद जी ने पहले भी ससार के मूल कारण का ऐसा ही वर्णन किया है—

"नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा सी नीली लहरों बीच,
बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।"

कामायनी पृ० ५४

श्री विश्वम्भर मानव ने 'चाँदनी शेष नाग के फन के लिए, पवन-लहरों के लिए, फेन और मणियाँ चन्द्र और तारागणों के लिए तथा वायु की सन सनाहट सर्पराज के मुख से निकले भगवान के निरन्तर कीर्तन के लिए प्रयुक्त' मानी हैं जो कि किसी भी दृष्टि से सही नहीं है।

"जो कुछ क्या है ?

शब्दार्थ—सम्हालूँगा=संयमित रखूँगा, संचित करूँगा। मधुर भार को जीवन के=जीवन का प्रेम जो मधुर भार के समान है। दम=दमन। सकल्प=निश्चय।

भावार्थ—चाहे जो कुछ भी हो अब मैं प्रेम के मधुर भार को संयमित रहकर सचित नहीं करूँगा। अब म उसे अभिव्यक्त करूँगा, उसमें लीन रहूँगा। चाहे कितनी ही बाधाएँ दमन और सयम के रूप में मेरे सामने आएँ

मैं उनसे विचलित नहीं होऊँगा और प्रेम-पथ पर आगे बढ़ता रहूँगा।

हे नक्षत्रों! क्या तुम उषा की लालिमा के दर्शन करना चाहते हो? आज नक्षत्रों में उषा की लाली देखने का निश्चय भरा हुआ है, इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है। नक्षत्र उषा की लाली को देख नहीं पाते, क्योंकि उस समय तक वे छिप जाते हैं। इसलिए यहाँ विरोध चमत्कार है। इसका प्रेम पक्ष का अर्थ स्पष्ट एवं अबाधित है।

नक्षत्र भाव का प्रतीक है। उषा की लाली प्रेम का प्रतीक है। मनु कहते हैं हे मेरे भावों! क्या तुम प्रेम की लालिमा देखना चाहते हो। आज मेरे भावों में प्रेम-प्राप्ति का निश्चय भर गया है। अब इस विषय में कोई भी सन्देह नहीं है कि मेरे भाव प्रेम में अनुरक्त होंगे। श्री विश्वम्भर मानव ने नक्षत्र को संयमी व्यक्तियों का प्रतीक माना है। किन्तु यह मानने से बाद की दो पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। इसलिए यह अर्थ असंगत है।

कौशल क्या ?"

शब्दार्थ—कौशल=चातुरी। सुषमा=सौंदर्य। दुर्भेद्य=जिसके पार न जाया जा सके। चेतना इन्द्रियों की मेरी=मेरी इन्द्रियों की भावुकता।

भावार्थ—सत्य को सौंदर्य के पर्दे में छिपाकर रख देने में कितनी चतुराई है और कितनी कोमलता है। इस समय मेरी इन्द्रियाँ सौंदर्य में उलझकर प्रेम में अनुरक्त हो रही हैं। किन्तु क्या यह सौंदर्य मेरे लिए दृढ़ आवरण बन जाएगा? क्या मैं इस सौंदर्य के पीछे छिपे रहस्यमय तत्व को नहीं देख पाऊँगा? क्या सौंदर्य की ओर आकर्षित होने वाली मेरी इन्द्रियाँ ही मुझे जीवन में असफल कर देंगी और मुझे सौंदर्य के पार नहीं जाने देंगी?

"पीता हूँ भरे।"

शब्दार्थ—मधु लहर=मधुर कल्पनाएँ। स्वप्नों का उन्माद=मधुर कल्पनाओं की मस्ती। मादकता माती=मस्ती भरी। अवसाद=दुःख।

भावार्थ—मैं अब सौंदर्य, आनन्द और सुगन्धि से भरे हुए स्वरों का पान करता हूँ। सागर में जब लहरें उठ उठकर टकराती हैं तब जो ध्वनि

उत्पन्न होती है, यह बड़ी मधुर लगती है। मैं उसमें भी रमता हूँ। भाव यह है कि मनु अब संयम को त्यागकर इन्द्रियों के सुखों का उपभोग करते हैं।

'मधु—भरा' इन दो पंक्तियों का उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि हृदय में मधुर कल्पनाओं के उठने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु उपर्युक्त अर्थ ही यहाँ प्रधान है।

जिस प्रकार तारे आकाश में बिखरे हुए हैं उसी प्रकार मेरे मधुर स्वप्नों की मस्ती भी प्रकृति में सर्वत्र बिखरी हुई है। अब मैं मन में व्यथा लिए हुए मस्ती की नींद सो रहा हूँ। मनु को तारों में अपने भावों की मस्ती दिखाई देती है।

चेतना   माया से।

शब्दार्थ—चेतना शिथिल होती है=चेतना आलस्य से भरी जा रही है। डूब चले=नींद में लीन हो चले। रजनी=रात। क्षितिज=आकाश, हृदय। सृष्टि=संसार। सचित=एकत्रित की हुई। छाया से=प्रभाव से।

भावार्थ—अँधेरे के सघन हो जाने पर मनु की चेतना अलसाने लगी। उन्हें नींद आने लगी। जब रात आधी से अधिक बीत गई तो मनु निद्रा में लीन हो गए।

किन्तु इस मन को निद्रा में भी विश्राम नहीं है। यह अपने स्वभाव से ही चचल है, सदैव कार्य में रत रहता है। इसलिए मनु के हृदय के भीतर उनकी स्मृतियों के प्रभाव से स्वप्न का संसार निर्मित हो गया।

स्वप्न की महत्ता के विषय में विभिन्न मत हैं। फ्रायड उन्हें अतृप्त वासनाओं की पूर्ति का साधन मानता है। अन्य मनोवैज्ञानिक उनमें होने वाले कार्यों की छाया मानते हैं। भारतीय दार्शनिक स्वप्न को अपने पूर्व संस्कारों से उत्पन्न मानते हैं। प्रसादजी का दृष्टिकोण भी भारतीय ही है।

जागरण   गहरी।

शब्दार्थ—जागरण लोक=प्रत्यक्ष संसार। स्वप्नों का सुख संचार हुआ=सुखमय स्वप्न दिखाई देने लगे। कौतुक=आश्चर्य। क्रीड़ागार=खेलने का स्थान। चेतना सजग रहती दुहरी=चेतना जागरण में भी सजग रहती है और स्वप्न में भी, इसलिए उसे दुहरी सजग माना गया है।

भावार्थ—धीरे धीरे मनु जागरण लोक को भूल गए। व प्रत्यक्ष संसार से बेसुध होकर स्वप्नों में लीन हो गए। उन्हें सुखमय स्वप्न दिखाई देने लगे ये सुखमय स्वप्न मनु के मन के लिए एक आश्चर्य के समान थे। मनु के मन के ये स्वप्न विविध स्मृतियों के खेलने के स्थान बन गए, उनमें विविध स्मृतियाँ अपने आप को व्यक्त करने लगीं।

मनु आलस्य में, निद्रा में भी सोच रहे थे। चेतना, जागृतावस्था में भी सजग रहती है और स्वप्नकाल में भी। मनु की चेतना बाह्य कानों के भी भीतरी कान खोलकर कोई गम्भीर ध्वनि सुन रही थी।

कानों के कान खोलकर सुनने से अभिप्राय यह है कि स्वप्न काल में बाह्य कान तो शिथिल हो जाते हैं इसलिए वे नहीं सुन सकते। किन्तु स्वप्न में मनुष्य वाणी सुनता तो है ही। इसलिए स्वप्न की अवस्था में मनुष्य कानों की मूल चेतना से ही सुनता है, जिसे प्रसादजी ने कानों के कान कहा है। अब मनु का स्वप्न आरम्भ होता है।

'प्यासा घेरे।

शब्दार्थ—आप=वासना, पाप। तृष्णा=इच्छा। अनुशीलन=चिन्तन, मार्ग। अनुदिन=प्रतिदिन। अतिचार=अतिवेग। उन्मत्त=मस्त।

भावार्थ—काम मनु से कहता है कि यद्यपि इन्हीं ने मेरी बहुत अधिक पूजा की और वे दिन-रात मुझ में ही लीन रहते थे किन्तु मैं अब भी प्यासा हूँ। मैं देवताओं की पाप-वासना से तृप्त नहीं हुआ। यह वासना का तूफान आया भी और चला भी गया। किन्तु मेरी इच्छा अभी प्यासी है।

दिन-रात मुझमें लीन रहने वाली देवताओं की जाति नष्ट हो गई है। उस समय मेरा अतिवेग बन्द नहीं हुआ। मेरे प्रभाव ने सब को उन्मत्त बना दिया था और सभी वासना में डूब रहे।

मेरी जीवन था।

शब्दार्थ—विधान=नियम। विस्तृत=बहुत अधिक व्यापक। विलास वितान तना=विलास का तम्बू तना, विलास का व्यापक प्रसार हुआ। यह

पर=साथी । कृतिमय=आवेशयुक्त ।

भावार्थ—देवता मेरी ही उपासना करते थे। जो भी मेरा सकेत होता था, वही उनके लिए नियम बन जाता था। यदि मैंने उनके मन में स्वच्छन्द विलास की इच्छा जगाई तो उन्होंने स्वच्छन्द भोग को ही अपनी जाति का नियम बना दिया। मेरे व्यापक मोह की छाया में सारे देवता भोग विलास में अनुरक्त रहते थे।

मैं काम हूँ। मैं उनका साथी था और उनके मनोरंजन का साधन भी था। मैं उनकी मूढ़ता पर हँसता था और वे भी वासना में लीन रहकर प्रसन्न रहते थे। मैं ही उनके आवेशमय जीवन का कारण था।

जो नर्तन-सा।

शब्दार्थ—अव्यक्त प्रकृति=सृष्टि से पूर्व प्रकृति अव्यक्तावस्था में रहती है। उन्मीलन=जागरण। अव्यक्त—चाह रही=सृष्टि के निर्माण के मूल में भी इच्छा ही वर्तमान है। आरम्भिक=प्रथम। आवर्तन=चक्र, वेग। संसृति=संसार। आकार रूप के नर्तन सा=संसार में विविध रूपों का नृत्य होता है, विविध रूपों की वस्तुएं बनती और बिगड़ती रहती हैं।

भावार्थ—जो प्रेमी प्रेमिकाओं के हृदय में एक दूसरे के प्रति आकर्षण जगाती थी, वही रति थी। रति अनादि इच्छा है। संसार के सृजन के मूल में भी यही रति वर्तमान थी। अव्यक्त सूक्ष्म प्रकृति इच्छा के वेग से ही व्यक्त और स्थूल रूप धारण कर लेती है।

मेरी और रति की सत्ता उस आरम्भिक गतिमय चक्र के समान थी जिस के कारण संसार में विविध रूपों का निर्माण हुआ करता है।

यहाँ व्यंग्य रूप से कुम्हार के चक्र की ओर सकेत है। कुम्हार चक्र को चलाता और मिट्टी से विविध रूप वाले बर्तन आदि बनाता है। उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के निर्माण मूल में काम और रति की ही सत्ता है।

उस सका।

शब्दार्थ—पुष्पवती=ऋतुमती रति। माधव=वसन्त। मधु हास=मधुर हँसी, रम्य आगमन। दो रूप=स्त्री और पुरुष।

भावार्थ—प्रकृति रूपी लता जब अपने यौवन की अवस्था में थी, तभी

उस ऋतुमती रति से सौंदर्य का प्रथम मधुर आगमन हुआ जिसने स्त्री और पुरुष के दो सुन्दर रूप बनाए। जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर लताएं यौवन को प्राप्त होती हैं और उसमें फूल निकल आते हैं उसी प्रकार, रति के प्रभाव से प्रकृति से स्त्री और पुरुष के दो मधुर रूप निर्मित हुए।

श्री विश्वम्भर मानव ने 'दो रूप' का अर्थ दो अणु किया है जो असंगत है। प्रलय की अवस्था में अणु तो वर्तमान रहते ही हैं वे केवल बिखर जाते हैं, उनमें संयोग का अभाव होता है। सृष्टि के समय उनका संयोग होता है फिर केवल दो अणुओं से क्या होता है?

"वह मूल ... झलकते से।

शब्दार्थ—मूल शक्ति=संसार की मूल शक्ति। उठ खड़ी हुई=प्रलय की अवस्था में मूल शक्ति अलसाई रहती है, सृष्टि के आरम्भ में वह सजग हो उठती है। अनुराग=प्रेम। कुंकुम=केसर। अन्तरिक्ष=आकाश। मधु उत्सव= होली का उत्सव। विद्युत्कण=बिजली के कण।

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में मूल शक्ति अपने आलस्य को त्यागकर सृजन के लिए तत्पर हो गई। उस समय जितने भी बिखरे हुए परमाणु थे वे सब उसी शक्ति का प्रेम लिए हुए परस्पर मिलने के लिए लपके।

परमाणुओं की इस हलचल में ऐसा प्रतीत होता था मानों केसर का चूर्ण उड़ रहा है। वे एक दूसरे को मिलने के लिए लालायित हो उठे। ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश में होली का उत्सव हो रहा है। परमाणुओं में बिजली के कण थे जिनके कारण वे चमक रहे थे।

होली के उत्सव में केसर और गुलाल का चूर्ण उड़ाया जाता है तथा सभी व्यक्ति एक दूसरे को गले लगकर मिलते हैं। रंगों के प्रभाव से चारों ओर एक विशेष चमक और कान्ति आ जाती है।

वह आकर्षण ... सृष्टि रही।

शब्दार्थ—माधुरी छाया=सौन्दर्य की छाया में, मधुर वातावरण में, माया=आकर्षण। विश्लेषण=टुकड़े-टुकड़े करना। संश्लिष्ट हुए=मिल गए।

ऋतुपति = वसंत। कुसुमोत्सव = वसंतोत्सव। मरद=मकरद। वृष्टि=वर्षा।

भावार्थ—परमाणुओं का वह आकर्षण और वह संयोग अत्यन्त मधुर वातावरण में आरम्भ हुआ और तभी उसका निर्माण हुआ जिसे सब सृष्टि कहते हैं। यह संसार अपने ही आकर्षण में मतवाला बन गया।

उसी सृष्टि में नाश और विश्लेषण भी मिले थे। निर्माण में ध्वंस भी था और विभाजन भी। इस प्रकार संसार बन रहा था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो वसत से घर फूलों का उत्सव मनाया जा रहा है और सर्वत्र मकरंद बरस रहा है। इससे उस समय की प्रकृति प्रफुल्लता और आनन्दपूर्ण वातावरण की व्यंजना हुई है।

भुज-लता फूल चले।

शब्दार्थ—भुज-लता = भुजा की लताएँ। शैल=पर्वत। व्यजन=पंखा। कोरक अंकुर सा=कली के अंकुर के समान। सर्ग = संसार। कानन=वन।

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में स्त्री और पुरुष का जोड़ा ही नहीं बना वरन् जड़ प्रकृति में भी जोड़-जोड़ बन गए। पर्वतों के गले में सरिताओं ने अपनी भुज लताएँ डाल दीं। सरिताएँ नायिकाएँ हैं और शैल नायक। सागर भी धरती को पंखा झलने लगा। सागर नायक है और धरती नायिका रूपक और समासोक्ति अलंकार।

सृष्टि का जन्म कली के अंकुर के समान था। जिस प्रकार कली का अंकुर बहुत छोटा है, बड़ा होकर कली का रूप धारण करता है और फिर फूल कर सर्वत्र सुगन्धि बिखेरता है, उसी प्रकार इस ससार का भी जन्म हुआ जो आगे चलकर फूल के समान वैभव और यश से सुशोभित हुआ। रति और मैं भी प्रसन्नता के साथ चल दिए। उस नवीन ससार रूपी वन में हम मलय पवन के समान सुख, शीतलता और आनन्द बिखराते हुए हर्ष विभोर संचार करने लगे।

श्री विश्वभर मानव ने काम और रति को अंकुर और कली माना है जो असंगत है। पहले कहा जा चुका है कि रति तो अनादि वासना है।

हम वय में।"

शब्दार्थ—आकांक्षा = इच्छा। तृप्ति = इच्छा पूर्ति। यौवनवय=जवानी।

भावार्थ—हम देवों के हृदय में भूख और प्यास के समान ही उत्पन्न हुए और फिर इच्छा और तृप्ति का समन्वय किया। पहले उनके हृदय में इच्छा जगाई और फिर उसे तृप्ति का साधन बनाकर तृप्त भी किया। हम नित्य ही जवान रहने वाली देवताओं की सृष्टि में रति और काम बन कर विचरण करते थे।

"सुर पथ पर उनको।

शब्दार्थ—सुर बाला=देव बाला। हृतंत्री=हृदय रूपी वीणा। रागमयी=प्रेममयी। मधुमय=आकर्षक। तृष्णा=इच्छा।

भावार्थ—रति देव कन्याओं की सखी थी। वह ही उनके हृदय की वीणा से भावनाओं को झंकृत करती थी। इस प्रकार रति उनके हृदय को प्रेम के लिए प्रशस्त करती थी। रति उनके हृदय में प्रेम का संचार करती थी और उनके लिए आकर्षक थी।

मैं उनके हृदय में कामेच्छा जगाता था। रति उन्हें तृप्ति का साधन भी बताती उन्हें देवों के लिए प्रेरित करती थी। इस प्रकार हम दोनों उनको आनन्द प्रदान करते हुए ले चलते थे।

वे अमर हुआ।"

शब्दार्थ—अनंग=अंग हीन, काम का एक नाम। संचित=संचित कर्म। सरल प्रसंग=फल।

भावार्थ—किन्तु अब प्रलय हो चुकी है। न तो वह देव जाति ही बनी है और न वह मनोरंजन। मेरा शरीर भी नष्ट हो गया किन्तु अब भी मुझमें चेतना है। इसीलिए मेरा नाम अनंग हो गया। मैं अब अपने संचित कर्मों के अनुसार ही अपनी सत्ता लिए हुए इधर-उधर भटक रहा हूँ।

"यह नीड़ सुनते हैं।

शब्दार्थ—नीड़=संसार। मनोहर कृतियाँ=आकर्षक वस्तुएं। रंगस्थल=क्रीड़ा भूमि, रंगमंच। परमाणु=रूप मिलाने वाले तत्व।

भावार्थ—यह संसार मनोरम वस्तुओं का घोंसला है। यह कर्म की क्रीड़ा भूमि है। सभी यहाँ अपनी अपनी योग्यता और बल के अनुसार कर्म करते हैं। यहाँ पर तो आने जाने वालों की परंपरा लगी हुई है। जिस मनुष्य में जितना अधिक बल है वह यहाँ उतनी अधिक देर तक रहता है। जिसमें बल कम है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

यहाँ डार्विन के जीवन के लिए संघर्ष और योग्यतम के अवशेष—Struggle for existence and the Survival of the fittest—के सिद्धान्तों का प्रभाव है।

बलवान पुरुष अपने कार्य सिद्ध करने के लिए कितने ही व्यक्तियों को अपने साधन बना लेते हैं। वे तो कार्य के आरम्भ और परिणाम के बीच का सम्बन्ध प्रतिष्ठित करते हैं। न तो उनमें आरम्भ करने की क्षमता है और नहीं फल भोगने की योग्यता।

उषा

झरता है।"

शब्दार्थ—सजल गुलाली=रसीली लालिमा। वर्णों का मेघाडम्बर = रंगीन बादल। रजनी=रात। साधक कर्म=फल देने वाला कर्म। आलोक-बिन्दु = प्रकाश की बूँद।

भावार्थ—अब उषा काल होगया है। काम मनु से पूछता है कि आकाश में जो ऊषा की रसीली लालिमा घुलती है वह क्या है। सवेरे के रंगीन बादलों में जो प्रकाश दिखाई देता है वह किसका है।

यह दिन और रात का अन्तर है। ऊषा काल में रात समाप्त होती है और दिन का आरम्भ होता है इसलिए ऊषा का रात और दिन का अन्तर है। और यह जो लालिमा है वह ही फल देने वाला कर्म है। ऊषा के समय कर्म की लालिमा ही दिखाई देती है। यह कर्म नीले आकाश के नीचे प्रकाश की बूँद के समान बिखर जाता है।

जिस प्रकार ऊषा की लालिमा रात्रि को समाप्त कर दिन का आरम्भ करती है उसी प्रकार कर्म का वेग निराशा और नाश के अन्धकार को दूर कर ऐश्वर्य और शक्ति का संचार करता है, इसलिए ऊषा की लाली को कर्म कहा है। संसार माया के आँचल के समान है। कर्म इस संसार में प्रकाश की बूँद

के समान बिखर कर सर्वत्र अपना प्रकाश फैला देता है।

"आरम्भिक ह्रास हुआ।

शब्दार्थ—वात्या उद्गम=पवन की उत्पत्ति, नवीन सभ्यता का आरंभ। ऋण शोध करूँगा = कर्जा चुकाऊँगा निष्कृति का अपने कर्मों का। दोनों का=रति और काम का। समुचित = उचित, संयत। प्रतिवर्तन=वापस आना। विप्लव=प्रलय। ह्रास=नष्ट।

भावार्थ—मैं अब इस नई सभ्यता के विकास के आरम्भ में मैं अब नवीन संसार के निर्माण की प्रेरणा दे रहा हूँ। मानव जाति के आश्रय में रह कर मैं अपने कर्मों का कर्जा उतारूँगा। देवताओं में मैंने तीव्र वासना का रूप लिया था। किन्तु मानव जाति में संयत रह कर मैं अपनी उस भूल का सुधार करूँगा।

मेरा और रति का संयत रूप से लौट आना ही हमारे जीवन में पवित्र उन्नति की निशानी है। अब हमारे जीवन में पवित्रता आगई है। जब मैं प्रलय में पड़कर नष्ट हो गया, तब मुझे अपने कर्त्तव्य का सही ज्ञान हुआ।

यह लीला डाली।

शब्दार्थ—ससृति=संसार। अमला=पावन श्रद्धा।

भावार्थ—जिस मूल शक्ति की यह संसार रूपी लीला विकसित हो रही है यह वास्तव प्रेम शक्ति का सन्देश सुनाने के लिए संसार में यह पावन श्रद्धा आई है।

श्रद्धा मेरी और रति की सन्तान है। देखो तो सही यह कितनी सुन्दर और भोली भाली है। यह फूलों की ऐसी डाली के समान है जिसके साथ विविध रङ्गों ने मेलकर उसे रङ्गीन कर दिया हो उपमा अलङ्कार।

श्रद्धा डाली के समान है। उसके अङ्ग फूलों के समान हैं। और उसके प्रत्येक अङ्ग मे नवीन शोभा है।

जड़ हो रहती।

शब्दार्थ—गाँठ = बन्धन, उलझन। उष्ण=क्षुब्ध ताप देने वाले।

भावार्थ—यह श्रद्धा जड़ प्रकृति और चेतन मनुष्य को एक सूत्र में बाँधने वाली है। उसके प्रेम में प्रकृति भी प्रेममग्न दिखाई देने लगती है, मानव हृदय के अनुरूप ढलने लगती है। यह सभी भूलों को सुधारने वाली है। यह जीवन के क्षुब्ध और व्यथित करने वाले विचारों को शान्त कर आनन्द का सञ्चार करने वाली है।

यदि तुम उसे प्राप्त करना चाहो तो उसके योग्य बना। इतना कहते-कहते वह ध्वनि शान्त हो गई। मनु को ऐसा प्रतीत हुआ मानो मुरली का मधुर सङ्गीत एकाएक शान्त हो गया। उपमा अलङ्कार।

मनु रंग हुआ।

शब्दार्थ—ज्योतिमयी=कांतिमयी। प्राची=पूर्व दिशा। अरुणोदय = सूर्योदय। रस रङ्ग हुआ मनोरम दृश्य उपस्थित हो गया।

भावार्थ—मनु ने पूछा कौन सा मार्ग उस श्रद्धा तक ले जाता है। हे देव! बताओ कोई मनुष्य उस कांतिमयी को कैसे प्राप्त कर सकता है।

किन्तु वह अनोखा स्वप्न टूट चुका था। वहाँ कौन था जो मनु के प्रश्न का उत्तर देता। और जब उन्होंने पूर्व दिशा की ओर देखा तो वहाँ उन्हें सूर्योदय का मनोरम और मधुर दृश्य दिखाई दिया।

उस लता रही।

शब्दार्थ—झिलमिल=हिलता हुआ प्रकाश। हेमाभ रश्मि = स्वर्ण सी कान्ति वाली किरण। सोम सुधा रस=सोम का अमृत जैसा रस जिसे आर्य यज्ञ के पश्चात पीते थे।

भावार्थ—लता के कुञ्ज पर प्रकाश झिलमिला रहा था। स्वर्ण जैसी कांति वाली सूर्य की किरणें उससे खेल रही थीं। इधर मनु के हाथ में देव तार्यों के सोमरस की लता पकड़ी थी।

मनु के हाथ में सोमरस की बेल दिखा कर कवि ने अत्यन्त कौशल के साथ आने वाले यज्ञ का मनु द्वारा सोमरस के पान और श्रद्धा की प्राप्ति का संकेत किया है।

विषय में न कुछ कहो न कुछ पूछो। देखो चाँदनी की रात का रूप धारण कर कौन चुपचाप बैठा हुआ है।

चाँदनी रात की शीतल मधुर छाया में मनु के हृदय में मिलन की इच्छा उद्दीप्त हो उठी। एक हृदय की वासना की ज्वाला जल उठी। उनका सारा धैर्य नष्ट हो गया। मनु उन्मत्त सा होकर श्रद्धा का हाथ पकड़ कर बोले कि तुम्हारा रूप वैसा ही है जैसा कि मेरी एक संगिनी श्रद्धा का रूप था। मैं उसे भूल गया था। किन्तु आज तुम में मुझे उसी का रूप दिखाई दे रहा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम दोनों प्रलय में भी मिलन के लिए बच रहे हैं। तुम्हारी इस रमणीय नारी मूर्ति में विश्व का सारा सौन्दर्य और माधुर्य केन्द्रीभूत हो गया है। आज मेरा हृदय तुम्हें पाकर अपनी सारी व्यथा को भूल जाना चाहता है। हे सुन्दरी नारी। तुम मेरे हृदय के इस समर्पण को स्वीकार करो।

मनु के वचन सुनकर श्रद्धा लज्जा के भार से दब गई है। उसके हृदय में भी कोमल भावनाएँ जाग रही थीं। प्राण आनन्द से पुलकित हो रहे थे। वह गद्‌गद् होकर बोली कि हे देव क्या आज का मेरा समर्पण सदैव के लिए नारी जाति का बन्धन तो नहीं बन जाएगा? तुम्हारे इस दान का भोग करने के लिए मैं भी व्याकुल हूँ। किन्तु मैं दुर्बल हूँ। क्या इस दान को स्वीकार कर सकूँगी?

इस सर्ग की मुख्य विशेषता है मानव हृदय और प्रकृति का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव। उधर मनु उदास से हैं, उधर संध्या का उदास वातावरण है। जब श्रद्धा और मनु चाँदनी में भ्रमण करते हैं, तो मनु सप्रेम श्रद्धा के सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। उन्हें चन्द्रमा प्रेम का प्रतीक दिखाई देता है जो तारों का हार लिए खड़ा है।

चल पड़े घनश्याम।

शब्दार्थ—अश्रान्त=न थकने वाले। श्रान्त=निर्दय। मर्त्यगति=मृत्युगामी। विगत विकार=विकारहीन, पावन। जीवन सिन्धु=जीवन रूपी सागर। लघु=

छोटी। लोल = सुन्दर। स्वर्ण किरण = सुनहरी किरण। अमोल = अनन्त मूल्य वाली। सजल = जल भरा। उद्दाम = गम्भीर। रंजित=रंगा हुआ। श्री-कलित=शोभा युक्त। घनश्याम = श्याम बादल।

भावार्थ—पथिक के समान न थकने वाले दो हृदय जो पहले निरुद्देश्य घूम रहे थे, अब यहाँ मिलने के लिए बहुत देर पहले से ही चल दिए हैं। मनु और श्रद्धा दोनों ही प्रलय से पूर्व निरुद्देश्य पथिक के समान घूमते थे। दोनों के सामने ही जीवन का कोई उद्देश्य नहीं था। अचानक ही दोनों का मिलन यहाँ हो गया। मिलन के पश्चात् दोनों के हृदय एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए। पहले उनके हृदय के सामने भी कोई लक्ष्य नहीं था, किसी की याद नहीं थी। अब उन दोनों हृदयों का मिलन होने वाला है। उन दोनों व्यक्तियों में एक तो घर के स्वामी मनु हैं और दूसरा है पावन स्वभाव वाला अतिथि। क्योंकि मनु यहाँ पहले से ही रह रहे थे इसलिए घर के स्वामी थे और श्रद्धा बाद में आई थी इसलिए वह अतिथि थी। यदि मनु प्रश्न के समान थे, तो श्रद्धा उस प्रश्न का ऐसा उत्तर थी जो सभी को स्वीकार हो। जब कभी कोई प्रश्न सामने आता है तो उसका उत्तर खोजना भी अनिवार्य हो जाता है। जब तक उसका उत्तर नहीं मिलता तब तक प्रश्नकर्ता का मस्तिष्क अशान्त रहता है। उचित उत्तर पाते ही वह आनन्दित हो उठता है। उसी प्रकार मनु का मन भी नित्य नवीन प्रश्नों से व्यथित था। श्रद्धा मनु के प्रश्नों को शांत करने वाली है। श्रद्धा मनु को वैसे ही आनन्दित करती है जैसे कि प्रश्नकर्ता को उत्तर पाने पर आनन्द होता है।

यहाँ एक दूसरा भाव भी गंभीरता से व्यञ्जित है। प्रश्न के बिना उत्तर का अस्तित्व नहीं है और उत्तर के बिना प्रश्न का। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उसी प्रकार मनु और श्रद्धा भी एक दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरे का जीवन अधूरा है, निष्फल है। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर ही एक इकाई बनाते हैं जो कि जीवन को विकसित करने में समर्थ होती है।

प्रसादजी ने पहले भी मनु से यह कहलवाया है 'पहेली सा जीवन है व्यस्त।' श्रद्धा के विषय में भी वे कह चुके हैं 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार।' यहाँ विशेष ध्यान देने की बात यह है कि प्रसादजी ने एक ही कल्प

नाओं का विभिन्न स्थलों में विभिन्न रूपों से प्रयोग किया है। इसका कारण यह है कि ये कल्पनाएं जीवन के मूल रहस्य को स्पष्ट करती हैं। इससे भ्रम जानने में आसानी भी हो जाती है और एक विशेष चमत्कार भी आ जाता है। समान कल्पनाओं के एकाधिक बार प्रयोग करने से यह न समझना चाहिए कि प्रसाद में पुनरुक्ति है या वे नवीन कल्पनाएं नहीं कर सकते। कल्पनाएं समान हैं किन्तु उनका प्रयोग भिन्न। पहले मनु अपने विषाद को प्रकट करते हुए अपने जीवन को पहेली जैसा उलझा हुआ बताते हैं और स्वयं अपने को अपने जीवन की समस्याओं के समाधान में असमर्थ पाते हैं। यहाँ कवि श्रद्धा को उत्तर बनाकर उस असमर्थता को दूर कर देता है। उपमा अलंकार।

यदि मनु जीवन के अथाह सागर थे तो श्रद्धा उसमें उठने वाली एक नन्हीं मधुर लहर थी। मनु शक्ति के सागर के समान हैं। श्रद्धा को देखकर उसके हृदय में इच्छा की सुन्दर लहर उठने लगती है। दूसरा यह भाव भी व्यंजित है कि जिस प्रकार लहर का आधार सागर है और लहरों से युक्त होने पर भी सागर में सौन्दर्य आ जाता है उसी प्रकार मनु श्रद्धा के आधार हैं और श्रद्धा से मनु के जीवन में भी रमणीयता छा जाती है। बिना लहर के सागर जड़ माना जायगा और बिना श्रद्धा के मनु के जीवन की चंचलता नष्ट हो जायगी। यदि मनु नवीन प्रभात के समान थे तो श्रद्धा उसमें फूटने वाली अनन्त मूल्यशाली एक मनोरम सुनहली किरण के समान थी। प्रभात किरण का आधार है। उसी प्रकार मनु श्रद्धा के आधार हैं। किन्तु बिना किरणों के प्रभात भी सम्भव नहीं है, उसका माधुर्य व्यक्त नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना श्रद्धा के मनु का अस्तित्व भी कुछ नहीं के बराबर है और उसमें कोई सौन्दर्य भी नहीं रहेगा। श्रद्धा के लिए जितना महत्त्व मनु का है, उतना ही मनु के लिए श्रद्धा का महत्त्व भी है। मनु पुरुष होने के नाते श्रद्धा से अधिक शक्तिशाली है, श्रद्धा स्त्री होने के नाते अधिक कोमल एवं सुन्दर है। मनु को नवीन प्रभात और श्रद्धा को सुनहली किरण कहने में एक और गम्भीर भाव है। धीरे धीरे प्रभात की शोभा बढ़ती और अग्नि बढ़ती है और किरणें भी अधिक शोभा का धारण करती हैं, अधिक प्रकाशक होती हैं। इसी प्रकार इस

धीरे धीरे श्रद्धा और मनु के जीवन का भी विकास होगा, उनमें नई शक्ति और नवीन सौंदर्य का आविर्भाव होगा।

यदि मनु वर्षा के सजल और गंभीर आकाश के समान हैं तो श्रद्धा उस आकाश में विचरण करने वाला किरणों से रंगा हुआ श्याम बादल है। बिना बादलों के आकाश वर्षा नहीं कर सकता। उसी प्रकार बिना श्रद्धा के मनु का जीवन संसार में नवीन सभ्यता की वर्षा करने में असमर्थ था। बादलों को आकाश में ही आश्रय मिलता है, वे आकाश में ही विचरण करते हैं। श्रद्धा के जीवन का आधार भी मनु ही हैं।

श्रद्धा को प्रसाद जी ने पहले भी 'चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम' कहा है। यहाँ भी वैसी ही उपमा दी गई है। किन्तु प्रसंग की भिन्नता के कारण उसका अर्थ अधिक व्यापक हो गया है।

नदी   मेल।

शब्दार्थ—नदी तट का क्षितिज=नदी के किनारे दिखाई देने वाला क्षितिज। नव जलद=नवीन मेघ। मधुरिमा का जाल=सौंदर्य का वातावरण। अविरत=निरंतर। युगल=दोनों। चेतना के पट=चेतना के जाल। समर्पण = बलिदान। ग्रहण=आदान। प्रगति=प्रेम का संबंध बढ़ता आ रहा था। अन्तराय=बाधा। विजन-पथ=एकान्त मार्ग, एकान्त वातावरण। नियति = भाग्य।

भावार्थ—नदी के किनारे क्षितिज में संध्या के समय एक नवीन मेघ दो बिजलियों से खेलता हुआ सौंदर्य के वातावरण का सृजन कर रहा था। क्षितिज संसार का प्रतीक है, नव जलद नवीन सभ्यता का प्रतीक है और दो बिजलियाँ मनु और श्रद्धा की प्रतीक हैं। उसी प्रकार मनु और श्रद्धा के हृदय के बीच भी निरंतर एक दूसरे को आकर्षित करने का संघर्ष चल रहा था। प्रेम तो दोनों के हृदय में है। किन्तु मनु चाहते हैं कि पहले श्रद्धा उसे व्यक्त करे और श्रद्धा चाहती है कि पहले मनु व्यक्त करें। किन्तु अभी तक दोनों में से एक भी दूसरे को पूर्ण रूप से मोहित कर लेने में समर्थ नहीं हुआ। अभी

तक किसी ने भी आत्म समर्पण नहीं किया।

मनु श्रद्धा से समर्पण चाहते थे और श्रद्धा मनु से समर्पण चाहती थी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे केवल दूसरे से समर्पण ही चाहते थे, उनके स्वीकार करने की इच्छा नहीं थी। उनमें एक दूसरे को ग्रहण करने की तीव्र इच्छा भी अव्यक्त रूप से कार्य कर रही थी। वे एक दूसरे को जीवन का अभिन्न अंग भी बनाना चाहते थे। उनके मिलन में प्रगति तो होती थी, दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होते तो थे किन्तु फिर भी दोनों के बीच में बाधा तो बनी ही रहती थी। सदैव दोनों ओर से कुछ संकोच रहता था जो कि मिलन में बाधा बन रहा था। उस एकान्त वातावरण में जीवन का यह सुन्दर प्रेममय खेल चल रहा था किन्तु अब भाग्य यह चाहता था कि दोनों में मिलन हो जाए।

निस्य रोक।

शब्दार्थ—गूढ़ अंतर=अव्यक्त भेद। सघन वन-पथ=घने वन का मार्ग। अंत का आलोक = अंत में जलता हुआ प्रकाश। सतत=निरंतर। नयन की गति रोक = नयन उस आलोक में ही उलझे रहते हैं, उससे आगे नहीं बढ़ पाते।

भावार्थ—यद्यपि मनु और श्रद्धा दिन दिन एक दूसरे का अधिक परिचय प्राप्त करते जा रहे थे, किन्तु फिर भी उनका पूर्ण परिचय अभी नहीं हुआ था। उसमें कुछ देर थी। सदैव ही दोनों के बीच में अव्यक्त रहस्यमय भेद बना रहता था। इस बात को स्पष्ट करने के लिए प्रसाद जी एक उदाहरण देते हैं। वन में कोई पथिक चला जा रहा है। रात हो गई है किन्तु उसे कहीं आश्रय नहीं मिलता। अन्त में उसे वन के घने मार्ग के अन्त में एक प्रकाश दिखाई देता है। रात्रि के समय होने पर उस प्रकाश की दूरी का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पथिक के नेत्र उस प्रकाश में ही उलझे हुए हैं वह उस से आगे की कोई वस्तु नहीं देख सकता। किन्तु जैसे जैसे वह व्यक्ति आगे बढ़ता जा रहा है वैसे ही वैसे वह प्रकाश भी दूर होता

जाता है।

यही दशा मनु और श्रद्धा की है। दोनों के नेत्र एक दूसरे से वैसे ही भटके हुए हैं जैसे कि पथिक के नेत्र प्रकाश में भटके हुए थे। दोनों की दशा भी घने वन के पथिक के समान ही है क्योंकि दोनों ही प्रलय में शेष बचकर उस एकान्त वातावरण में एक दूसरे से मिले हैं। दोनों को ही एक दूसरे का ही सहारा है। किन्तु जैसे-जैसे ये एक दूसरे की ओर बढ़ते जा रहे हैं, उनकी दूरी भी बढ़ती जा रही है। आगे मनु श्रद्धा से कहते हैं—

"कौन हो तुम खींचते यों मुझे अपनी ओर',
और ललचाते स्वयं हटते उधर की ओर!" कामायानी–पृष्ठ ८६

किन्तु इस उदाहरण में एक बात और भी है। यदि वन का पथिक निरंतर चलता ही जाए तो अन्त में वह उस प्रकाश तक पहुँच ही जाएगा। इसी प्रकार मनु और श्रद्धा एक दूसरे की ओर बढ़ते हुए एक रोज एक दूसरे को पालेंगे, यह भी ध्वनित है। उदाहरण अलंकार।

गिर कोक।

अब संध्या का वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ— निस्तेज=तेज हीन। गोलक=गोला, सूर्य मण्डल। जलधि=सागर। घट पटल=बादलों का समूह। कम का अवसाद=परिश्रम की थकान। दिल से कर रहा छल छद=धोका कर रहा था अब कार्य करने में बाधा बन रहा था, छद्मणा। मधुकरी=भौंवरी। सरस संचय=मधु का संचय। धूसर=धुंधला। क्षितिज=पश्चिम का क्षितिज। अरुण आलोक=सूर्य का प्रकाश। वैभय हीन=कांति हीन, धुंधला। दरिद्र मिलन=दरिद्र का मिलन, कांतिहीनों का मिलन—विशेषण विपर्यय। करुणा लोक=वेदना का संसार। निर्बल निलय=एकांत घोंसला। कोक=पक्षी जो रात में एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं।

भावार्थ—संध्या हो रही है। तेज हीन सूर्य का गोला असहाय होकर सूर्य में गिर रहा है। यदि संध्या के समय सागर के किनारे पर खड़े होकर सूर्य को देखा जाए तो वह सागर में ही डूबता सा दिखाई देता है। किरणों का समूह

बादलों के बीच में विलीन हो रहा है। सूर्य जब नीचा हो जाता है तो उसकी किरणें ऊपर की ओर फैलने लगती हैं। मनुष्य दिन भर के श्रम से थक गए थे। इस थकावट के कारण ही व्यक्ति दिन से धोखा करता है काम करने में आना कानी करता है। दिन में मनुष्य कार्य करता है। किन्तु जब व्यक्ति थक जाता है तो उसकी कार्य करने की इच्छा नहीं रहती और वह आराम करने के बहाने निकाल लेता है। यही श्रम की थकावट का दिन के साथ धोखा है। यहाँ विशेषण विपर्यय भी है। दिन की थकावट धोखा नहीं करती दिन के थकावट के कारण मनुष्य धोखा करता है।

पश्चिम के धुंधले क्षितिज से दीनता भरा अंधकार उठ रहा था। डूबते हुए सूर्य का फिर भी प्रकाश उस अंधकार से भेंट कर रहा था। उधर अंधकार था और इधर फीकी आभा। दोनों दरिद्रों का मिलन हो रहा था जिस कारण सारे वातावरण में वेदना का प्रसार हो चला था। जब दो गरीब व्यक्ति मिलते हैं और अपनी-अपनी अभावों की कहानी सुनाते हैं, तो वेदना और भी गहरी हो उठती है। संध्या के समय निराशा का चित्रण सन्ध्या पर मानव भावों का आरोपण है। मनुष्य थका हुआ और दुखी होता है, इसलिए उसे वातावरण में भी वेदना दिखाई देती है। कोक और कोकी अपने अपने एकान्त घोंसलों में वेदना भर कर एक दूसरे से बिछुड़ रहे हैं।

मनु मुक्त।

शब्दार्थ—मनन=चिंतन। उपकरण=साधन। शस्य=धान। धान्य= अन्न। शासन मुक्त=आदेश भरा। मुदित समता=स्नेह पूर्ण। अग्नि-शाला= यज्ञ शाला जहाँ पर मनु ध्यान लगाए बैठे हैं। चमत्कृत=आश्चर्य चकित। बंधन मुक्त=स्वच्छंद।

भावार्थ—मनु अभी तक ध्यान लगाए हुए चिन्तन कर रहे थे। उनके कानों में काम का सन्देश बार-बार गूँज रहा था। इधर उधर में मनु के जीवन के साधनों का संचय कर लिया था इस प्रकार घर में उनके अधिकार बढ़ते जा रहे थे। धान, अन्न, तथा पशु आदि घर में एकत्रित कर लिए थे।

जब कभी कोई नई इच्छा होती थी, तो मनु नई नई वस्तुएँ घर में लाकर एकत्रित कर देते थे। श्रद्धा का संकेत मात्र ही मनु के लिए आदेश बन जाता था। श्रद्धा जिस वस्तु को लाने का संकेत करती थी, मनु उसे ले आते थे। किन्तु यद्यपि श्रद्धा के संकेत मनु के लिए आदेश के समान थे फिर भी उनमें स्नेह भरा हुआ था। मनु को उन संकेतों से विरक्ति या खीझ नहीं होती थी। मनु और श्रद्धा का यह खेल चल रहा था। मनु अग्नि शाला में बैठे हुए मनु आश्चर्य चकित होकर तथा जिज्ञासा में भरकर अपने भाग्य का यह स्वच्छंद खेल देख रहे थे। उन्हें जिज्ञासा इस बात की थी कि देखें आगे क्या होता है। आश्चर्य चकित इसलिए थे कि श्रद्धा का उनसे आकस्मिक मिलन हुआ और वे निरंतर श्रद्धा की ओर खिंचते चले गए। श्रद्धा और मनु का मिलन भाग्य का ही खेल था, नहीं तो, किसको आशा थी कि इस प्रलय के पश्चात भी इन व्यक्तियों का मिलन हो सकता है। भाग्य किसी नियम को तो मानता ही नहीं इसलिए उसका खेल सदैव स्वच्छंद ही होता है।

एक माया .... द्वार।

शब्दार्थ—माया=मनोरम दृश्य। मोह=पशु मोह का प्रतीक है। करुणा= श्रद्धा करुणा की प्रतीक है। सजीव=उल्लसित। चपल=चंचल। कर = हाथ। सतत=निरंतर। पशु के अंग=पशु के शरीर पर। चमर=चमर रूपी पूँछ। उद्ग्रीव=गर्दन ऊँची कर। रोम राजी=रोमों का समूह। भांवर=चक्कर। सन्निधि = समीप। वदन=मुख। सकल=सम्पूर्ण। ढार देना=बहा देना, बिखेर देना।

भावार्थ—मनु ने एक अत्यंत मनोरम दृश्य देखा। उन्होंने देखा कि पशु श्रद्धा के साथ-साथ आ रहा था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो मोह करुणा के साथ उल्लसित होकर एवं सनाथ बनकर चला आ रहा है। पशु मोह की प्रति मूर्ति था। वह इतना सुन्दर था कि उसे देखते ही हृदय मोहित हो जाता था। कि श्रद्धा करुणा की प्रतिमा थी जिसके हृदय में विश्व भर के लिए प्रेम था। श्रद्धा अपना चंचल और मृदुल हाथ पशु

के शरीर पर फेर रही थी। और वह पशु गर्दन उठाकर श्रद्धा की ओर देखता था तथा अपनी पूँछ हिलाकर मानो श्रद्धा को चमर करता है। उत्प्रेक्षा अलंकार।

कभी उस पशु के राम स्नेह से पुलकित हो उठते थे और वह अपना शरीर उछाल कर श्रद्धा के चारों ओर चक्कर काटता हुआ उसके पास मानों एक जाल सा बना देता था। कभी वह पशु अपने प्रेम भरे भोले नयनों से श्रद्धा की मुख की ओर देखता था और अपने नेत्रों से सम्पूर्ण प्रेम बिखेर देता था।

और — — — — — — — — — — — — — — — — — डाह ?

शब्दार्थ—स्नेह शवलित चाव = प्रेम भरी श्रद्धा। मंजु=सुन्दर, रम्य। सद्भाव=पवित्र भाव। शासन=आकर्षक। मुग्ध विलास करने लगे = मोहित होकर खेलने लगे। विराग विभूति=वैराग्य की राख। व्यस्त=बिखरकर। ज्वलन कण=चिंगारियाँ, कठोर भाव। भ्रस्त=छिपे हुए। वेदना मय डाह= दुख देने वाली ईर्षा।

भावार्थ—और श्रद्धा की पशु को पुचकारने की जो प्रेम भरी इच्छा थी वह हृदय का पवित्र भाव बन कर रम्य ममता से मिल गई। श्रद्धा बड़े चाव से पशु को पुचकारती थी। उसके हृदय में पशु के लिए पवित्र प्रेम या था ममता का रूप ले रहा था।

मनु को देखते ही खलते ये दोनों उनके पास पहुँच गए और परस्पर सरल एवं मधुर क्रीड़ा करने लगे।

यह दृश्य देख कर मनु के हृदय में ईर्षा की भावना जाग उठी। मनु के हृदय में संचित विरक्ति की राख ईर्ष्या रूपी पवन के चलने से बिखरने लगी। जिस प्रकार वायु के चलने से राख बिखर जाती है और उसके नीचे छिपी हुई चिंगारियाँ निकल फिर चमकने लगती हैं उसी प्रकार मनु के कठोर भाव जो ऊपर की विरक्ति से दब गए थे अब ईर्षा से फिर जाग उठे। उनका हृदय डाह से भर गया

मनु सोचने लगे कि मुझे यह क्या हो गया है ! ईर्ष्या का तीखा घूंट पीने पर उन्हें एक हिचकी सी आई। हिचकी आने में पेट का रस भी बाहर आ जाता है। उसी प्रकार ईर्ष्या के उदय होने पर छिपे हुए कठोर भाव प्रकट हो गए। मनु सोचने लगे कि कौन मेरे हृदय को जला कर मुझे दुखी बना रहा है।

"आह निर्बाध।

शब्दार्थ—गेह = घर। प्राप्य भोजन आदि आवश्यक वस्तुएं। पिच्छल= चिकनी। संलग्न=लगी हुई। क्षुद्र=छुद्रा। विराग=उदासीनता। राजस्व= कर। हृदय का राजस्व=हृदय का कर, स्वतन्त्रता (छीन कर)। अपहृत कर= छीन कर। अधम अपराध=नीच अपराध। दस्यु=डाकू, लुटेरे। निर्बाध=बिना बाधा के, निर्विघ्न।

भावार्थ—देखो तो सही, श्रद्धा इस पशु से कितना अधिक प्रेम करती है। ये दोनों मेरे दिए हुए अन्न से इस घर में पलते हैं। किन्तु मेरा यहाँ कोई मूल्य नहीं। किसी को मेरी चिन्ता नहीं है। ये सब अपना भाग तो ले लेते हैं और मेरे लिए भोजन आदि फेंक देते हैं। ये मेरे प्रति कितनी क्षुद्रता तथा उदासीनता का व्यवहार करते हैं।

मनु श्रद्धा को प्राप्त करना चाहते हैं। वे श्रद्धा पर ही नहीं संसार मात्र की सुन्दर और शोभन वस्तुओं पर अपना अधिकार करना चाहते हैं। वे यह भी पसंद नहीं करते कि श्रद्धा किसी पशु से भी प्रेम करे। इस प्रेम को देखकर भी वे जल उठते हैं। आगे चल कर श्रद्धा गर्भवती होती है और मनु से पुत्र के स्नेहपूर्ण पालन की बात करती है तब भी मनु ईर्ष्या से जल उठते हैं। वे अपने पुत्र से भी श्रद्धा को प्रेम करता नहीं देखना चाहते। इसीलिए वे श्रद्धा को छोड़ कर चले जाते हैं। मनु के चरित्र की दृष्टि से प्रस्तुत छन्द महत्व पूर्ण है।

हे नीच कृतघ्नता। चिकनी शिला के ऊपर लगी हुई काई के समान ही तू कितने हृदयों को फिसला कर तोड़ेगी, उन्हें व्यथित करेगी ! एक तो शिला

वैसी ही चिकनी है। उस पर यदि काई लगी हो तो जो कोई भी उस पर पाँव धरेगा, निश्चित ही फिसल जाएगा और चोट खा जाएगा। उसी प्रकार हृदय में एक तो वैसे ही सन्देह तथा भ्रम विकार भरे होते हैं। यदि उसमें कुत्पनता और हो जाए, तो उसके कारण अनेक व्यक्ति पीड़ित होते हैं।

श्रद्धा और इस पशु ने मेरे हृदय की स्वतन्त्रता छीन ली है। मैं सदैव इनकी चिन्ता करता हूँ, इनके लिए आवश्यक वस्तुएँ संचित करके रखता हूँ। पहले मैं स्वतन्त्र था, मुझे कोई बन्धन नहीं था। किन्तु अब एक तो इन लुटेरों ने मुझे अपने मोह में बाँध कर और मेरी आजादी छीन कर इतना नीच अपराध किया है और उस पर भी ये मुझसे निरन्तर पूर्ण सुख की कामना करते हैं, या चाहते हैं कि मैं निरन्तर इनकी सेवा किया करूँ। उपमा अलंकार।

प्रसाद जी ने बड़ी सुन्दर तथा नवीन उपमाओं का प्रयोग किया है। इन्हें पढ़कर 'उपमा कालिदासस्य' की स्मृति हो आती है। निस्संदेह प्रसाद जी हिंदी के कालिदास ही हैं।

शांत।"

विरव

शब्दार्थ—विभूति=महान वस्तु। प्रतिदान=सेवा। ज्वलित=जलता हुआ। बाड़व वह्नि = सागर की अग्नि।

भावार्थ—इस संसार में जो भी सरल तथा महान वस्तुएँ हैं वे सब मेरी हैं। मैं ही उनका एक मात्र स्वामी हूँ। ये सब सदैव मेरी ही सेवा करती रहें केवल मेरे ही उपभोग में आएँ। सत्य तो यही है। मैं सागर की अग्नि के समान नित्य ही जलता रहता हूँ प्रतिदिन दुःखी रहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ जिस प्रकार सागर की सभी लहरें सागर के भीतर जलने वाली अग्नि को शान्त करती हैं उसी प्रकार संसार की सभी विभूतियाँ मुझे तृप्त करती रहें।

सागर की अग्नि जल के भीतर जलती है, ऊपर से दिखाई नहीं देती उसी प्रकार मनु के मन की ज्वाला भी हृदय में दबी रहती है। हाँ, कभी-कभी वह अवश्य भभक उठती है। उपमा अलंकार।

आगया शान्त।

शब्दार्थ—क्रीड़ा शील=खेलता हुआ। चपल=चञ्चल। शैशव=बचपन। आज कैसा रंग=आज तुम्हारी अवस्था कैसी है। दृप्त=उठा हुआ तीव्र। विलीन=नष्ट। कर=हाथ। कांत=सुन्दर।

भावार्थ—फिर वह उदार श्रद्धा खेलती हुई पास आगई। जिस प्रकार बच्चा कोई मधुर भूल करने पर और भी सुन्दर लगता है और उस पर और भी प्रेम उमड़ आता है, उसी प्रकार मनोरम भूल से युक्त श्रद्धा का सरल सौंदर्य और भी मनोरम हो गया। श्रद्धा स्वभाव की सरल है यह पहले भी कई बार कहा जा चुका है। श्रद्धा की मनोरम भूल यह है कि उसने मनु की दृष्टि में उनकी उपेक्षा की।

श्रद्धा पास आकर मनु से बोली कि क्यों तुम अभी तक बैठे हुए ध्यान कर रहे हो। तुम्हारी आँखें कहाँ है तुम्हारे कान कहाँ है।

और तुम्हारा मन कहाँ है। यह आज तुम्हें हो क्या गया है! आज तुम्हारी अवस्था कैसी हो रही है! श्रद्धा की मनोहर वाणी सुनकर मनु के हृदय में उठने वाली क्षोम की उमग लीन हो गई और तीव्र ईर्षा का उठा हुआ फन साँप के काटने से शरीर में विष घुल जाता है, उसी प्रकार ईर्षा के उत्पन्न होते ही सारा शरीर जलने लगता है।

फिर श्रद्धा अपने कोमल सुन्दर कमल जैसे हाथ से मनु को सहलाने लगी। मनु श्रद्धा का रमणीय रूप देखकर कुछ शान्त हुए। उनके हृदय में जो ईर्षा की आँधी उठ रही थी वह वेग हीन हो गई।

कहा साम्य।

शब्दार्थ—अज्ञात=जिसका ज्ञान न हो। सहचर=साथी। सुलभ=सहज ही प्राप्त होने वाला। चिरंतन=सनातन। ज्योत्स्ना निर्भर=चाँदनी का झरना। साम्य=शक्ति।

भावार्थ—मनु ने श्रद्धा से कहा कि हे अतिथि। तुम इतनी देर से कहाँ थे! मुझे तो कुछ भी ज्ञात नहीं है कि तुम कहाँ थे। और तुम्हारा यह साथी

पशु तो ऐसा दिखाई देता है मानो सहज ही प्राप्त होने वाले किसी भविष्य की बात कह रहा है। गूढ़ अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार आज इस पशु में और तुम में जिस प्रकार प्रेम क्रीड़ा चल रही है उसी प्रकार भविष्य में हम दोनों भी प्रेम में मग्न होकर खेलेंगे। पता नहीं क्यों मुझे तुम से अधिक अधीर गम्भीर और सनातन स्नेह की प्राप्ति हो रही है? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारा प्यार मुझ पर बरस रहा है।

श्री विश्वंभर मानव ने सहचर का अर्थ 'मनु' किया है जो असंगत है। मनु अभी श्रद्धा के सहचर नहीं, गृहपति हैं।

मनु श्रद्धा से कहते हैं कि तुम कौन हो जो मुझे अपनी ओर इस प्रकार आकर्षित करते हो। मुझे लालायित कर तुम स्वयं मुझसे दूर हटती जाती हो। तुम मुझ पर स्नेह दिखाती हो मेरे दुख और व्यथा को दूर करने का प्रयास कर मुझे अपनी ओर खींचती हो और जब मैं तुम्हें पाने के लिए आगे बढ़ता हूँ तो तुम मुझ से दूर हट जाती हो।

तुम चाँदनी के झरने के समान हो। जिस प्रकार चाँदनी के झरने की ओर देखने से आँख चौंधिया जाती है और उस पर ठहर नहीं सकती, इसी प्रकार तुम्हारे सौंदर्य की कांति के कारण मेरे नेत्र तुम पर टहर ही नहीं सकते। अब तो म अपने आप को तुम्हें पहचानने में असमर्थ पाता हूँ। कारण यह है कि तुम्हारे रूप से मैं मोहित हो गया हूँ, तुम भी मेरे साथ मधुर व्यवहार करती हो किन्तु फिर भी मुझ से दूर रहती हो। समझ में नहीं आता कि तुम क्या चाहती हो।

कौन सानंद।

शब्दार्थ—करुण रहस्य=ऐसा रहस्य जिसमें संसार भर के लिए स्नेह भरा हुआ है। छविमान = कांतिमान। वीरुध=पौधे। छायादान = शीतलता प्रदान करते। पाषाण=पत्थर। नृत्य का नवछंद=नवीन नृत्य की गति, नवीन सजीवता।

भावार्थ—तुम में कौन से ऐसा कांतिमान रहस्य छिपा है जिसमें संसार

भर के लिए स्नेह भरा हुआ है । यह कौन सा गुण है जिसे लताएँ और पौधे भी शीतलता प्रदान करते हैं । अभिप्राय है कि श्रद्धा में कुछ ऐसा जादू है कि उस से जड़ और चेतन सभी वस्तुएँ प्रभावित हो जाती हैं । लताएँ और पौधे उसकी सेवा करने लगते हैं ।

चाहे पशु हो और चाहे पत्थर तुम्हें देखकर सभी उल्लास में सजीव हो उठते हैं । तुम्हारा सौंदर्य सब वस्तुओं में स्फूर्ति भर देता है । जड़ और चेतन सभी वस्तुएँ तुम्हारे आलिंगन के आकर्षण से खिचे चले आते हैं ।

राशि मीन—

शब्दार्थ—राशि राशि बिखर पड़ा है=अधिक मात्रा में बिखर गया है । संचित=राशीकृत । ललित=सुन्दर । लतिका-लास=लता का नृत्य । अरुणघन= लाल बादल । दिनांत निवास=संध्या के समय निवास । सहज=स्वाभाविक रूप से । सविलास=माधुर्य के साथ । मदिर = मस्त । माधव यामिनी = बसंत की रात्रि । पद विन्यास = प्रवेश । स्खलत मंदिर=गिरा हुआ भवन ।

भावार्थ—तुम में जो प्यार संचित है, वह आज सारे संसार में सघनता के साथ बिखर रहा है । तुम सारे विश्व में प्रेम का संचार कर रही हो । और यह संसार तो दरिद्र है । इसके पास कुछ भी तो नहीं । तुम ने जो प्रेम बिखेर दिया हैं । उसे ही यह संसार एकत्रित कर अपने पास रख रहा है । संसार में जहाँ भी प्रेम दिखाई देता है यह सब तुम्हारा ही दिया हुआ है । किन्तु यह प्रेम संसार पर उधार के रूप में रहेगा । मिलन के क्षण आने पर यह प्रकृति अपने इस उधार को चुकाएगी और तुम्हारे प्रेम को उद्दीप्त करेगी, तुम्हारे आनन्द को और भी रसमय बनाएगी ।

मैं आश्चर्य चकित होकर इस प्रकृति का दृश्य देख रहा हूँ । वायु के झोंकों में चपल लता नृत्य करती हुई सी शोभा दे रही हैं । संध्या का समय है । आकाश में लाल बादल बिखरे हुए हैं । उन लाल बादलों की शोभा उस लता पर बिखर रही हैं । यह लता उस शोभा के बीच में अत्यन्त मधुर दिखाई देती है । और अब मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उस संध्या के

बलद लघु सरड = बादल का छोटा टुकड़ा। वाहन = रथ आदि बैठने की सवारी। साज = शृङ्गार। घुलने लगा। आलोक = प्रकाश फैलने लगा। अनन्त निभृत = एकान्त। निशामुख = चन्द्रमा। सुधामय = अमृतमय। अनुमान = अनुभव।

भावार्थ—श्रद्धा ने हँसकर उत्तर दिया कि मैं तो तुम्हारी अतिथि हूँ। और इससे अधिक परिचय देना व्यर्थ है। किन्तु तुम आज तक तो मेरे परिचय के लिए इतने अधीर न थे। आज क्या विशेष बात है?

आओ चलें। देखो तो बादल के छोटे से टुकड़े पर सवार यह सरल एवं हँसता हुआ चन्द्रमा हमें बुलाने के लिए आ रहा है। जब बादल के टुकड़े रात के समय उड़ते हैं तो ऐसा दिखाई पड़ता है मानो चन्द्रमा चल रहा है। इसलिए बादल को चन्द्रमा का वाहन कहा गया है। श्रद्धा मनु को अधीर देखकर उन्हें शान्त करने के लिए प्रकृति के मनोहर सरल रूप की ओर आकर्षित करती है। किन्तु जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट होगा, प्रकृति का यह सौंदर्य मनु की कामना को और भी तीव्र करता है।

धीरे धीरे कालिमा विलीन होने लगी। चारों ओर चाँदनी का प्रकाश फैलने लगा। इस एकान्त अनन्त स्थान पर अब प्रकाश का लोक बसने लगा है। प्रकाश के कारण यहाँ का एकान्त स्थान एक नवीन लोक के रूप में दिखाई देने लगा है।

चन्द्रमा की मुस्कराहट बड़ी रमणीय और अमृत से भरी हुई है। चाँदनी चन्द्रमा की मुस्कान है और वह अत्यन्त मधुर होती है। श्रद्धा कहती है कि उस चाँदनी को देखकर तो मनुष्य दुख के सारे अनुभव भूल जाता है।

देख ... राज।"

शब्दार्थ—शिखर = पर्वत की चोटी। व्योम चुम्बन=आकाश का चूमना व्यस्त = आकुल। होना अस्त = डूबना। कौमुदी = चाँदनी। स्वप्न शासन= स्वप्न सा मधुर शासन, रमणीय रूप। साधना का राज = ऐसे पवित्र समय जिसमें साधना की जाती है।

भावार्थ—देखो, ऊँची चोटियाँ किस आकुलता के साथ आकाश को चूम रही हैं। उधर पूर्व दिशा की ओर सूर्य की अन्तिम किरण लौटकर अस्त हो रही है। चलो आज हम इस चाँदनी में प्रकृति का रमणीय रूप देख आएँ, जिसमें तपस्वी अपनी साधना करते हैं।

सृष्टि अंध।

शब्दार्थ—सृष्टि = ससार। हँसने लगी = चाँदनी में सारा संसार हँसता सा दिखाई देता है, आनन्द से पूरित दिखाई देता है। खिला अनुराग = प्रेम जाग उठा। राग-रंजित = प्रेम में रँगी। चन्द्रिका=चाँदनी। सुमन पराग= पुष्परस। स्वप्न पथ=मधुर मार्ग, इच्छाओं को पूर्ण करने का मार्ग। स्नेह सम्बल=प्रेम रूपी पाथेय या सफर खर्च। निकुंज=लताओं आदि के कुंज। गह्वर=गुफा। सुधा=अमृत। स्नात=नहाए हुए। मदिर=मस्ती भरी। माधवी= एक लता विशेष। पवन के घन=पवन के बादल, वायु के झोंके। मधुमय= सुगन्धि से मस्त होकर।

भावार्थ—सारे ससार में चाँदनी फैल गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो सारा संसार हँस रहा है। मनु और श्रद्धा के नयनों में प्रेम उमड़ आया। चाँदनी प्रेम से रँगी दिखाई देती थी। पुष्प-रस बिखर रहा था।

और श्रद्धा मनु का हाथ पकड़ हँस रही थी। मनु और श्रद्धा दोनों सपनों के मधुर मार्ग पर चल दिए। उनके पास केवल प्रेम का ही पाथेय था।

देवदारु के वृक्ष, कुंज और गुफाएं सभी चाँदनी के अमृत में सराबोर थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो सब जागकर रात में उत्सव मना रहे हैं। चारों ओर उत्सव जैसा प्रकाश और आनन्द बिखरा था।

उस समय माधवी के फूलों की मस्त कर देने वाली मीनी-मीनी सुगन्धि आ रही थी। और वायु के झोंके पुष्प रस से मस्त बने हुए आ-जा रहे थे। वायु में सुगन्धि लदी थी। झोंके आते थे, फिर चले जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे पुष्परस पीकर नशे में मस्त हो गए हों—जैसे शराबी शराब पीकर मस्त हो जाते हैं।

शिथिल ... कांत।

शब्दार्थ—शिथिल=थकी हुई। निशा=रात। कांत=सुन्दर। शिशिर कण=ओस की बूंद। विश्रांत=थकी हुई। झुरमुट=लताओं का समूह। भावना थी भ्रांत=भावना असयमित हो रही थी। कुतूहल=जिज्ञासा।

भावार्थ—रात की सुन्दर छाया थककर ओस की बूंदों की शय्या पर सो रही थी। चाँदनी ही रात की छाया है जो धरती पर पड़ी ओस की बूंदों के ऊपर बिखरी हुई है। वह शान्त—स्तब्ध है—मानो सो रही है।

जहाँ कहीं लताओं के समूह थे, वहाँ धरती पर छाया दिखाई देती थी। यह छाया हृदय में मधुर जिज्ञासा उत्पन्न करती थी। जब दृष्टि उस छाया की ओर जाती थी, हृदय की भावना उच्छृङ्खल हो जाती थी। इस छाया में बैठ कर विश्राम करने को जी चाहता था, प्रेम के नशे में मस्त होकर झूमने को भी चाहता था।

इस प्रकृति चित्रण में तीन प्रधान विशेषताएं हैं। प्रथम है, प्रकृति का मानवीकरण—संसार का हँसना, देवदारु आदि का उत्सव मनाना, रात की छाया का सोना। कल्पनाएं कोमल, मनोरम और मादक हैं। यहाँ हृदय और प्रकृति में सामरस्य की स्थापना भी हुई है, हृदय में भी सौंदर्य और मस्ती है, वातावरणों में भी माधुर्य और नशा है। इस मनोरम वातावरण में मनु को श्रद्धा में अभूतपूर्व सौंदर्य दिखाई देता है।

कहा ... चक्राकार।

शब्दार्थ—दबे छवि के भार=सौंदर्य के भार से दबे हुए—सुन्दर। रमणीय=कमनीय। अतीत=भूतकाल। मदिर घन=मन्द बादल। वासना=कामना अचेत=बेहोश। सव्रीड=लज्जा सहित। सस्मित=हँसता हुआ। सुदृढ़=निश्चित। परिधि=घेरा। चक्राकार=गोलाकार।

भावार्थ—मनु श्रद्धा से बोले कि हे अतिथि मैंने पहले भी तुम्हें कितनी बार देखा है। किन्तु पहले तो कभी भी तुम मुझे इतने सुन्दर दिखाई नहीं दिए थे। आज का तुम्हारा सौंदर्य अभूतपूर्व है।

यह मेरा कमनीय अतीत था या पूर्व जन्म का काल था जब कि मस्ती भरे बादलों में मेरी कामना का संगीत गूंजा करता था। अब मेरी कामना अबाधित रूप से सारी प्रकृति में व्यक्त होती थी और मैं प्रेम में मस्त रहता था।

प्रलय से पूर्व का जीवन मनु को पूर्व जन्म के जीवन के समान दिखाई देता है। इसका कारण स्पष्ट है। प्रलय के पश्चात मनु के जीवन में निराशा इतनी सघन हो उठी थी कि उसने उनके मधुर अतीत को जीवन में बहुत दूर हटा दिया था।

मैं प्रेम क्रीड़ा के जिस दृश्य को भूलकर आज बेहोश हो गया हूँ, वही दृश्य आज कुछ लज्जित सा कुछ मुस्कराता सा मुझे फिर अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। मनु ने अपना अतीत जीवन बिल्कुल भुला दिया था। उनके जीवन में निराशाजनक साधना घिरने लगी थी जिसके द्वारा वे अपने मन की चंचलता को दबाने का प्रयास करने लगे। उनका वह उत्साह, वह वेग समाप्त हो गया जो पहले उनमें था। इसीलिए वे कहते हैं कि मैं अपने अतीत जीवन को भूलकर बेहोश हो गया हूँ। श्रद्धा के सामीप्य से मनुष्य के हृदय में फिर संभोग की इच्छा होती है और उन्हें प्राचीन प्रेम क्रीड़ा के दृश्य याद आ जाते हैं जो इस इच्छा को और भी तीव्र करते हैं। इस स्मृति में लज्जा भी है और मुस्कराहट भी। लज्जा इसलिए कि उस स्वच्छन्द विलास के कारण ही देव जाति का नाश हुआ था और आज मनु फिर उसी ओर खिंचे जा रहे हैं। मुस्कान इसलिए कि उसमें जीवन के गम्भीरतम आनन्द की अनुभूति छिपी है। वह स्मरण 'सव्रीड़' और 'सस्मित' नहीं है वरन् मनु 'सव्रीड़ और 'सस्मित' हैं इसलिए यहाँ विशेषण विपर्यय है।

मनु आगे श्रद्धा से कहते हैं कि एक ही स्थायी विचार मेरी चेतना को अपने घेर में बाँध रहा है। और वह यह है कि मैं अब तुम्हारा होता जा रहा हूँ।

मधु   भार।

शब्दार्थ—मधु=रस। बरसती=बरसाती—प्रसाद जी ने पहले भी बरसती

शब्द का प्रयोग बरसाती के अर्थ में किया है—'ठया सुनहले तीर बरसती'। विधु किरन=चन्द्रमा की किरण। मंथर=मद। मधु भार=पुष्प रस का भार। तृप्त=सन्तुष्ट। माण=नासिका। धमनियों में=नसों में। वेदना पीड़ा।

भावार्थ—चाँदनी कोमल किरण रस की वर्षा करती हुई काँप सी रही है। वायु पुष्परस से बोझिल होकर पुलकित सा धीरे धीरे चल रहा है। वायु के स्पर्श से शरीर पुलकित हो उठता है इसलिए उसे पुलकित कहा। यहाँ के प्रकृति पर अपने भावों का आरोप किया गया है।

तुम मेरे इतने समीप हो। फिर भी पता नहीं क्यों मेरा हृदय इतना बेकल हो रहा है। पता नहीं कौन सी सुगन्धि है जो मेरी नासिका को सन्तुष्ट कर रही है।

मनु कहते हैं कि पता नहीं क्यों आज मुझे सन्देह हो रहा है कि तुम मुझ से रूठ गई हो। श्रद्धा के हृदय में अभी संकोच है इसलिए मनु को उसके रूठने का सन्देह सा होता है। मनु कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि मेरा यह सन्देह व्यर्थ है किन्तु फिर भी मैं विवश हूँ। इतना ही नहीं मैं मजबूर सा होकर तुम्हें मनाने के लिए भी आकुल हूँ।

मेरी नसों में वेदना समान रक्त का भ्रमण हो रहा है। आवेश के कारण मेरी धड़कन तीव्र हो गई है। और वासना के वेग के कारण सारे शरीर में पीड़ा की सी अनुभूति हो रही है। मेरा हृदय ज़ोर से धड़क रहा है। उस पर अतृप्त इच्छा का भार है।

चेतना विनाश।"

शब्दार्थ—रंगीन ज्वाला=वासना की आकर्षक आग-प्रतीक। परिधि=धरा। सानन्द=सुख पूर्वक। दिव्य-सुख=अलौकिक सुख। गा रही है छन्द=प्रेम के गीत गा रही है। अग्नि कीट=समंदर नाम का कीड़ा जो आग में रहता है किन्तु जलता नहीं। न छाले हैं न उसमें दाह=कोई घाव या जलन नहीं है—पीड़ा नहीं है। विश्व माया कुहक सी=संसार की रमणीयता को जगाने वाली वायु के समान। प्राण सखा=जीवन सखा। निश्वास=साँस लेकर।

व्यजन=पंखा।

भावार्थ—मेरी चेतना मधुर वासना की आकर्षक ज्वाला के भीतर बड़े आनन्द के साथ और अलौकिक सुख का अनुभव करती हुई प्रेम के गीत गा रही है। हृदय की यह उत्तेजक वासना भी रमणीय लगती है। इस वासना में ही उसे सुख का अनुभव होता है और वह प्रेम के गीत गाता है।

जिस प्रकार आग में रहने वाला समंदर कीड़ा बड़े उत्साह के साथ उसमें जला करता है किन्तु उसके शरीर को न गर्मी लगती है और छाले निकलते हैं उसी प्रकार मेरी चेतना भी उत्साह में भर कर इस वासना में जल रही है। किन्तु उसे इस वासना की ज्वाला में तनिक भी कष्ट नहीं होता। वरन् उसे अलौकिक सुख ही प्राप्त होता है। उपमा अलंकार।

हे नारी तुम संसार भर की रमणीयता को अभिव्यक्ति करने वाली वायु सी कौन हो? सारे संसार का सौंदर्य स्त्री के सौंदर्य की ही, तो अभिव्यक्ति है। कवि प्रकृति में स्त्री के सौंदर्य का ही दर्शन करते हैं। तुम जीवन की सत्ता के मनोरम रहस्य के समान ही कोमल है। जिस प्रकार जीवन की आधार शक्ति कोमल और सुन्दर है उसी प्रकार तुम भी सुकुमार हो। उपमाएँ नवीन एवं विलक्षण हैं।

जिस प्रकार थका हुआ पथिक वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम लेता है और वायु के झोंकों के स्पर्श से अपनी थकावट दूर करता है उसी प्रकार हृदय भी तुम्हारे सौंदर्य की मधुर छाया में निश्चिन्त होकर विश्राम करता है और अपनी सारी थकावट और अशान्ति को दूर करता है। यह उपमा भी नवीन है।

श्याम अनुरक्त—

शब्दार्थ—श्याम नभ=अंधेरा आकाश, मनु का निराशमय हृदय=प्रतीक। मधु किरना सा=मनोहर किरण सा। मृदु=सुकुमार। हिलकनें=लहर। दक्षिण का समीर विलास=दक्षिण दिशा से आने वाले वायु का मधुर संचार, मलय पवन का मधुर आगमन जो प्राणों की व्यथा दूर करता है।

मुकुल=कली। अव्यक्त=छिपा हुआ। अनुरक्त=तल्लीन।

भावार्थ—श्रद्धा फिर यही सरल हँसी हँस दी। उसकी हँसी नीले आकाश में संचरण करती हुई मधुर किरण के समान थी जो अंधकार का दूर कर आशा का सन्देश देती है। उस हँसी से मनु के मन की व्यथा का अन्धकार हल्का हो गया। उस हँसी में सागर की लहर जैसी चंचल सुषमा थी, मलय पवन जैसी शीतलता थी। मनु को उस हँसी ने शीतलता प्रदान की।

जिस प्रकार किसी कुञ्ज में छिपी हुई कली मधुर मधुर ध्वनि करके खिल पड़ती है उसी प्रकार श्रद्धा मधुर शब्द करती हुई हँस दी। इस प्रकार हँसती हुई श्रद्धा बोली और मनु तल्लीन होकर सुनने लगे—

"यह .... शांत।"

शब्दार्थ—अतृप्ति=असन्तोष, प्यास। अधीर=वासना से चपल। काम-मुक्त=क्षीण रूप करने वाला। उन्माद=मस्ती। सखे=मित्र। तुमुल=उच्च। उच्छ्वासमय=लम्बी साँसों से भरा हुआ। संवाद = कथन। विमल=स्वच्छ। राका मूर्ति = पूर्णिमा की रात की मूर्ति। स्तब्ध=शान्त। विभव=ऐश्वर्यपूर्ण। आवरण यह नील=यह नीला पर्दा, आकाश। प्रचुर=बहुत अधिक। मंगल लोक = मंगल सूचक लाजा या भुने चावल जो श्वेत होते हैं। नखत = नक्षत्र। अर्चना=पूजा। अभ्रान्त = निरन्तर। तामरस=कमल, सोना।

भावार्थ—हे मित्र! तुम्हारा चंचल मन प्यासा है, यह मिलन का अभिलाषी है। तुम्हारे हृदय में वासना की हलचल का पागलपन भरा हुआ है। तुम बार-बार लम्बी साँस लेकर जो बातें कहते हो, वे ऊँची-ऊँची तरंगों के समान शक्ति और वेग वाली हैं।

किन्तु इस समय तुम इन बातों के विषय में न कुछ कहा और न ही कुछ पूछा। देखो तो सही कौन इस स्वच्छ पूर्णिमा की रात्रि की प्रतिमा बन कर बिल्कुल शांत होकर बैठा हुआ है। रात्रि का समय है। सर्वत्र चाँदनी बिखरी हुई है। इसके साथ ही साथ शान्ति का प्रसार है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई चाँदनी रात की प्रतिमा बनकर चुपचाप बैठा हुआ है।

इस समय प्रकृति अपने ऐश्वर्य के कारण मतवाली सी दिखाई देती है।

उसके दर्शन से हृदय में मस्ती छा जाती है। उसका यह जो आकाश रूपी नीला आवरण है तो वह इस समय शिथिल दिखाई देता है। चाँदनी रात के कारण आकाश में वैसी स्पष्टता नहीं होती जैसी सूर्य की किरणों में होती है इसलिए उसे शिथिल कहा है। यहाँ विशेषण विपर्यय भी माना जा सकता है। यह रात मनुष्यों में शिथिलता और आलस्य भर देती है। इस आकाश पर चाँदनी मगल मय लाजा के रूप में बिखरी हुई। इसके द्वारा आगे के शुभ मिलन की ओर भी सकेत है।

नक्षत्र रूपी फूलों के समूह पूजा में निरन्तर बिखरते हैं। जिस प्रकार देवता की पूजा में उस पर फूल चढ़ाये जाते हैं, उसी प्रकार इस समय तारे बिखर रहे हैं। रात्रि के इस चरण में उसका सारा रूप सुनहला सा दिखाई देता है। इस सुनहले वातावरण हो नक्षत्र रूपी फूलों की पूजा बिखर रही है।

मनु लेश,

शब्दार्थ—निरखने लगे=देखने लगे। यामिनी=रात्रि। अगाध छाया=घनी छाया, चाँदनी। अपरूप=अपूर्व। मदिर कण सा=मस्ती के कणों के समान। स्वच्छ=निर्मल। सतत=निरन्तर। अनन्त=आकाश। शोभत=शोभा युक्त। चिनगारियाँ=वासना के ताप की चिनगारियाँ। उत्तेजना उद्भ्रान्त=मनु वासना की उत्तेजना के कारण पागल से हो गए थे। ज्वाला मधुर=वासना की मीठी आग। वक्ष=छाती। विकल=व्याकुल। वातचक्र=वायु का चक्र। आवेश=आवेग। लेश=तिल।

भावार्थ—जैसे-जैसे मनु रात्रि का मनोरम रूप देखने लगे वैसे ही वैसे उसकी अनन्त घनी चाँदनी का अपूर्व सौंदर्य और भी निखरने लगा। यह रात उन्हें और भी अधिक मादक दिखाई देने लगी।

निर्मल आकाश से निरन्तर मस्ती के कण से बरस रहे थे जिससे मनु की नस-नस में मस्ती का सचार हो रहा था। उस समय मनु के हृदय में मिलन की मधुर इच्छा का सगीत और भी मादकता से भर कर गूँज उठा। मिलन की मधुर इच्छा और भी तीव्र हो उठी।

मनु वासना के आवेग में जल रहे थे। उनका मुख लाल हो गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो उससे चिनगारियाँ छूट रही हैं। मनु वासना की उत्तेजना से पागल से हो गए। उनके हृदय में वासना की मधुर आग जल रही उनका हृदय व्याकुल और अशांत है।

जिस प्रकार वायु का चक्र मनुष्य को अपने भीतर बाँध लेता है, उसे उन्मथित करता है और अपने से बाहर नहीं जाने देता, उसी प्रकार वासना के आवेग ने मनु को बाँध लिया था। वे उस आवेग से मुक्त नहीं हो पा रहे थे और वह उन्हें पीड़ित कर रहा था। मनु के हृदय में अब धीरज बिल्कुल नहीं रहा।

कर मूल।

शब्दार्थ—कर पकड़ कर = हाथ पकड़कर। उन्मत्त से = पागल से। मधुरिमा मय = रस भरा। साज = शृ गार, शोभा। विस्मृति सिंधु = भूल का समुद्र। विकल = व्याकुल। अकूल = किनारे से दूर, मँझधार में। बन्म संगिनि = बचपन की सखी। अर्घ = पूजा का जल। मकरंद = पुष्प रस। सुषमा मूल = सौंदर्य का आधार।

भावार्थ—मनु पागल के समान श्रद्धा का हाथ पकड़कर उससे कहने लगे आज तो मैं तुममें कुछ और ही शोभा देख रहा हूँ। आज का तुम्हारा रूप सर्वथा विलक्षण है।

आज मुझे तुम में बिल्कुल वही शोभा दिखाई देती है जैसी कि मेरी एक बचपन की सखी की थी। किन्तु यह भूल भी कैसी है जो आज तक मैं तुमको पहचान नहीं पाया। जिस प्रकार नाव किनारे पर न आकर मँझधार में ही घूमती रहे उसी प्रकार मेरी स्मृति भी भूल के सागर में ऐसी विलीन हुई कि मैं बिल्कुल अचेत हो गया। मैं इसके विषय में सब कुछ भूल गया था। आशा सर्ग के अन्त में मनु ने अपनी किसी भूल की ओर संकेत भी किया है—

मैं भूल गया हूँ कुछ,
हाँ स्मरण नहीं होता क्या था।

प्रेम, वदना, भ्रान्ति या कि क्या ?

मन जिसमें सुख सोता था !" पृ० ४०

मनु श्रब श्रपनी बचपन की सखी का स्मरण करते हुए कहते हैं कि मेरी एक बचपन की सङ्गिनी थी। वह काम गोत्र में उत्पन्न हुई थी। उसका मधुर नाम श्रद्धा था। उसके सामीप्य से सदैव हमारा हृदय श्रानन्दित रहता था। उसके सान्निध्य से हमारे प्राण शीतल होकर दाह मुक्त हो जाते थे। वह संसार भर के सौंदर्य का श्राधार थी। श्रौर तो श्रौर फूल भी पुष्परस देकर उसकी पूजा किया करते थे।

प्रलय हार।

शब्दार्थ—मिलन का मोद = मिलन का हर्ष। ज्योत्सनाली = चाँदनी के समान। नीहार = कुहरा। प्रणय विधु = प्रेम का चन्द्रमा। नभ = श्राकाश। तारक-हार = तारों का हार।

भावार्थ—प्रलय हुई पर हम दोनों फिर भी जीवित बच गए। श्रौर हमें श्रभी इस सूने संसार में फिर मिलन का श्रानन्द मिला।

जिस प्रकार कुहरे को पार कर चाँदनी निकल श्राती है श्रौर उसका प्रेमी चाँद श्राकाश में तारों का हार लिए उसका स्वागत करता है उसी प्रकार तुम भी प्रलय से बचकर निकल श्राई हुश्रा, श्रौर इस एकांत में मैं तुम्हारे लिए प्रेम की माला लिए खड़ा हूँ। श्रद्धा चाँदनी के समान सुन्दर श्रौर पावन है। प्रलय कुहरे के समान है। मनु प्रेमी चन्द्रमा है। श्रौर प्रेम की माला ही तारों का हार है। उपमा-रूपक श्रलंकार।

कुटिल भ्रान्त।

शब्दार्थ—कुटिल कुंतल = घुंघराले बाल। काल माया जाल = समय की माया का जाल, घटनाश्रों का जाल। तमिस्रा जाल = अंधकार की माला। दुर्भेद्यतम = सघन श्रंधकार। चल सृष्टि = चंचल संसार। केन्द्रीभूत = पुञ्जीभूत। साधना की स्फूर्ति = साधना करने की उत्तेजना। सकल सुकुमारता = सम्पूर्ण मृदुलता। रम्य = सुन्दर। दिवाकर = सूर्य विकल = व्याकुल। विभ्रान्त = थका हुश्रा। शिशु = बालक। भ्रांत = पथ भ्रष्ट।

भावार्थ—तुम श्रपने घुंघराले बालों से समय के माया जाल की रचना

स्वीकार करने के पश्चात् भविष्य का जीवन कैसा होगा, भविष्य में सुख मिलेगा या दुख। साथ ही श्रद्धा के हृदय में मनु की प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर हर्ष भी हो रहा था। उसका हृदय आनन्द से विभोर हो उठा।

– प्रसाद जी भावों के संघर्ष का चित्रण करने में सिद्ध हस्त हैं। उन्होंने यहाँ श्रद्धा के हृदय के संघर्ष को बड़े संक्षेप में मूर्तिमान किया है।

आगे के छन्द में अनुभावों का बड़ा सरस सजीव चित्रण है।

गिर   प्रान ?

शब्दार्थ—भ्रू लता=भौहों की लता। ललित=सुन्दर। कर्ण=कान। कपोल= गाल। कदंब के फूल के पुलक की उपमा दी जाती है। चिरबन्धन=सदैव का बन्धन हृदय हेतु=हृदय के लिए।

भावार्थ—लज्जा के कारण श्रद्धा की पलकें झुकी हुई थीं। श्रद्धा नीचे मुख किए थी इसलिए उसकी नासिका की नोक भी झुकी हुई थी। उसकी भवें लता के समान कानों तक खिंची जा रहीं थीं। लज्जा उसके सुन्दर कानों और गालों को स्पर्श कर उन्हें लाल कर रही थी। उसकी गद् गद् वाणी शरीर के पुलकित होने के कारण कदंब के फूल के समान था।

हृदय की विवशता के बावजूद भी श्रद्धा बोली कि हे देव। क्या मेरा आज का समर्पण स्त्री जाति के लिए सदैव का बन्धन बन जाएगा ? क्या आज के पश्चात् स्त्रियों को सदैव पुरुषों के प्रति आत्म समर्पण करना पड़ेगा।

मैं बहुत दुबल हूँ। क्या मैं तुम्हारा यह दान ले सकूँगी विश्व का भोग करने के लिए मेरे प्राण भी व्याकुल हो रहे हैं। मेरा हृदय भी कामना से विवश हो रहा है किन्तु मैं क्या इस समर्पण के भार को सहन कर सकूँगी।

लज्जा

श्रद्धा का हृदय भी कामना से विकल हो उठा है। उसके हृदय में भी स्वाभाविक वासना जाग उठी है। किन्तु वह आगे नहीं बढ़ पाती अपना आशय स्पष्ट शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। उस पर लज्जा का नियंत्रण बना रहता है। इस सर्ग में लज्जा और श्रद्धा का वार्तालाप होता है। घटनाओं का अभाव है।

लज्जा का स्वरूप बड़ा अस्पष्ट तथा धूमिल है। श्रद्धा लज्जा से कहती है कि तुम्हारा व्यक्तित्व किसलय में छिपी हुई एक छोटी कली के समान है, अथवा गोधूलि की बेला में टिमटिमाते हुए दीपक की लौ के समान अस्पष्ट है। तुम बड़ी सुन्दरी हो किन्तु तुम लता के समान मुझे आलिंगन करने के लिए क्यों बढ़ती आ रही हो ? तुम मेरे हृदय को पुलकित कर देती हो, तुम मुझ पर एक हल्का पर्दा सा डाल रही हो जो बड़ा मधुर प्रतीत होता है। तुम्हारे प्रभाव में मैं मोम के समान लचकीली होरही हूँ, मैं अपने में ही सिमटी जा रही हूँ। मैं खुलकर हँस भी तो नहीं पाती। मेरे हृदय की कामना मनु के स्वागत को बढ़ती है किन्तु तुमने वह अवलम्ब ही हटा दिया है जिसका सहारा लेकर मैं आनन्द के शिखर पर पहुँचती। अब मुझे मनु को छूने में भी लज्जा का अनुभव होता है। मैं यदि उनसे कुछ कहना भी चाहती हूँ तो मेरे शब्द होठों पर आकर रुक जाते हैं। तुम कौन हो जिसने मेरे हृदय की सारी स्वतंत्रता को छीन कर मुझे परवश कर दिया है।

लज्जा की छाया जैसी अस्पष्ट मूर्ति श्रद्धा का उत्तर देती हुई गुनगुना उठी। वह बोली कि हे बालिका। तुम मुझे देखकर इतनी चकित मत हो जाओ। मैं तो केवल तुम्हें यह संकेत करने के लिए आई हूँ कि तुम अपने मन की चंचलता को दूर करो। मैं यह चाहती हूँ कि प्रेम में कोई भी कदम उठाने से पूर्व तुम अच्छी प्रकार से विचार कर लो। सौंदर्य के कारण हृदय नवीन

आशाओं से भरा रहता है। उसमें उषा की लालिमा सी मनोहरता होती है। वह हृदय का विभोर करके देखने वाले को मस्त कर देता है। पुरुष उसका स्वागत करते हैं। किन्तु सौंदय बड़ा चन्चल होता है। उसके आवेश में आकर मनुष्य भूलें कर जाता है। मैं उसी सौंदर्य की रक्षा किया करती हूं।

देवताओं की सृष्टि में मेरा नाम रति था। किन्तु अब मैं अपने पति को प्रलय में खो चुकी हूँ। अब मुझ में असफलता का विषाद और अतृप्त की पीर ही शेष बची है। अब मेरा ही नाम लज्जा है। मैं युवती को सदाचार दिखाती हूँ और यौवन के चंचल सौंदर्य को ठोकरों से बचाने का प्रयास करती हूं।

इससे प्रसाद जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि देवताओं की सभ्यता में लज्जा नाम की कोइ अनुभूति नहीं थी। देव पुरुष और देव बालाएँ स्वच्छन्द विहार किया करते थे। उन्होंने कभी लज्जा का अनुभव नहीं किया। उनका विधान ही ऐसा था।

लज्जा की बातें सुनकर श्रद्धा ने कहा कि ठीक मैं तुम्हें पहचान गई। किन्तु मुझे तुम यह तो बताओ कि आखिर मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? मैं इस समय बड़ी दुविधा में हूँ। बताओ मुझे कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए। आज मैं यह तो समझ गइ हूँ कि मैं स्त्री होने के कारण दुर्बल हूँ। यद्यपि मेरे पास सौंदर्य है। कोमलता है, किन्तु फिर भी मैं सब से हार गई हूँ। परन्तु पता नहीं क्यों मेरा मन भी इतना निर्बल होता जा रहा है? पता नहीं क्यों आँखों में बार बार आँसू उमड़ आते हैं? पता नहीं क्यों मैं मनु पर विश्वास कर उसे अपना सर्वस्व समर्पित करने में ही सन्तोष समझती हूँ? मैं इस समय व सहारा हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ? मैं बार बार अपने मन को सँभालती हूँ, धर्य धारण करती हूँ, किन्तु मुझमें कुछ भी शान्त विचार करने की शक्ति नहीं है। मेरे इस समर्पण की भावना में केवल बलिदान की भावना है। मैं यह चाहती हूँ कि मैं सब कुछ मनु के चरणों पर अर्पित कर दूँ, और बदले में कुछ भी ग्रहण न करूँ। मैं आराम नहीं चाहती।

लज्जा फिर श्रद्धा से कहती है कि तुम्हें यह नहीं कहना चाहिए। पहले

तुम अच्छी प्रकार से सोच विचार करलो। प्रेम करके तुमने अपने जीवन के सारे स्वप्नों को तो पहले ही समर्पित कर दिया है। तुम केवल श्रद्धा की मूर्ति हो। तुम सदैव विश्वास के सहारे अमृत के झरने के समान बहती रहो। किन्तु उस समर्पण में तुम को रोते हुए भी अपना सब कुछ पुरुष को समर्पित कर देना पड़ेगा। चाहे तुम्हें इस समर्पण में कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न उठानी पड़ें, तुम्हें सदैव मुस्कराता ही रहना पड़ेगा। तुम्हें हँसते हँसते सारे दुख-दर्द सहने होंगे।

इस सर्ग में भी प्रधान विशेषताएँ ये हैं—

१—श्रद्धा नारी मात्र का आदर्श प्रतीक है। यहाँ प्रसाद जी ने उसके रूप को उसी के द्वारा स्पष्ट कराया है। भारतीय स्त्री समर्पण करना ही जानती है। उसे अपने पति पर अगाध विश्वास होता है। पति चाहे उसके साथ कितनी ही कठोरता क्यों न करे वह अपनी पति को सन्तुष्ट करने के लिए सदैव प्रसन्न रहती है। ये सब बातें प्रसाद जी ने श्रद्धा के जीवन में दिखाई है।

२—लज्जा का मानवीकरण अत्यंत चामत्कारिक है। लज्जा की सूक्ष्मता को प्रसादजी ने स्थूल रूपों द्वारा बड़े सुन्दर ढग से अभिव्यक्त किया है। कल्पनाएँ ऐसी हैं जो लज्जा के स्वरूप की सूक्ष्मता को स्वाभाविकता के साथ व्यक्त करती हैं और उसका चित्र प्रस्तुत कर देती हैं।

३—प्रसाद जी ने इस सर्ग में जो सौंदर्य का चित्र खींचा है वह अपनी विलक्षणता में अभूत पूर्व है। ध्यान देने की बात यह है कि जिस प्रकार प्रसाद जी ने यौवन का चित्र वसंत के साथ साँगरूपक बाँधकर किया था, उसी प्रकार उन्होंने यौवन के वर्णन में बरसाती नदी का रूपक बाँधा है। किन्तु यहाँ बरसाती नदी का पक्ष उतना स्फुट नहीं है जितना कि यौवन के वर्णन में वसंत का पक्ष स्फुट है। किसी किसी छंद में सूक्ष्म सकेतों द्वारा ही बरसाती नदी के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

———

"कोमल ... दीपती-सी।

शब्दार्थ—किसलय=कोंपल। गोधूली=संध्या, वह समय जब पशु चरकर वापिस आते हैं। धूमिल पट=धुँधला वातावरण। दीपक के स्वर=दीपक की ज्योति। दिपती=चमकती-सी।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा से कह रही है। कोमल कोंपल के पीछे नन्हीं कलिका छिपती-सी दिखाई देती है, कभी वह प्रत्यक्ष होती है और कभी छिप सी जाती है। गोधूली के समय सारा वातावरण धुँधला हो जाता है। उस समय जो दीपक जलता है उसकी ज्योति धुँधली होती है। उसके दो कारण हैं। एक तो सूर्य का काफी प्रकाश होता है जो दीपक की चमक को मन्द कर देता है और दूसरे वातावरण धूल के उड़ने के कारण धुँधला होता है। लज्जा का आगमन भी ऐसा ही होता है। लज्जा छिपती हुई सी आती है। व्यक्ति को ज्ञात भी नहीं होता कि कब लज्जा आकर उसे दबा लेती है। इन कल्पनाओं से लज्जा के स्वरूप के धुँधलेपन के साथ साथ उसका सौंदर्य भी प्रकट होता है।

मंजुल ... भरे हुए।

शब्दार्थ—मंजुल=मधुर। उन्माद=मस्ती। सिहरना=रोमांचित होना। सुरभित=सुगंधित, मधुर। बुल्ला=बुलबुला। विभ्रम=सौन्दर्य। माया=रमणीयता अधरों पर उँगली धरे हुए=यहाँ प्रसादजी ने लज्जा को एक स्त्री के रूप में चित्रित किया है। स्त्रियाँ होठों पर उँगली धर कर चुप रहने का, किसी कार्य को करने से रुकने का संकेत करती हैं। इस संकेत में सौंदर्य भी है और कोमलता भी। इसका अर्थ होगा मना करती हुए। माधव का सरस कुतूहल=वसन्त जैसी रसीली जिज्ञासा। आँखों में पानी भरे हुए=आँख का पानी मुहावरा है जिसका अर्थ होता है आँख की लज्जा। लज्जा स्त्रियों का अनिवार्य आभूषण है।

भावार्थ—जब व्यक्ति मधुर स्वप्नों को भूल जाता है तो उन्हें स्मरण करते समय उसके हृदय में बड़ी मादकता होती है, बड़ी मस्ती होती है। सागर में सुन्दर बुलबुले उठते हैं। जब आकर्षक लहरें उठती हैं तो बुलबुले की शोभा बिखर जाती है, उसका अस्तित्व लहरों में विलीन हो जाता है।

लज्जा की रमणीयता भी वैसी ही है। उसमें भूले हुए स्वप्नों की सी मस्ती है और लहरों के द्वारा विलीन होने वाले बुलबुले के सौंदर्य का सा आकर्षण है। इन उदाहरणों द्वारा लज्जा के दो गुण स्पष्ट होते हैं। प्रथम लज्जा में मस्ती और मधुरिमा होती है। द्वितीय जिस प्रकार स्वप्नों का उन्माद क्षणिक है और बुलबुले की शोभा क्षणिक है उसी प्रकार लज्जा भी थोड़ी देर की होती है। माया रूपी रमणी होठों पर उँगली रखे हुए, श्रद्धा को समर्पण करने से रोकती हुई-सी बढ़ती आ रही है। उसे देखकर श्रद्धा के हृदय में बसत जैसी रसीली जिज्ञासा की भावना उत्पन्न होती है। उसकी आँखों में लज्जा का सौंदर्य भरा हुआ है।

नीरव पढ़ती।

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। निशीथ=रात्रि। आलिंगन का जादू पढ़ती-सी=मुझे अपने आलिंगन की मोहकता में डुबाती सी।

भावार्थ तुम कौन हो जो शान्त रात्रि में लता के समान बढ़ती आरही हो ? तुमने मुझे आलिंगन करने के लिए अपनी कोमल बाँहें फैला रखी हैं और तुम मुझे अपने आलिंगन की मोहकता में डुबाती-सी चली आ रही हो।

लताएँ रात्रि के समय ही बढ़ा करती हैं। और वे अत्यन्त धीरे धीरे बढ़ती हैं। लज्जा रूपी स्त्री भी बड़े धीरे धीरे आ रही है और श्रद्धा को अपने प्रभाव में लीन सी कर रही है।

किन हर में।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल के फूल=जादू के फूल। सुहागकण=मंगलमय पराग कण। राग भरे=प्रेम रूपी सुगन्धि से भरे हुए। मधु=रस। झुक जाती है मन की डाली=मन रूपी डाली लज्जा से झुक जाती है।

भावार्थ—किन जादू के फूलों से मंगलमय पराग कण संचित करके तुम अपना सिर नीचा किए हुए उनकी ऐसी माला बना रही हो जिनसे रस की धारा बह रही है।

फूल भावों के प्रतीक होते हैं। सुहागकण अनुभूति के प्रतीक हैं। मधु धार माधुर्य के प्रतीक हैं। श्रद्धा लज्जा से कहती है कि तुम किन मोहक भावों की मधुभूतियों की माला गूँथ रही हो ? इन मोहक अनुभूतियों के कारण

सारी प्रकृति एक अनुपम रस से भीगी जारही है, उसमें एक नवीन माधुरी का संचय हो रहा है।

लज्जा के उदय होने पर हृदय में विविध भाव उठते हैं जिनकी सरस अनुभूतियाँ बड़ी रमणीय होती हैं। श्रद्धा उन्हीं की ओर संकेत करती है।

लज्जा रूपी स्त्री सिर नीचा करके माला गूँथ रही है। सिर नीचा करना भी लज्जा की निशानी है।

तुम मेरे हृदय में पुलकित कदम्ब के फूलों की माला पहना देती हो। उस पुलक रूपी कदम्ब की माला पहनने से मेरा हृदय उसी प्रकार झुक जाता है जिस प्रकार डाली फल देने पर आती है तो झुकने लगती है।

लज्जा का उदय श्रद्धा को पुलकित कर देता है। पुलक की उपमा कदम्ब से दी जाती है। इसलिए श्रद्धा लज्जा से यह कहती है तुम मेरे हृदय में कदंब की माला पहना देती हो। लज्जा के उदय होने पर स्वभावतया मन की मचलती उमंगें शान्त हो जाती हैं, वह दब-सा जाता है।

फल भरता के डर से सन्तान के डर की ओर संकेत है। लज्जा के उदय होने पर ही यह और भी भय की बात हो जाती है कि यदि इस प्रेम के मिलन के पश्चात् सन्तान का जन्म हुआ तो फिर क्या होगा?

वरदान पाती हूँ।

शब्दार्थ—सदृश=समान। यह अंचल=यह पर्दा, अवगुण्ठन। सौरभ= सुगन्धि। माधुर्य—प्रतीक योजना। परिहास गीत=मजाक के गीत।

भावार्थ—तुम वरदान के समान ही सुख देने वाला नीली किरणों का बुना हुआ एक बड़ा झीना अवगुण्ठन मुझ पर डाल रही हो जो सुगन्धि के कारण अत्यन्त मधुर है।

लज्जा मानो एक अत्यन्त झीने पर्दे से सारे शरीर को ढक देती है। नीला रंग प्रेम का माना जाता है। नीली किरणों से बने हुए अंचल का अभिप्राय है प्रेम का अवगुण्ठन। लज्जा की अनुभूति अत्यन्त मधुर होती है इसलिए इस अंचल को सुगन्धित कहा है।

लज्जा का पर्दा वरदान के समान ही होता है क्योंकि वह आवेश को कम कर व्यक्ति को सोचने-समझने का अवसर देता है। इससे वह बाईं भी

अनुचित कार्य नहीं कर पाता। आवेश के कार्य को रोकने के कारण ही लज्जा के पर्दे को वरदान के समान माना गया है।

मेरे सारे अङ्ग मोम के समान मृदुल बने जा रहे हैं। मैं स्वयं इतनी कोमल हो गई हूँ कि उसके कारण बल खा रही हूँ। मैं अपने आप में ही सिमटी-सी जारही हूँ। इस निमग्नता के कारण मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई मेरा मजाक उड़ा रहा है—यह कह रहा है कि तुम कितनी दुर्बल हो!

लज्जा के उदय होने पर शरीर स्वभावतया सिमिट-सा जाता है। फिर खुलकर चलना असंभव सा हो जाता है।

स्मित रहा।

शब्दार्थ—स्मित=मुस्कान। तरल हँसी=जोर की हँसी। बाँकपना=विलक्षण सौंदर्य। सपनों=कल्पनाओं। कलरव का संसार=मधुर तीव्र संगीत। आँख जब खोल रहा=जब जन्म ले रहा है। मेरे—खोल रहा=जब मेरी कल्पनाओं में मधुर और तीव्र संगीत आरम्भ हो रहा है, जब मेरे स्वप्न उद्वेलित हो रहे हैं। अनुराग=प्रेम। समीरों=वायु के झोंकों। इतराता-सा=गर्वित-सा होकर।

भावार्थ—जब मैं जोर से हँसने का प्रयत्न करती हूँ तो तुम्हारे प्रभाव के कारण यह मुस्कान ही बनकर रह जाती है। इससे मेरी आँखों में विलक्षण सौंदर्य का उदय होता है। मेरे लिए आज प्रत्यक्ष संसार भी स्वप्न के समान दिखाई दे रहा है।

लज्जा के कारण भला खुल कर हँस भी नहीं पाती। लज्जा के उदय होने पर सौंदर्य और भी उद्दीप्त हो जाता है।

जब मेरे स्वप्नों में मधुर और तीव्र संगीत मुखरित हो रहा था—मेरी कल्पनाओं में अधिक उत्तेजना और शक्ति आ रही थी, जब मेरा प्रेम वायु के झौंकों पर गर्व में झूमता हुआ-सा घूम रहा था—मेरा प्रेम प्रकृति में भी व्यक्त हो रहा था।

अभिलाषा बढ़ती।

शब्दार्थ—अभिलाषा=कामना। बल-वैभव=शक्ति और सौन्दर्य। सत्कृत करती=सत्कार करती। दुरागत=दूर से आया हुआ, मनु। किरनों का रज्जु=आशाओं की रस्सी। अवलम्बन=सहारा। रस का निर्झर=आनन्द का झरना।

आनन्द शिखर=आनन्द की चोटी—समागम का सुख जीवन का सबसे अधिक गम्भीर सुख माना जाता है इसीलिए उसे आनन्द की चोटी कहा है।

भावार्थ—जब मेरी कामना यौवन के पूरे वेग के साथ समागम के सुख का स्वीकार करने के लिए उद्वेलित करती है और जब यह मुझे अपने जीवन भर की शक्ति और सौंदर्य से दूर से आए हुए मनु का सत्कार करने की प्रेरणा देती है—जब कामना मुझे बारबार मनु से समागम करने के लिए प्रवृत्त करती है,

तो उसी समय तुमने किरणों के समान उज्ज्वल आशाओं की रस्सी खींच ली। मैं तो आशाओं की रस्सी के सहारे से ही प्रेम की मधुरिमा के झरने में धँसकर समागम के तीव्रतम आनन्द की चोटी पर पहुँचने का प्रयास कर रही थी किन्तु अब तुमने मेरी आशाएँ ही छीन लीं, तो मैं अब किस प्रकार आगे बढ़ सकती हूँ।

लज्जा के आगमन से पूर्व श्रद्धा ने आवेश में आकर विविध आशाओं का सहारा ढूँढ लिया था। किन्तु लज्जा के उदय होने पर आवेश शांत होगया। विचार जाग उठा। केवल आशाओं का सहारा निर्बल ज्ञात हुआ। आशाएँ सदैव पूरी तो नहीं होतीं, वे तो कल्पित हैं। इस विचार से श्रद्धा को आशाओं का भी सहारा न रहा।

'रश—बढ़ती।' इन दो पंक्तियों का अर्थ ठीक से समझने के लिए एक दृश्य की कल्पना करनी पड़ेगी। सामने एक पर्वत है, उसके तल में एक झरना है। पर्वत की चोटी समागम के आनन्द की प्रतीक है और झरना प्रेम की मधुरिमा का प्रतीक है। यदि कोई पर्वत की चोटी के ऊपर पहुँचना चाहे तो उसे पहले तल के झरने में प्रवेश करना पड़ेगा और फिर किसी रस्सी के सहारे से ही पर्वत की चोटी पर चढ़ सकता है। झरने में प्रवेश करने के लिए भी उसे वह रस्सी का सहारा होना चाहिए। यह रस्सी आशा की प्रतीक है। उस व्यक्ति के समान प्रेमी भी आशा का सहारा लेकर ही प्रेम मार्ग में प्रवृत्त होता है।

छूने पड़ी रहीं;

शब्दार्थ—कलरव=मधुर ध्वनि। परिहास भरी गूँज=मजाक की बातें

रोमाली=रोम । बरजती=मना करती हुई ।

भावार्थ—अब मुझे मनु को छूने में भी हिचक होती है । मैं जब उनकी ओर देखने का प्रयास करती हूँ तो मेरी पलकें झुक जाती हैं और मैं विवश-सी धरती की ओर देखने लगती हूँ । मनु से मधुर मज़ाक करने की इच्छा हृदय में उठती है किन्तु मैं मनु से कुछ कह नहीं पाती । वाणी मेरे होठों पर आकर रुक जाती है ।

पहले के संग पढ़ने से ज्ञात होता है कि पहले श्रद्धा स्वच्छन्द होकर मनु का स्पर्श करती थी, उनके शरीर को सहलाती थी उनका हाथ पकड़कर प्रकृति के मनोरम दृश्य देखती थी, उनकी ओर अपलक नयनों से देखती थी, उनसे हँस-हँसकर बातें करती थी, उनसे मधुर मज़ाक करती थी किन्तु अब लज्जा के कारण वह कुछ भी करने में स्वतन्त्र नहीं है । मनु के सम्मुख आते ही वह लज्जा से नतमस्तक हो जाती है ।

मेरे रोम पुलकित हो जाते हैं और मुझे संकेत कर-कर के प्रेम में बढ़ाने से रोक देती है । मेरी भौंहें भाषा के समान ही मेरे हृदय के भावों को व्यक्त करती हुई काली रेखा के समान लम्बायमान होकर भ्रम में पड़ी रहती हैं । भौंहें हृदय के प्रेम मय भावों को अभिव्यक्त तो करती हैं किन्तु मेरे हृदय में दुविधा है, लज्जा के कारण अनेक सदेह उत्पन्न हो रहे हैं, इसीलिए भौंहों को काली रेखा के समान भ्रम में पड़ा हुआ कहा गया है । इन शब्दों से हृदय की दुविधा की ही व्यञ्जना होती है । यदि हृदय में दुविधा नहीं होती तो भौंहें मिलन मनु को मिलन का निमन्त्रण देतीं हृदय में लज्जा के कारण हलचल है इसलिए भौंहों में भी सब कोई निश्चित भाव व्यक्त नहीं होता ।

तुम कौन ... छीन रही !"

शब्दार्थ—हृदय की परवशता=हृदय को परवश कर देनेवाली । स्वच्छंद= स्वतंत्र । सुमन = भाव ।

भावार्थ—तुम कौन हो जो मेरे हृदय को परवश किए दे रही हो ? तुम मेरी सारी स्वतंत्रता को छीन रही हो । मेरे जीवन रूप वन में जो भाव के मधुर फूल खिले हैं, तुम उन सब को चुन रही हो । लज्जा के उदय होने पर प्रेम के आवेश भरे भाव सब शान्त हो जाते हैं ।

संध्या .... देती-सी ।

शब्दार्थ—आश्रय=सहारा । छाया प्रतिमा=छाया की मूर्ति ।

भावार्थ—श्रद्धा की बातें सुनकर उस संध्या की लालिमा में हँस उठी । जिस प्रकार छाया शक्ति का आधार लिए रहती है उसी प्रकार यह लज्जा की धुँधली मूर्ति श्रद्धा का ही सहारा लेती हुई सी श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देती हुई बोल उठी ।

श्रद्धा का स्वरूप धुँधला है यह उपर्युक्त वर्णन के प्रथम छंद में ही बताया जा चुका है । हाँ उसे स्पष्ट रूप से छाया प्रतिमा कह दिया गया है लज्जा हृदय में उदय होती है । यहाँ लज्जा को स्त्री के रूप में चित्रित किया है फिर भी उसका आधार तो श्रद्धा ही है ।

"इतना .... करो ।

शब्दार्थ—चमत्कृत=चकित । उपकार कर=भला सोचो शान्त करो ।

भावार्थ—लज्जा श्रद्धा से बोली कि हे बाला तुम मुझे देख कर इतनी चकित मत हो जाओ । पहले तुम्हें अपने हृदय को शान्त करना चाहिए । इस आवेश को दबाना चाहिए जो तुम्हें समर्पण के लिए विवश कर रहा है । मैं तो हृदय की एक ऐसी पकड़ हूँ जो यह कहती हूँ कि कोई भी निश्चित कदम बढ़ाने से पूर्व तुम्हें सब बातों का अच्छी प्रकार विचार कर लेना चाहिए । मैं प्रेम में उतावले हृदय को शान्त कर व्यक्ति को सोचने की प्रेरणा देती है ।

इससे आगे लज्जा सौंदर्य का वर्णन करती है । इस वर्णन में पहाड़ी झरने का वर्णन अप्रस्तुत रूप से आया है । सौंदर्य की तरंगों में भी पहाड़ी नाले का-सा तीव्र वेग होता है ।

अम्बर .... हरियाली ।

शब्दार्थ—अम्बरचुम्बी=आकाश को चूमने वाले, बहुत ऊँचे । हिमशृङ्ग=बर्फीली चोटियाँ । कलरव=मधुर ध्वनि । कोलाहल=शोर । विद्युत्=बिजली । प्राणमयी=शक्तिमान, स्फूर्ति प्रदान करने वाली । उन्माद=मस्ती । मंगल

कुकुम=कल्याणकारी केसर। श्री=शोभा। भोला सुहाग=सरल सौभाग्य—विशेषण विपर्यय।

भावार्थ—पहाड़ी झरने का पक्ष—पहाड़ी झरना आकाश तक पहुँचने वाली बर्फीली चोटियों से बहता हुआ चला आता है। उसकी गति में एक मधुर ध्वनि होती है और साथ ही चट्टानों से टकराने तथा ऊँचाई से गिरने के कारण उसमें बड़ा शोर भी रहता है। वह बिजली के समान चमत्कार होता है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसमें बिजली की शक्तिमान धारा मस्ती से बह रही है।

सौंदर्य का पक्ष—यौवन में सौंदर्य के फूटने पर व्यक्ति के हृदय में विविध ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ जगने लगती हैं। उन कल्पनाओं से हृदय में मधुर संगीत-सी मधुरिमा भर जाती है, मन में मस्ती छा जाती है और स्फूर्ति की वेगवती धारा बहने लगती है। यौवन में एक नवीन तीव्र उत्साह का संचार होता है।

पहाड़ी झरने का पक्ष—ऊषा की लालिमा जब झरने में प्रतिबिम्बित होती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो उसमें मंगलमय केसर की कांति बिखर गई है। उस झरने के किनारों की हरियाली ही उस का मधुर सौभाग्य है। झरने के किनारे की हरियाली उसे और भी शोभा प्रदान करती है।

सौंदर्य का पक्ष—सौंदर्य की शोभा केसर की कांति के समान रमणीय और कल्याणमय होती है। सौंदर्य की लालिमा ऊषा की लालिमा का निखरा हुआ रूप ही है—उसमें ऊषा से भी अधिक उज्ज्वल लावण्य होता है। उस सौंदर्य में ऐसा माधुर्य होता है जिसमें सरल सौभाग्य छलकता-सा दिखाई देता है। यौवन के उदय होते ही स्त्रियों में सरलता आजाती है, उनमें सौभाग्य के दर्शन होने लगते हैं और उनमें माधुर्य भर जाता है।

हो उलता-सा।

शब्दार्थ—नयनों का कल्याण = नयनों को तृप्त करने वाला। सुमन = फूल। वासती=वसंत ऋतु। वन वैभव=वन की शोभा, सुषमा। पंचम स्वर = सात स्वरों में पाँचवा स्वर जो कोमल तथा मधुर माना जाता है। पिक = कोयल। मूर्च्छना=कई स्वरों को अविलम्ब एक ही गति में बजाने से जो मधुर

ध्वनि उत्पन्न होती है उसे मूर्च्छना कहते हैं—मधुर स्वर-लहरी। रमणीय = कमनीय।

भावार्थ—पहाड़ी झरने का पक्ष—पहाड़ी झरने की शोभा को देखकर नेत्र तृप्त हो जाते हैं, एक दिव्य अनुभूति से भर जाते हैं। वह पुष्प के समान प्रफुल्लित दिखाई देता है। उसकी मधुर ध्वनि वसंत में सुशोभित वन के भीतर बोलने वाली कोयल के समान मीठी है।

सौंदर्य का पक्ष—सौंदर्य के दर्शन कर नेत्रों में माधुर्य भर जाता है, हृदय तल्लीन हो जाता है। उसके दर्शन से मानो हृदय में हर्ष का फूल खिल उठता है, हृदय हर्ष से भर उठता है। तरुणियों के मधुर कण्ठ-स्वर वसंत में खिले वन के भीतर कूकने वाली कोयल के मधुर पंचम स्वर के समान रसीला होता है। सौंदर्य के पक्ष में वासंती वन-वैभव का अर्थ अबाध रसमय सुषमा से है।

पहाड़ी झरने का पक्ष—संगीत लहरी के समान मचलते हुए झरने को देखकर नस-नस में स्फूर्ति का संचार हो जाता है। उसका दृश्य आँखों में प्रतिबिम्बित होकर रमणीयता की प्रतिमा बन जाता है। हृदय में वह सुन्दर दृश्य सदैव के लिए अंकित हो जाता है।

सौंदर्य का पक्ष—संगीत-लहरी के समान आवेश भरा सौन्दर्य नस-नस में नवीन शक्ति का संचार कर देता है। तरुण और तरुणियाँ अपने भीतर एक अपूर्व आवेश और शक्ति का अनुभव करते हैं। सौंदर्य आँखों के साँचे में ढल कर उन्हें कमनीयता से भर देता है। सौंदर्य के उल्लसित होने पर नयनों में अनुराग और सौंदर्य भर जाता है।

नयनों   निस्सरता हो।

शब्दार्थ—नीलम की घाटी=नीली पुतली। रसघन=आनन्द का बादल, जल का बादल। कौंध=चमक। अन्तर की शीतलता=हृदय का उद्योग। हिल्लोल=रूप। ऋतुपति=वसंत। गोधूलि=वह समय जब पशु चर कर लौटते हैं। गोधूलि की सी ममता=उस समय लौटती हुई गायों को अपने बछड़ों का स्मरण होता है और वे ममता से भरी होती हैं। मध्याह्न = दुपहरी, अपार तेज।

भावार्थ—पहाड़ी झरने का पक्ष—पहाड़ों की नीली घाटी पहाड़ी

झरने के जल से बादल से भर जाती है। जल प्रपात से उठती हुई फुहार बादल के समान दिखाई देती है। उस झरने में ऐसी उज्ज्वल चमक होती है जिसे देखकर हृदय की तृप्ति भी शीतल हो जाती है, हृदय में असीम शीतलता भर जाती है।

सौंदर्य का पक्ष—सौंदर्य के उदय होने पर नीलम की धारी जैसी पुतलियाँ आनन्द के बादल से भर जाती हैं। नयनों से रस छलका पड़ता है। सौंदर्य में ऐसा तेज होता है कि जिसे देखकर हृदय पूर्णतया तृप्त हो जाता है।

पहाड़ी झरने का पक्ष—पहाड़ी झरने में वसंत जैसा रूप होता है। यह सभी को शीतल करता है, सब के क्षोम को शान्त करता है इसलिए उसमें गोधूलि जैसा सरल स्नेह भी होता है। उसकी उत्पत्ति में प्रातःकाल जैसा माधुर्य और उल्लास होता है। दुपहरी का सूर्य उसमें प्रतिबिम्बित होकर और ही शोभा देता है।

सौंदर्य का पक्ष—सौंदर्य में वसंत जैसा अपार आनन्द उमड़ आता है। उसमें सरल स्नेह होता है। उसका आगमन ऊषाकाल के समान मनोहर और मधुर होता है। उसमें अपार तेज भरा होता है। तरुण और तरुणियाँ आनन्द से विभोर रहते हैं, उनका हृदय प्रेम से तरंगित रहता है, उनके यौवन के आरम्भ में बड़ा माधुर्य होता है और उनमें अपार शक्ति होती है।

चन्दन में।

हो

शब्दार्थ—प्राची क भर से = पूर्व दिशा से। नवल चन्द्रिका = नवीन चाँदनी। बिछले=फिसले। मानस की लहर=तालाब की लहरें, हृदय के भाव —प्रतीक। अभिनन्दन=स्वागत। मकरन्द=पुष्परस। कुकुम=केसर।

भावार्थ—पहाड़ी झरने का पक्ष—जब अचानक ही पूर्व दिशा से चाँद निकल आता है और उसकी चाँदनी सर्वत्र बिखर जाती है, तब पहाड़ी झरने की लहरें उसकी मधुर किरणों से कांतिमान हो उठती हैं।

सौंदर्य का पक्ष—यौवन के सौंदर्य की शोभा पूर्व दिशा से उदित होने वाले चन्द्र की शोभा के समान ही शीतल और आकर्षक होती है। जब सौंदर्य की शोभा हृदय को आकर्षित करती है उस समय हृदय में मधुर भावों की उठने लगती हैं।

चाँदनी का सहसा निकल आना कहा गया है क्योंकि सौन्दर्य का आगमन अचानक ही होता है। चकित कहा क्योंकि सौंदर्य देखने वाले को चकित कर देता है।

पहाड़ी झरने का पक्ष—पहाड़ी झरने के स्वागत में फूलों की पंखड़ियाँ बिखर जाती हैं। उसके किनारे पर लगे पौधों से फूल झर झर कर उसमें गिर पड़ते हैं इसलिए कवि हेतूत्प्रेक्षा करता है कि वे उस झरने का स्वागत करते हैं। फूलों की वे पखड़ियाँ स्वागत रूपी कुमकुम और चन्दन में अपना रस मिला देती है और स्वागत को और भी मधुर बना देती है।

सौंदर्य का पक्ष—सौंदर्य का स्वागत करने के लिए फूलों की पंखड़ियाँ बिखर जाती हैं। वे मानो स्वागत रूपी कुमकुम और चन्दन में अपनी सुगन्धि मिला रही हैं

यहाँ व्यंग्य रूप से सौंदर्य का वर्णन वसन्त के समान किया गया है। वसंत के आते ही फूल खिलने लगते हैं और उनकी सुगन्धि सर्वत्र फैलकर शीतल और राग-रंजित वातावरण को और भी माधुर्य प्रदान करती हैं।

कोमल   मनाते हों।

शब्दार्थ—किसलय=कोंपल। मर्मर रव=मर्मर ध्वनि, जब पत्ते वायु के झोंकों में हिलते हैं तब मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है।

भावार्थ—पहाड़ी झरने का पक्ष—कोमल कोंपलें अपनी मधुर मर्मर ध्वनि से झरने का स्वागत करती हैं, उसके विजय के गीत गाती हैं। उस झरने को देखकर मनुष्य अपने सुख और दुःख भूल जाता है और उसका हृदय अलौकिक आनन्द से भर जाता है। हेतूत्प्रेक्षा अलंकार।

सौंदय का पक्ष—कोमल कोंपलें भी सौंदर्य की विजय के गीत गाते हैं। यहाँ भी वसंत के आगमन का दृश्य व्यंग्य है। वसंत के आने पर कोंपलें फूटती हैं और उसकी विजय का संगीत छेड़ रही हैं। इस सौंदर्य में दृश्य के सुख और दुःख मिलकर आनन्द को बढ़ाते हैं। यौवन में विरह एवं मान आदि का दुःख भी सुख का सृजन करता है।

आगे के छन्दों में केवल सौंदर्य का ही वर्णन है। पहाड़ी झरने का व्यंग्य सांगरूपक यहीं समाप्त हो जाता है।

उज्ज्वल   समझाती ।

शब्दार्थ—उज्ज्वल वरदान=निर्मल वरदान । अभिलाषा=कामना, इच्छा सपने=कल्पनाएँ । चपल=चंचल । धात्री=धायी । गौर महिमा=मैं सौंदर्य को अपने गौरव और महत्व का ज्ञान कराती हूँ ।

भावार्थ—सौंदर्य चेतना का निमल वरदान है । सौंदर्य में सुख है, कमनीयता है, इसीलिए उसे चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा गया है । उसमें अनन्त कामना से उत्पन्न मधुर कल्पनाएँ उदित हुआ करती हैं । यौवन में हृदय में विविध इच्छाओं और मधुर स्वप्नों का संचार होने लगता है ।

मैं उसी चंचल सौंदर्य की धायी हूँ और मैं उसे अपने गौरव तथा महत्व का ज्ञान कराती हूँ । भविष्य में जो विपत्तियाँ आने वाली हैं मैं उनका भी ज्ञान उसे कराती हूँ ।

धायी बच्चे की रखवाली करती है । यदि धायी न हो तो बालक अपनी चंचलता में अपने आप को ही चोट पहुँचा लेता है । धायी बालक उचित और सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है, उसे अच्छी आदतें सिखाती है और उसे विपत्तियों से बचाने का प्रयास करती है । उसी प्रकार लज्जा भी यौवन के सौंदर्य की चंचलता को दूर कर उसे सोचने पर विवश करती है । यदि लज्जा न हो तो तरुण एवं तरुणियाँ यौवन के आवेश में अनेक भूलें कर बैठें जिसके कारण उन्हें बाद में दुखी होना पड़े ।

लज्जा यह कहती है कि मैं आने वाली विपत्तियों को धीरे से समझा देती हूँ । लज्जा किसी भी तरुणी को प्रेम से विमुख होने के लिए विवश नहीं कर सकती । उसका कार्य तो समझा भर देना है । कोई माने या न माने । यह तो सभी को समझाती ही है । इस पर भी अनेक तरुणियाँ आवेश में किए गए कार्य के लिए पीछे पछताया करती हैं ।

मैं देव   दलिता सी ।

शब्दार्थ—देव-सृष्टि=देव जाति । पंचबाण=कामदेव । आवर्जनामूर्ति = निषेध की प्रतिमा । अवशिष्ट=शेष । लीला विलास=काम-क्रीड़ा । स्वेद-भरी= थकान भरी । अवसादमयी=दुखमयी । श्रमदलिता-सी=काम-क्रीड़ा के परिश्रम से कुचली हुई सी ।

भावार्थ—मैं देव जाति की रति-रानी हूँ। मनु के स्वप्न में काम ने भी अपने तथा रति के अस्तित्व और कार्य का वर्णन किया है। वही बात यहाँ रति भी कहती थी। वह आज कहती है कि मैं अब अपने पति कामदेव से वंचित हो गई हूँ। वह अनङ्ग हो गया है इसीलिए अब मैं अपनी अतृप्ति के समान ही वंचित होकर निषेध की दीन प्रतिमा बन गई हूँ।

देव सृष्टि में रति देव बालाओं के हृदय में कामना जगाया करती थी। किन्तु उनके स्वच्छंद विलास में भी रति तृप्त नहीं हुई। काम ने भी यही कहा था कि 'असन्तुष्ट क्रोध से मैं न हुआ।" जिस प्रकार काम अपने किए पर पछताता है और मनु को उपदेश देता है उसी प्रकार रति भी अपने किए पर असन्तुष्ट है और रति को उपदेश देती है। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि रति ने यह अनुभव कर लिया है कि केवल वासना की पूर्ति से कोई कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसलिए वह अब निषेध की मूर्ति बन गई है। श्रद्धा को समर्पण करने से पूर्व सोचने के लिए कहती है।

आगे लज्जा कहती है कि मैं तो अब अपनी अतीत असफलता के समान अनुभव में ही शेष बनी हूँ। स्वच्छन्द विलास से भी वह तृप्त नहीं हुई इसलिए वह अपने को असफलता भी कहती है। और इस असफलता के कारण ही वह प्रेम में उमड़ती वासना को शान्त करने का प्रयास करती है। वह कहती है कि जिस प्रकार काम क्रीड़ा के पश्चात हृदय थकावट के कारण शिथिल हो जाता है और परिश्रम के कारण दुख से भर जाता है, मेरी दशा भी वैसी ही निराशा और थकावट से भरी हुई है।

मैं रति ... ... जगती।

शब्दार्थ—प्रतिकृति = प्रतिमूर्ति। शालीनता = संयम। अवनत सी = झुकी सी। कुंचित अलकों सी = घुँघराले केशों सी। मन की मरोर = मन की बाधा।

भावार्थ—मैं रति की प्रतिमूर्ति लज्जा हूँ। मैं तरुणियों को संयम सिखाती हूँ। उनके आवेग का समन कर उन्हें उचित मार्ग दिखाती हूँ। और मैं मतवाली सुन्दरता के पाँव में नूपुर के समान लिपट कर उसे मनाने का प्रयास करती हूँ। सुन्दरता एक मतवाली रमणी के समान है जो स्वच्छन्द विहार

करती है। यदि उसके पाँव में नूपुर होंगे तो उसके चलने में ध्वनि होगी। नूपुरों का ध्वनि उसके मिलन के मार्ग में बाधा भी बन जायगी। उसी प्रकार लज्जा भी सुन्दरता के पाँव में लिपट कर उसे संयम सिखाती है।

मैं सरल गालों की लाली बन जाती हूँ। मेरे उदय होने पर गाल लाल हो जाते हैं। मैं तरुणियों की आँखों को सुरमे के समान ही लावण्य प्रदान करती हूँ। मेरे उदय होने पर नयनों में अधिक लावण्य आ जाता है। मैं घुँघराले केशों के समान ही मन की मृदुल जंजीर बन जाती हूँ। हृदय के आवेश को रोकती हूँ।

"चंचल लाली।"

शब्दार्थ—किशोर=बालक।

भावार्थ—मैं सौंदर्य के इस चंचल बालक की रखवाली किया करती हूँ। उसे भविष्य की विपत्तियों से बचाने का प्रयास करती हूँ। मैं हृदय की रस मसलन के समान हूँ जो कानों की लाली बनती हूँ। यदि कान मसले जाते हैं तो वे लाल हो जाते हैं। गलती करने पर ही कान मसले जाते हैं। लज्जा का उदय भी गलती करने पर ही होता है। हृदय में अनियंत्रित आवेग का उदय होना ही गलती है जिसका दंड लज्जा कानों को मसलकर लाल कर के देती है।

अब श्रद्धा लज्जा से फिर पूछती है—

"हाँ हारी हूँ।"

शब्दार्थ—निविड़ निशा=घोर अंधकार मय रात। संसृति=संसार। आलोक मयी रेखा=प्रकाश की किरण। अवयव=अंग।

भावार्थ—श्रद्धा बोली कि ठीक है मैं तुम्हारी सब बातें समझ गई हूँ। किन्तु क्या तुम मुझे यह बता सकती हो कि अब मेरे जीवन का रास्ता कौन सा है? क्या मैं मनु के प्रति आत्म समर्पण करूँ या नहीं? मैं इस समय अपने भविष्य के विषय में कुछ नहीं जानती। तुम बताओ कि इस अज्ञान की रात में मेरे लिए प्रकाश की किरण क्या है? मैं किस प्रकार इस अज्ञान और

भावार्थ—मैं देव जाति की रति-रानी हूँ। मनु के स्वप्न में काम ने भी अपने तथा रति के अस्तित्व और कार्य का वर्णन किया है। वही बात यहाँ रति भी कहती थी। वह अब कहती है कि मैं अब अपने पति कामदेव से वंचित हो गई हूँ। वह अनङ्ग हो गया है इसीलिए अब मैं अपनी अतृप्ति के समान ही वंचित होकर निषेध की दीन प्रतिमा बन गई हूँ।

देव सृष्टि में रति देव बालाओं के हृदय में कामना जगाया करती थी। किन्तु उनके स्वच्छन्द विलास में भी रति तृप्त नहीं हुई। काम ने भी यही कहा था कि 'सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ।" जिस प्रकार काम अपने किए पर पछताता है और मनु को उपदेश देता है उसी प्रकार रति भी अपने किए पर असन्तुष्ट है और रति को उपदेश देती है। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि रति ने यह अनुभव कर लिया है कि केवल वासना की पूर्ति से कोई कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसलिए वह अब निषेध की मूर्ति बन गई है। श्रद्धा को समर्पण करने से पूर्व सोचने के लिए कहती है।

आगे लज्जा कहती है कि मैं तो अब अपनी अतीत असफलता के समान अनुभव में ही शेष बची हूँ। स्वच्छन्द विलास से भी वह तृप्त नहीं हुई इसलिए वह अपने को असफलता भी कहती है। और इस असफलता के कारण ही वह प्रेम में उमड़ती वासना को शान्त करने का प्रयास करती है। वह कहती है कि जिस प्रकार काम क्रीड़ा के पश्चात हृदय थकावट के कारण शिथिल हो जाता है और परिश्रम के कारण सुख से भर जाता है, मेरी दशा भी वैसी ही निराशा और थकावट से भरी हुई है।

मैं रति .... लगती।

शब्दार्थ—प्रतिकृति = प्रतिमूर्ति। शालीनता = संयम। अंजन सी = सुरमे सी। कुंचित अलकों सी = घुँघराले केशों सी। मन की मरोर = मन की बाधा।

भावार्थ—मैं रति की प्रतिमूर्ति लज्जा हूँ। मैं तरुणियों को संयम सिखाती हूँ। उनके आवेग का संयत कर उन्हें उचित मार्ग दिखाती हूँ। और मैं मतवाली सुन्दरता के पाँव में नूपुर के समान लिपट कर उसे मनाने का प्रयास करती हूँ। सुन्दरता एक मतवाली रमणी के समान है जो स्वच्छन्द विहार

करती है। यदि उसके पाँव में नूपुर होंगे तो उसके चलने में ध्वनि होगी। नूपुरों की ध्वनि उसके मिलन के मार्ग में बाधा भी बन जाएगी। उसी प्रकार लज्जा भी सुन्दरता के पाँव में लिपट कर उसे संयम सिखाती है।

मैं सरल गालों की लाली बन जाती हूँ। मेरे उदय होने पर गाल लाल हो जाते हैं। मैं तरुणियों की आँखों को सुरमे के समान ही लावण्य प्रदान करती हूँ। मेरे उदय होने पर नयनों में अधिक लावण्य आ जाता है। मैं घुँघराले केशों के समान ही मन की मृदुल जंजीर बन जाती हूँ। हृदय के आवेश को रोकती हूँ।

"चंचल ... लाली।"

शब्दार्थ—किशोर=बालक।

भावार्थ—मैं सौंदर्य के इस चंचल बालक की रखवाली किया करती हूँ। उसे भविष्य की विपत्तियों से बचाने का प्रयास करती हूँ। मैं हृदय की उस मसलन के समान हूँ जो कानों की लाली बनती हूँ। यदि कान मसले जाते हैं तो वे लाल हो जाते हैं। गलती करने पर ही कान मसले जाते हैं। लज्जा का उदय भी गलती करने पर ही होता है। हृदय में अनियन्त्रित आवेग का उदय होना ही गलती है जिसका दंड लज्जा कानों को मसलकर लाल कर के देती है।

अब श्रद्धा लज्जा से फिर पूछती है—

"हाँ ... हारी हूँ।

शब्दार्थ—निविड़ निशा=घोर अंधकार मय रात। संसृति=संसार। आलोक मयी रेखा=प्रकाश की किरण। अवयव=अंग।

भावार्थ—श्रद्धा बोली कि ठीक है मैं तुम्हारी सब बातें समझ गई हूँ। किन्तु क्या तुम मुझे यह बता सकती हो कि अब मेरे जीवन का रास्ता कौन सा है? क्या मैं मनु के प्रति आत्म समर्पण करूँ या नहीं? मैं इस समय अपने भविष्य के विषय में कुछ नहीं जानती। तुम बताओ कि इस अज्ञान की रात में मेरे लिए प्रकाश की किरण क्या है? मैं किस प्रकार इस अज्ञान और

दुविधा के अंधकार को दूर कर सकती हूँ!

आज मैं यह तो समझ गई हूँ कि मैं स्त्री हूँ और दुर्बल हूँ। मुझ में वह शक्ति नहीं जिसके सहारे मैं अकेली जीवन के पथ पर आगे बढ़ सकूँ। मेरे अंग सुन्दर भी हैं और कोमल भी किन्तु फिर भी मैं सब से हार गई हूँ। पुरुष ने मुझे जीत लिया है।

पर मन   माया में?

शब्दार्थ—घनश्याम खंड=नीले बादल का टुकड़ा। सर्वस्व=सब कुछ। विश्वास महातरु=विश्वास रूपी विशाल वृक्ष। माया=आकर्षण।

भावार्थ—शरीर तो कोमल और निर्बल है ही। पर आज मेरा मन भी क्यों अपने आप इतना निर्बल होता जा रहा है? नीले बादल के टुकड़े सी आँखों में क्यों बार-बार आँसू उमड़ आते हैं?

आज पता नहीं क्यों मेरे हृदय में मनु के विश्वास रूपी विशाल वृक्ष की आत्म बलिदान रूपी शीतल छाया में चुपचाप विश्राम करने का मोह उत्पन्न हो रहा है।

जब तक श्रद्धा को मनु पर विश्वास न हो तबतक उसके हृदय में आत्म समर्पण की इच्छा नहीं जग सकती। विश्वास के साथ ही आत्म समर्पण की इच्छा होती है। इसलिए आत्म समर्पण को विश्वास रूपी वृक्ष की छाया कहा गया है।

छाया   सुघराई में।

शब्दार्थ—छाया पथ=आकाश गंगा। तारक द्युति=तारे की शोभा। मधु लीला=मधुर-दृश्य। निरीहता=आश्रय हीनता। श्रम शीला=परिश्रम से थकी हुई। निस्सबल=बे सहारा। मानस=हृदय रूपी मानसरोवर, दुविधा। सुघराई=सुन्दरता।

भावार्थ—आकाश गंगा में तारे की कांति झिलमिलाती है। उसकी कांति अस्पष्ट किन्तु मनोहर होती है। उसी प्रकार मेरे हृदय में भी अस्पष्ट तथा मनोरम मिलन का दृश्य बार-बार उदित हो जाता है। इसके साथ ही साथ मेरे हृदय की कोमलता आश्रय हीनता और थकावट की अनुभूति भी मुझे मिलन की ओर प्रेरित कर रही है। मुझे आत्म समर्पण के लिए उत्कंठित करती हैं।

जब मनुष्य बे सहारा होता है और थका हुआ होता है तब वह स्वभावतया किसी का पूर्ण आश्रय चाहता है।

इस छंद में दीपक अलकार है। तीसरी पंक्ति का अर्थ ऊपर की दोनों पंक्तियों के साथ भी लगता है और अन्तिम पंक्ति के साथ भी।

मैं अपने हृदय रूपी मान सरोवर की गहराई में बिना किसी सहारे के तैर रही हूँ। यहाँ मैं मिलन के मनोरम स्वप्न देख रही हूँ। इस मनोहर स्वप्न से मैं कभी भी नहीं जागना चाहती। मैं सदैव मधु के प्रेम में ही विभोर रहना चाहती हूँ।

मारी   सकती।

शब्दार्थ—विकल = व्याकुल। अस्फुट-धुँधली, अस्पष्ट। अतर में = हृदय में। अनुदिन=रात दिन।

भावार्थ—इस छन्द में व्यंग्य रूप से एक चित्रकार का वर्णन हुआ है। जब कोई चित्र बनाना होता है तो पहले चित्रपट पर चित्र की धुँधली बाहरी रेखाएँ बनाली जाती हैं। इसके पश्चात ही चित्रकार उन रेखाओं के भीतर रंग भर कर चित्र बनाता है। श्रद्धा लज्जा से कहती है कि क्या नारी जीवन का भी चित्र ऐसा ही है? तुम नारी जीवन की धुँधली भावनाओं में व्याकुलता का रंगभर कर नारी का निर्माण करती हो।

लज्जा का उदय यौवन में होता है। यौवन से पूर्व नारी का जीवन अस्पष्ट और धुँधला होता है। उसकी भावनाएँ सोई होती हैं। यौवन के पदार्पण के साथ ही साथ लज्जा का आगमन भी होता है। लज्जा नारी जीवन में दुविधा का संचार करती है, उसे प्रेम-स्वप्नों को यथार्थ दृष्टि से देखने की प्रेरणा देती है जिसके फलस्वरूप नारी के हृदय में व्याकुलता घिर आती है। इसलिए यहाँ लज्जा को 'विकल रंग' भरने वाला कहा है। नारी जीवन का पूर्ण चित्र यौवन के पदार्पण के साथ ही लज्जा के हृदय के साथ ही—तैयार होता है। इसीलिए लज्जा को नारी जीवन का चित्र बनाने वाली कहा गया है।

श्रद्धा कहती है कि मैं स्वयं भी प्रेम के मार्ग में आगे बढ़ने से रुक जाती

हूँ और ठहर भी जाती हूँ। मनु के अनुनय विनय के होते हुए भी आत्म समर्पण के लिए प्रस्तुत नहीं होती। प्रस्तुत मेरी अवस्था ऐसी हो गई है कि मैं स्वयं अब कुछ भी नहीं सोच सकती। प्रेम के कारण मेरे हृदय में ऐसी हलचल मच गई है कि मैं स्वयं यह विचार करने में असमर्थ हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए। मेरे जो विचार ऐसे होते हैं, मानो कोई मेरे भीतर कोई पगली बैठी हुई दिन रात पागलपन की बातें कर रही है। जिस प्रकार पगली की बातों में कोई बुरा नहीं होता, पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता और उनका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं होता ऐसे ही मेरे हृदय में भी कभी कोई विचार उत्पन्न होता है और कभी कोई। ये विचार परस्पर सम्बन्ध नहीं हैं। इनके द्वारा मैं किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाती।

मैं

मरकता हूँ।

। शब्दार्थ—तोलने का=साधने का, संयम करने का। उपचार=प्रयास। स्वयं ढुल जाती हूँ=मैं अपने पर अधिकार नहीं रख पाती, मेरा हृदय प्रेम में विवश हो जाता है। भुज-लता=बाहों की लता। नर-तरु, पुरुष रूपी वृक्ष। उपेक्षा=त्याग। उत्सर्ग=बलिदान।

भावार्थ—मैं अब भी अपने आप को संयमित करने का प्रयास करती हूँ, तभी मेरा हृदय विवश हो जाता है। मैं बहुत प्रयत्न करती हूँ कि बुद्धि के द्वारा, तर्क के द्वारा अपने हृदय को वश में करूँ किन्तु मेरी बुद्धि ही प्रेम के आवेश में वे सुध हो जाती है। तोलने वाला तटस्थ होता है इसलिए वह वस्तुओं को तोल लेता है। किन्तु जो स्वयं ढुल रहा है वह कैसे तोल सकता है। जिस प्रकार लता वृक्ष का सहारा लेकर उसमें उलझ जाती है और फिर उससे स्वतंत्र नहीं हो सकती। जब वायु के झोंके चलते हैं तो वह लता उसमें विवश सी होकर वृक्ष के सहारा लेकर ही झूलने लगती है। उसी प्रकार मैंने भी अपनी भुजाओं की लता मनु रूपी वृक्ष में डाल दी है। मैंने मनु का सहारा लिया है। किन्तु अब मैं उससे स्वतन्त्र नहीं हो सकती और प्रेम के आवेश में डाँवाडोल हो रही हूँ। साँग रूपक अलंकार।

मैंने जो अपने आपको मनु के प्रति समर्पण करने का निश्चय किया है इसमें कोई स्वार्थ नहीं है। उसमें तो केवल बलिदान की भावना ही कार्य कर

रही है। मेरे इस निश्चय में तो बस यही सीधी सी इच्छा है कि मैं मनु को अपना सर्वस्व दे दूँ। किन्तु उससे कुछ भी बदले में नहीं लूँ। मैं आदान की कामना नहीं करती।

इस छंद में प्रसाद जी ने भारतीय नारी का आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है। वह पुरुष को सर्वस्व प्रदान कर देती है और उस से किसी बदले की कामना नहीं करती। उसका प्रेम निस्वार्थ एवं निश्छल होता है।

श्रद्धा की बातें सुनकर लज्जा फिर उससे कहती है—

"क्या ... समतल में।"

शब्दार्थ-सकल्प=निश्चय। अश्रु-जल=आँसुओं का जल। सोने-से सपने= स्पृहणीय इच्छाएँ। रजत नग = चाँदी का पर्वत। पीयूष-स्रोत = अमृत का झरना। समतल=भूमि।

भावार्थ—लज्जा श्रद्धा की बातें सुनकर बोली हे नारी! तुम क्या कहती हो? तनिक अपनी बातें बन्द करलो। तुमने तो पहले ही अपने जीवन की रम णीय इच्छाएँ आँसुओं के जल का संकल्प देकर दान कर दिया है। जब तुमने मनु से प्रेम किया तभी तुमने अपने जीवन का सारा सुख और वैभव उसे दान कर दिया।

जब कोई सकल्प दिया जाता है तो हाथ में जल भर कर प्रतिज्ञा की जाती है। नारी का सकल्प और भी मार्मिक है। वह अपनी आँखों में आँसू भर कर अपना सर्वस्व पुरुष को समर्पित कर देती है। पुरुष चाहे स्त्री को कितना ही कष्ट क्यों न दे, उसे कितना ही क्यों न रुलाए किन्तु वह सदैव पुरुष के कल्याण के लिए प्रार्थना करती है उसे सभी प्रकार के सुखी करने का प्रयास किया करती है।

हे नारी! तुम तो केवल श्रद्धा की मूर्ति हो तुम्हें दूसरों पर श्रद्धा करना ही भाता है। तुम्हारा हृदय पवित्र भावों से भरा रहता है। जिस प्रकार बर्फीले पहाड़ों के नीचे अमृत जैसे निर्मल जल के झरने बहते हैं उसी प्रकार तुम भी विश्वास के चाँदी के पहाड़ के नीचे जीवन की सुन्दर समभूमि में

निरन्तर प्रगति करती रहो। जिस प्रकार स्वच्छ झरने मनुष्यों को सुख और शीतलता प्रदान करते हैं, उसी प्रकार तुम भी सारे संसार का सुख और सौंदर्य से भर दो।

नारी पुरुष पर विश्वास करके ही उसे सर्वस्व समर्पण करती है, विश्वास के सहारे ही वह सारा जीवन बिता देती है। इसीलिए यहाँ लज्जा ने श्रद्धा को विश्वास के सहारे पर ही सुख बिखेरने के लिए कहा है।

देवों .... होगा।"

शब्दार्थ—देव=देव जाति, उदात्त भावनाएँ—प्रतीक। दानव=असुर, नीच भावनाएँ—प्रतीक। नित्य विरुद्ध रहा=नित्य ही लगा रहा। स्मित रेखा=मुस्कराहट की रेख। सन्धि-पत्र=प्रतिज्ञा पत्र।

भावार्थ—आज तक का इतिहास यह बताता है कि देव जाति और दानव जाति में नित्य ही युद्ध होते रहे। इन युद्धों में देव विजयी होते रहे और असुर हारते रहे। देवों को उनकी विजय युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती थी और असुरों उनकी हार फिर से देवताओं को ललकारने के लिए प्रेरित करती थी। इस प्रकार देवताओं की विजय और असुरों की पराजय का संघर्ष चलता ही रहा। जिस प्रकार बाह्य जगत में देवताओं और दानवों का युद्ध होता रहा उसी प्रकार हृदय में उदात्त और नीच भावनाओं का संघर्ष सदैव चलता रहा। व्यक्ति उदात्त होने का प्रयास करता था और वासना उसे नीचे खींचती थी। पाप और पुण्य का संघर्ष अतीत की ही कहानी नहीं है भविष्य में भी यह संघर्ष चलता ही रहेगा।

किन्तु हे नारी! तुम्हें इस संघर्ष से अछूता रहना पड़ेगा। तुम्हें हृदय को पाप भावनाओं से मुक्त रखना होगा और अपनी सारी इच्छाओं और कल्पनाओं को आँसू भर अंचल में ही रख देना होगा। पुरुष तुम्हें दुखी करेगा, तुम्हें रुलाएगा किन्तु रोते हुए भी तुम्हें पुरुष के लिए हृदय का सब कुछ समर्पण करना पड़ेगा और हँसते हँसते तुम्हें अपने और पुरुष के इस सम्बन्ध का प्रतिज्ञा पत्र लिखना पड़ेगा। तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि चाहे पुरुष तुम्हें कितना ही दुखी क्यों न करे, तुम उसके सुख के लिए सदैव प्रसन्न चित्त होकर प्रयत्नशील रहोगी।

———

कर्म

यद्यपि मनु देव संस्कृति का दारुण प्रलय देख चुके थे किन्तु अब उस दृश्य को बीते काफी समय हो चुका था। उधर उनके जीवन में श्रद्धा का आगमन हो चुका था। काम के शब्द भी उसके कानों में गूँज रहे थे मनु के कर्म की ओर आकर्षित हो गए बार बार उनके हृदय में यज्ञ करने की कामना लहराने लगी।

मनु के हृदय में श्रद्धा को प्राप्त करने की नवीन आशा का संचार हुआ। उनका हृदय सोम पान के लिए व्याकुल हो उठा। श्रद्धा ने मनु को बार बार कर्म की ओर उत्साहित किया था। मनु ने उसका दूसरा ही अर्थ लगाया उन्होंने समझा कि श्रद्धा भी उनके प्रति आत्म समर्पण के लिए प्रस्तुत है। काम ने भी मनु को श्रद्धा की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया था।

जिस प्रकार मनु प्रलय में भी जीवित बच निकले थे, उसी प्रकार दो असुर पुरोहित भी जीवित बच गए थे। एक का नाम किलात था और दूसरे का नाम आकुलि। उन दोनों ने ही अपने जीवन में अनेक कष्ट सहन किए थे। वे जब भी मनु का पशु देखते थे, उनकी जिह्वा उसके माँस भक्षण के लिए लालायित हो उठती थी।

एक दिन आकुलि ने किलात से कहा कि अब कब तक घास आदि खाते खाते जीवित रहूँगा। मुझे कब तक उस जीवित पशु को देखना होगा? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि मैं उसका माँस खाने के लिए प्राप्त कर सकूँ? यदि उसका माँस खाने को मिल जाए तो अनेक दिनों के पश्चात कम से कम एक दिन तो सुख का बीतेगा।

आकुलि ने उत्तर दिया कि क्या तुम देखते नहीं कि इस पशु के साथ इससे अतीव स्नेह करने वाली एक स्त्री घूमती है। उसके सामने मेरी माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। किन्तु फिर भी आज तो कुछ न कुछ करके ही

चैन करूँगा। या तो इस पशु की प्रमति में सफल ही हो जाऊँगा, अन्यथा जो विपत्ति मुझ पर आएगी, उसे सहूँगा।

इस प्रकार विचार करके वे दोनों असुर पुरोहित वहाँ आए जहाँ मनु बैठे हुए थे।

मनु धीरे धीरे कह रहे थे कि यदि मैं यज्ञ कर पाऊँ तो मेरा जीवन हर्ष से भर जाए। इस एकान्त प्रदेश में भी उत्सव का आनन्द आ जाए। किन्तु यज्ञ करूँ मेरा पुरोहित कौन बनेगा। पुरोहित के बिना यज्ञ कैसे किया जा सकता है? श्रद्धा को ही मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरी सारी अभिलाषाएँ उसी में केन्द्रित हैं। उसके अतिरिक्त मैं किसी की आशा नहीं कर सकता।

उसी समय असुर पुरोहित गम्भीर मुद्रा में बोल उठे कि हमें देवताओं ने भेजा है जिनकी तुष्टि के लिए तम यज्ञ करना चाहते हो। यदि तुम्हें यज्ञ ही करना है तो उसमें कठिनाई क्या है? हम तुम्हारा यज्ञ सम्पन्न करा देंगे। मित्र और वरुण हमारी सहायता करेंगे। चलो आज फिर यज्ञ वेदी पर ज्वाला का आह्वान करें।

हमें परम्परा से जो कर्म, यज्ञ आदि, प्राप्त हुए हैं उनमें जीवन का आनंद भरा पड़ा है। उनमें प्रेरणा देने की अपार शक्ति है। इस एकान्त प्रदेश में यज्ञ का कुछ उत्सव आदि होगा जिससे यहाँ की उदासी कुछ दूर हो जाएगी। श्रद्धा को भी यज्ञ देखकर एक विशेष प्रकार का कुतूहल होगा और वह भी प्रसन्न हो जाएगी। यह सोचकर मनु ने यज्ञ किया और उसमें पशु की बलि दी।

जब यज्ञ समाप्त हो गया, तो अग्नि धधक रही थी और वेदी पर चारों ओर पशु के रक्त के छींटे पड़े थे। इससे यह दृश्य बड़ा भयङ्कर हो गया था। सारा वातावरण दूषित हो रहा था। मनु के सामने सोम का पात्र भी भरा रखा था और चावल का बना पुरोडाश भी रखा था। किन्तु श्रद्धा वहाँ नहीं थी। उस समय मनु के हृदय में वासना जाग उठी।

मनु स्वयं सोचने लगे कि मैंने श्रद्धा के मनोरंजन के लिए तो यज्ञ का अनुष्ठान किया था किन्तु उसने तो इसमें भाग तक भी नहीं लिया। श्रद्धा मेरे सुख की सीमा है। किन्तु उसे अपना कहने का तो साहस तक भी नहीं

पशु की बलि देने के कारण ही श्रद्धा रुक गई है। किन्तु आज मैं उसे मनाऊँगा। मनु तब सोम रस का पान करने लगे।

संध्या का समय था। वातावरण में उदासी भी थी। श्रद्धा दुखी होकर अपनी गुहा में लौट आई थी। उसे मनु के व्यवहार पर दुख हो रहा था। उस समय रात्रि का प्रसार होने लगा और तारे खिलने लगे। यद्यपि श्रद्धा का हृदय मनु पर क्षुब्ध था किन्तु उसमें स्नेह भी था।

श्रद्धा सोचने लगी कि यह कितने दुख की बात है कि जिससे मैं प्रेम करती हूँ। वह आज ऐसा कठोर हो रहा है। श्रद्धा के सारे वातावरण में उदासी ही दिखाई दे रही थी। क्या मनुष्य पूर्ण होने के लिए ही भूल किया करता है? क्या इन क्षणिक भूलों में ही स्थायी कल्याण छिपा रहता है? प्राणी प्राणी से क्यों उदासीन है, उदासीन ही नहीं उसका शत्रु है? क्या एक का सन्तोष दूसरे का दुख बन जाता है।

उधर मनु के हृदय में वासना जाग्रत हो उठी थी। वह मादकता से भरे हुए श्रद्धा की गुफा में आ गए। श्रद्धा का वक्षस्थल उन्हें आलिंगन का निमन्त्रण सा देता प्रतीत होता था। मनु के स्पर्श से श्रद्धा रोमांचित हो उठती थी।

कामायनी गा रही थी। उसके हृदय में मनु के प्रति जो क्षोभ था वह भी प्रेम के कारण ही था। मनु ने धीरे से श्रद्धा की हथेली अपने हाथों में ले ली और आँखों में अनुनय तथा उपालम्भ भर कर बोले कि आज तुमने यह कैसा मान किया है। मैंने जिस स्वर्ग का निर्माण किया है, तुम उसे असफल मत करो। तुम इस प्रकार मुझ से विरक्त मत बनो। हम दोनों आज एक हो जाएँ और सुख के सागर में इस एकान्त जीवन की उदासी को भुला दें। तुम भी देवताओं को अर्पित सोमरस का पान कर लो और मादकता में डूब जाओ।

श्रद्धा का हृदय भी मादकता से भरा हुआ था। वह किन्तु संयत कर मनु से बोली कि आज तो तुम इस प्रकार मेरी अनुनय कर रहे हो। हो सकता है कि कल ही तुम्हारा हृदय बदल जाए। तुम मुझ से मुँह फेर लो। फिर मेरा क्या होगा। हो सकता है कल तुम किसी नवीन यज्ञ का अनुष्ठान करो और किसी अन्य की बलि दो। क्या यही तुम्हारी मानवता है जिसमें अपने सुख के

लिए अन्य प्राणियों का बलिदान कर दिया जाएगा।

श्रद्धा की बात सुनकर मनु ने उत्तर दिया कि अपना सुख भी तुच्छ नहीं है। हमें अपनी इन्द्रियों को भी तो तृप्त करना चाहिए। यदि हमारी कामना संतुष्ट न हुई तो इस सृष्टि का क्या लाभ।

तब श्रद्धा उपालंभ देती सी बोली कि सृष्टि का नया निकास कामना की तृप्ति के लिए ही तो हुआ है। बड़े दुख की बात है कि अब भी तुम्हारे प्राचीन विचार नहीं बदले। तुम्हें अपने सुख को व्यापक बनाना चाहिए, सभी के सुख में अपना सुख समझना चाहिए। क्या तुम अपने सुख के लिए सारे प्राणियों को दुखी कर दोगे? क्या त्याग का कोई महत्व ही नहीं होगा?

यद्यपि श्रद्धा इस प्रकार की बातें कह रही थी किन्तु उसका हृदय वासना से उत्तेजित हो रहा था। मनु ने इस बात को पहचान लिया। उन्होंने श्रद्धा से कहा कि तुम सोम का पान करलो, मैं वही करूँगा जो तुम कहोगी। श्रद्धा ने साम का पान किया और फिर मनु और श्रद्धा दोनों एक होगए।

इस सर्ग की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं—

१—कवि ने हिंसा पूर्ण यज्ञों के प्रति श्रद्धा की विरक्ति में वर्तमान समाज की विरक्ति दिखाई है।

२—श्रद्धा के शब्दों में विश्व कल्याण की भावना स्पष्ट है जो महात्मा गांधी के विचारों से समानता रखती है।

३—सत्य के सम्बन्ध में कवि का मत।

४—माया की छाया में प्रकृति क, वर्णन।

कर्म ... थिर थे।

शब्दार्थ—कर्म सूत्र = कर्म काण्ड, यज्ञ। सदृश = समान। सिंजनी = प्रत्यंचा। थिर = शान्त।

भावार्थ—मनु के लिए सोम की लता यज्ञों के प्रतीक के समान थी। यज्ञों में देवता लोग सोम का पान करते थे। इसलिए मनु को भी अब सोम के पीने की इच्छा उठ और उसके साथ ही वे यज्ञों की ओर आकर्षित हुए।

जिस प्रकार प्रत्यंचा के चढ़ाने पर धनुष खिंच जाता है उसी प्रकार सोमलता रूपी प्रत्यंचा ने मनु के जीवन रूपी धनुष को खींच दिया।

मनु भी यज्ञ के मार्ग पर छूटे हुए तीर के समान आगे बढ़े। अभिप्राय यह है कि सोम पान की लालसा से मनु यज्ञों की ओर तेजी से आकर्षित हुए मनु का हृदय यज्ञ करने के लिए ललक उठा। बारबार उनके हृदय में यज्ञ करने की इच्छा उदित होने लगी। इसके कारण मनु शान्त न रह सके।

उपमा और रूपक अलंकार।

भरा   उदासा।

शब्दार्थ—नव अभिलाषा=नवीन इच्छा--यज्ञ करने की। अतिरंजित= रमणीय। ललित=सुन्दर। लालसा=इच्छा। विभव=वैभव।

भावार्थ—मनु के मन में काम की यह वाणी बारबार गूँज रही थी कि तुम श्रद्धा का वरण करो। अब उनके मन में यज्ञ करने की नवीन इच्छा ने जन्म लिया था। मनु के हृदय में कमनीय आशा लहरा रही थी और वे अपने भविष्य के विषय में विचार करने लगे।

मनु के हृदय में सोम पीने की सुन्दर इच्छा उठ रही थी। मनु का जीवन में प्रकृति का वैभव तो था किन्तु उसमें उदासी थी, उसमें निराशा थी जिसके कारण वे उदास रहते थे। सोम पान की इच्छा भी अतृप्त रहने के कारण उस जीवन की उदासी वैसी ही थी। यह भी जीवन में निराशा का रँग गहरा करती थी।

जीवन   तिल के।

शब्दार्थ—अविराम निरन्तर। प्रतिकूल पवन=उलटी हवा, विपरीत हवा। तरणी=नौका। भ्रांत अर्थ=गलत अर्थ।

भावार्थ—प्रलय के पश्चात चित्त के स्थिर हो जाने पर मनु ने अपने जीवन को साधना में लगाया था। अब तक वे निरन्तर साधना कर रहे थे। अब उनकी यह साधना रुक गई थी। किन्तु साथ ही उस साधना ने मनु के हृदय में नवीन उत्साह का संचार भी कर दिया था। मनु की दशा उस नाव के समान थी जो नदी में निरन्तर आगे बढ़ती रही हो किन्तु अब विपरीत वायु के कारण फिर वापिस लौट पड़े और गहरे पानी में पहुँच जाए। यदि

मनु निरन्तर अपनी साधना पर अग्रसर रहते तो यह निरन्तर बढ़ती हुई नाव के समान ही वासना की नदी को पार कर जाते। किन्तु अब वासना के झोंकों ने उन्हें फिर से पुराने जीवन की ओर प्रेरित किया जिसमें वे नित्य ही उत्सव आदि मनाया करते थे। पुरानी परिस्थितियाँ तो नहीं रहीं, किन्तु वे अब श्रद्धा के साथ प्रणय कर सकते हैं और इसी ओर वे आकर्षित भी हुए।

उदाहरण अलंकार।

मनु को श्रद्धा के वे उत्साहपूर्ण शब्द याद आने लगे जिसमें उसने अपने जीवन को मनु के चरणों में विकार रहित होकर व्यतीत करने की बात कही थी। काम का कथन भी उनके कानों में गूँज रहा था। किन्तु अब मनु ने इसका विपरीत अर्थ लगाया। श्रद्धा के वचन और काम की प्रेरणा का वास्तविक अभिप्राय तो यह था कि मनु श्रद्धा के साथ मिलकर नवीन मानवता का विकास करें। किन्तु मनु ने उसका अर्थ केवल प्रणय और वासना की पूर्ति तक सीमित समझा और इस प्रकार उनका बिल्कुल गलत अर्थ लगाया।

बल सपना।

शब्दार्थ—दैव-बल=भाग्य बल। सतत=निरन्तर।

भावार्थ—जीवन में ऐसा होता कि मनुष्य पहले तो अपना एक सिद्धान्त बना लेता है और फिर प्रमाणों द्वारा उसकी पुष्टि किया करता है। होना तो यही चाहिए कि पहले प्रमाणों की परीक्षा की जाए और फिर उनसे निष्कर्ष निकाला जाए। किन्तु मनुष्य उस से विपरीत सोचता है। पहले निष्कर्ष मान लेता है और फिर प्रमाण एकत्रित करता फिरता है। एक बार जब कोई व्यक्ति किसी पूर्वाग्रह में स्थित हो जाता है तब बुद्धि भी सदैव उसका समर्थन किया करती है। किन्तु बुद्धि का यह समर्थन उसकी अपनी साधना का परिणाम नहीं होता, वह स्वयं अपने अनुभव द्वारा उनकी पुष्टि नहीं करती, वरन् इधर उधर से प्रमाण उधार लेती है। दूसरी पुस्तकों से और दूसरे के अनुभवों से अपने सिद्धान्त का समर्थन करती है

जब मन एक बार अपना मन स्थिर कर लेता है तो फिर वह सदैव बुद्धि की सहायता से और भाग्य की सहायता से उसको प्रमाणित करता है। किन्तु

उसका यह प्रमाण ढूँढना सपने के समान ही मिथ्या है। इसमें कोई सार नहीं होता।

पवन   सीढ़ो। —

शब्दार्थ—हिलकोर=लहर। अंतरआतम=हृदय। नभ तल=आकाश और धरती।

भावार्थ—मनुष्य को अपना ही सिद्धान्त सारी प्रकृति में प्रतिबिम्बित दिखाई देता है। पवन द्वारा सागर में उठाई गई लहरों में, और जल की तरलता में उसे अपने मत के प्रमाण ही दिखाई देते हैं। उसके हृदय की यही ध्वनि धरती और आकाश में सर्वत्र गूँजने लगती है। वह अपने मत को प्रमाणित करने के लिए धरती तथा आकाश दोनों स्थानों से प्रमाणों का संग्रह करता है।

और तर्कशास्त्र की परम्परा भी उसी मत का समर्थन करती है। उदाहरणं के लिए कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन के सभी मतों की अपनी अपनी तर्क पद्धति है और एक मत के अनुयायी दूसरे मत का खण्डन कर अपने मत का मण्डन करते हैं। वे लोग कहते हैं कि हमारा मत ही एक मात्र सत्य है। इसी के अवलम्बन से व्यक्ति को सुख प्राप्त हो सकता है और उसकी उन्नति हो सकती है।

और   'छुईमुई' हैं।

शब्दार्थ—गहन=रहस्यमय। मेध=बुद्धि। क्रीडा-पंजर=क्रीडा का पिंजरा, विचारों का बन्धन। सुआ=तोता। कर=हाथ।

भावार्थ—किन्तु निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि सत्य शब्द कितना रहस्यमय हो गया है। सभी दार्शनिक समझते हैं कि हमने इसे प्राप्त कर लिया है किन्तु वस्तुतः कोई भी उसे प्राप्त नहीं कर पाया। यह तो बुद्धि के विचार रूपी पिंजरे का रटा हुआ तोता है। प्रत्येक दार्शनिक अपने विचारों में ही सत्य का दर्शन करता है और शेष सब विचार उसके लिए व्यर्थ हैं।

उपमा अलंकार।

मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में सत्य की खोज की धुन में लगा हुआ है।

सभी सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। किन्तु सत्य तर्क के स्पर्श से संकुचित हो जाता है। जिस प्रकार स्पर्श से छुईमुई का पौधा मुर्झा जाता है उसी प्रकार तर्क के द्वारा जब सत्य की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है तो उसका वास्तविक स्वरूप छिप जाता है।

यहाँ प्रसादजी के मत की छाया स्पष्ट है। वे सत्य को हृदय द्वारा प्राप्त मानते हैं। बुद्धि सत्य को प्राप्त नहीं कर सकती। श्रद्धा और इड़ा के प्रतीकात्मक रूपों द्वारा भी उन्होंने अपने मत की स्थापना की है।

असुर कहती।

शब्दार्थ—विप्लव=प्रलय। किलात आकुलि—असुर पुरोहित के नाम। आमिष-लोलुप=माँस-भक्षण के लिए ललचाई हुई। रसना=जिह्वा।

भावार्थ—दो असुर पुरोहित भी उस प्रलय से बच गए थे और वे तब से ही इधर उधर भटक रहे थे। उनका नाम किलात और आकुलि था। उन्होंने प्रलय के पश्चात जीवन में अनेक कष्ट सहन किए थे।

उनकी जिह्वा मनु के पशु का माँस खाने के लिए ललचाई रहती थी। वह उसे देख-देखकर व्याकुल भी थी और चंचल भी। पशु को पाने में असमर्थ होने के कारण ही असुर पुरोहित व्याकुल रहते थे। और उनकी जिह्वा उन्हें उस पशु को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती थी।

'क्यों बजाऊँ।'

शब्दार्थ—घूँट लहू का पीऊँ=हृदय की ज्वाला को दबाऊँ—मुहावरा।

भावार्थ—एक दिन आकुलि ने किलात से कहा कि मैं कब तक घास पात खाते-खाते अपने जीवन का निर्वाह करूँ। जब भी मैं इस जीवित पशु को देखता हूँ मेरे हृदय में एक ज्वाला सी उठती है किन्तु मैं बड़ी कठिनाई से उसे दबा पाता हूँ। मुझे कब तक और इसी प्रकार धीरज रखना होगा! क्या मैं इस पशु का माँस कभी भी न खा सकूँगा!

क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे कि मैं इस पशु को खा सकूँ। यदि इसका माँस खाने को मिल जाए तो इतने दिनों के पश्चात कम से कम एक रोज तो आनन्द से बिताऊँ।

आकुलि घन-सी ।

शब्दार्थ—मृदुलता की, ममता की छाया=कोमलता और ममता से भरी श्रद्धा जो छाया के सममान पशु के साथ रहती थी। आलोक=प्रकाश। माया=छल ।

भावार्थ—तब आकुलि ने उत्तर दिया कि क्या तुम यह नहीं देखते कि कोमलता और ममता से भरी हुई एक स्त्री सदैव हँसती हुई उसके साथ रहती है।

वह स्त्री उस प्रकाश की किरण के समान है जो अन्धकार को दूर कर देती है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें हलके बादल को भेदकर निकल आती हैं उसी प्रकार मेरा छल उस स्त्री पर नहीं चल सकता। उसे देखते ही मेरी माया निर्बल पड़ जाती है।

उपमा अलंकार।

तो लगाए।

शब्दार्थ—सहज=सरलता से।

भावार्थ—तो भी जो हो अब तो कुछ न कुछ करना ही होगा। पशु की प्राप्ति के लिए कुछ किए बिना अब मैं शान्त नहीं रह सकता। और यदि इस प्रयास में कोई विपत्ति भी आएगी तो उसे भी सरलता से सहन कर लूँगा।

दोनों असुर पुरोहित इस प्रकार विचार करके उस कुञ्ज के द्वार पर पहुँचे जिसमें मनु ध्यान लगाए बैठे थे।

"कर्म गया है।

शब्दार्थ—सपनों का स्वर्ग=कल्पनाओं का मधुर संसार। विपिन=वन। मानस=मन। कुसुम=फूल।

भावार्थ—कर्म यज्ञ करने पर मेरी सारी कल्पनाएँ सत्य हो जाएँगी। और मुझे एक मधुर संसार की प्राप्ति होगी। मनु यह समझते हैं कि यज्ञ में श्रद्धा भी भाग लेगी और यज्ञ की समाप्ति पर दोनों मिलकर सोमपान करेंगे

तथा जीवन में एक हो जाएँगे। इसीलिए वे कहते हैं कि यज्ञ करने पर इस बर्ति मान्त में भी मेरे हृदय की आशा का फूल खिल उठेगा, मेरी आशा पूर्ण हो जाएगी।

यह तो ठीक है कि मैं यज्ञ करूँगा। किन्तु अब एक नया प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मेरा पुरोहित कौन बनेगा? बिना पुरोहित के मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ? मुझे समझ नहीं आता कि यज्ञ करने की इच्छा किस प्रकार पूरी होगी। मनु को अपने भविष्य जीवन के मार्ग की दिशा का कोई ज्ञान नहीं है।

श्रद्धा आशा।"

शब्दार्थ—पुण्य-प्राप्य=मधुर प्राप्य। निर्जन=एकान्त।

भावार्थ—श्रद्धा तो मेरी मधुर प्राप्य है, मैं उसे प्राप्त करना चाहता हूँ। वह मेरी अनन्त कामना की मूर्ति है। मेरी सारी कामनाएँ उसी में केन्द्रित हैं अब मैं अपनी आशा को पूर्ण करने के लिए इस एकान्त स्थान में किसे खोजूँ।

कहा रहे हो।

शब्दार्थ—यजन=यज्ञ।

भावार्थ—जब मनु पुरोहित के न मिलने पर चिन्तित हो रहे थे उसी समय किलात और आकुलि ने अपनी मुख-मुद्रा को गम्भीर बनाते हुए कहा कि हमें उन देवताओं ने भेजा है जिनकी तुष्टि के लिए तुम यज्ञ करना चाहते हो।

क्या तुम सचमुच यज्ञ करोगे? यदि तुम्हें यज्ञ करना ही है तो इस समय तुम किसे ढूँढ रहे हो। अच्छा समझे। पुरोहित की खोज में तुमने बहुत कष्ट सहन किए हैं।

। 'रहे हो' प्रयोग व्याकरण सम्मत नहीं है।

इस फेरी।"

शब्दार्थ—निशीथ=रात। मित्र=सूर्य। वरुण=अन्तरिक्ष का देवता।

आलोक=प्रकाश। सब विधि=सब प्रकार से।

भावार्थ—सूर्य और वरुण इस संसार के प्रतिनिधि हैं। वे ही रात और दिन को प्रकट करने वाले हैं। प्रकाश और अन्धकार उन्हीं की छाया हैं।

वे देवता ही सब प्रकार से हमें मार्ग दिखाएं जिससे मेरी इच्छा पूरी हो जाएगी। चलो आज फिर से यज्ञ की योजना करें और वेदी पर ज्वाला जगाएँ।

"परम्परागत स्मृतियाँ।

शब्दार्थ—परम्परागत=परम्परा से प्राप्त। कृतियाँ=रचनाएँ, विधान। पुलक भरी = पुलकित करने वाली—विशेषण विपर्यय। मादक = मस्त कर देने वाली।

भावार्थ—परम्परा से प्राप्त कर्म-काण्ड की लड़ियाँ उसके विविध यज्ञ कितने सुन्दर हैं। उनमें जीवन को सहज भाव से व्यतीत कर देने वाली अनेक आनन्दमय घड़ियाँ संयुक्त हैं। यज्ञ करते हुए आनन्दपूर्वक जीवन बिताया जा सकता है।

उन यज्ञों के विधान जीवन पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले हैं। और यज्ञों में ऐसे एक नहीं अनेक विधान हैं। यहाँ सोमपान आदि की ओर संकेत है। वे विधान अब मनु के हृदय में मस्त कर देने वाली स्मृतियों के रूप में रह गए हैं। उनकी स्मृतियाँ अब भी उन्हें पुलकित कर देती हैं और हर्ष से भर देती हैं।

साधारण लोभी।

शब्दार्थ—अविरंजित=आकर्षक। मधुर स्वरा-सी=मधुर गति के समान। लीला=क्रीडा। कुतूहल=जिज्ञासा।

भावार्थ—यज्ञ के करने से यहाँ पर कुछ साधारण से उत्सव होंगे और साथ ही मधुर प्रेरणा देने वाली आकर्षक क्रीडाएँ होंगी। इन साधारण उत्सवों से और इन मधुर क्रीडाओं से हमारे एकान्त जीवन की उदासी दूर हो जाएगी।

यहाँ कमालकार है।

भद्रा भी जब यह देखेगी तो उसे भी एक विशेष प्रकार का कुतूहल होगा। उसकी उदासी भी दूर होगी। मन स्वभाव से ही नवीनता का लोभी होता है यह सदैव जीवन में कुछ परिवर्तन की कामना किया करता है। इस प्रकार विचार करते हुए मनु का मन भी प्रसन्नता में नाच उठा।

यज्ञ प्राणी।

शब्दार्थ—दारुण=भयङ्कर। रुधिर=खून। अस्थि-खण्ड=हड्डी के टुकड़े। वेदी की निर्मम प्रसन्नता=वेदी पर बैठकर यज्ञ करने वाले प्रसन्न तो थे किन्तु उनकी प्रसन्नता बड़ी कठोर थी, जो एक प्राणी को मार कर प्राप्त हुई थी। —विशेषण-विपर्यय। कातर=दर्द भरी। कुत्सित=घृणित, हिंसक।

भावार्थ—मनु ने यज्ञ किया। जब यज्ञ समाप्त हो चुका था, किन्तु फिर भी अग्नि की लपटें उठ रही थीं। यह दृश्य बड़ा भयङ्कर था। चारों ओर रक्त के छींटे पड़े हुए थे। और साथ ही हड्डियों के टुकड़े भी बिखरे हुए थे।

यहाँ प्रसादजी ने दृश्य-वर्णन में अपूर्व कौशल दिखाया है। इतने कम शब्दों में एक सम्पूर्ण दृश्य का वर्णन कर देना प्रसादजी की अप्रतिम प्रतिभा के अनुरूप ही है।

यज्ञ करने वाले प्रसन्न थे किन्तु उनकी यह प्रसन्नता बड़ी कठोर थी जो एक प्राणी को मारकर प्राप्त हुई थी। अभी तक पशु की दर्द भरी आवाज यहाँ गूँजती-सी प्रतीत होती थी। इन सब बातों ने मिलकर वातावरण को हिंसक प्राणी के समान बना दिया था। हिंसक प्राणी भी दूसरे प्राणियों को मारकर आनन्दित होता है।

सोमपात्र आगे।

शब्दार्थ—पुरोडाश=चावल के आटे का बना हुआ प्रसाद।

भावार्थ—यहाँ सोमपात्र भी भरा रखा था। सामने पुरोडाश भी रखा हुआ था। भद्रा यहाँ उपस्थित नहीं थी। उसने दुःख के कारण उस यज्ञ में

भाग नहीं लिया था। उस समय मनु के सोए हुए भाव जाग उठे। उनके हृदय में वासना मचल उठी।

"जिसका ... अपना है!

शब्दार्थ—उल्लास = हर्ष। निरखना = देखना। दृप्त=प्रचण्ड। संचित सुख=एकत्रित सुख सम्पूर्ण सुख। मूर्त बना है=आकार ग्रहण किया है।

भावार्थ—मनु सोचने लगे कि मैं जिस श्रद्धा का हर्ष देखना चाहता था जिसके मनोरञ्जन के लिए मैंने इस यज्ञ की रचना की, वही इस यज्ञ से अलग हो गई। किन्तु यह सब क्यों हुआ? उसी समय मनु के हृदय में वासना का तूफान जाग उठा।

श्रद्धा में मेरे जीवन का सम्पूर्ण सुख केन्द्रित है। वह मेरे सुखों की सजीव प्रतिमा है। किन्तु फिर भी मैं दिल खोलकर उसे अपना नहीं कह सकता। मुझमें इतना साहस नहीं कि मैं उसे अपना कह सकूँ।

वही ... जाना होगा!"

शब्दार्थ—सुनिहित होगा = छिपा होगा। किस पथ जाना होगा = क्या उपाय करना होगा?

भावार्थ—वह श्रद्धा आज प्रसन्न नहीं है। इसमें अवश्य ही कुछ रहस्य है। क्या वह पशु के मरने पर तो दुःखी नहीं है? क्या वह पशु मरकर भी हमारे मिलन में बाधा बनेगा?

श्रद्धा रूठ गई है तो क्या मुझे उसको मनाना होगा? अथवा क्या वह स्वयं मान जाएगी? समझ में नहीं आता कि मुझे अब क्या करना चाहिए?

पुरोडाश ... शशि-लेखा।

शब्दार्थ—रिक्त स्थल=खाली स्थान। कामकला=मस्ती, नशा। धूसर = धुँधली। शैल शृङ्ग = पर्वत की चोटी। अङ्कित थी = चित्रित थी। दिगन्त अम्बर=आकाश की दिशा। मलिन=मन्द। शशि-लेखा=चन्द्रमा की रेखा।

भावार्थ—मनु तब पुरोडाश के साथ सोमरस पीने लगे और इस प्रकार

औ उनके हृदय का रिक्त स्थान था उसे नशे से भरने लगे। श्रद्धा के रूठ जाने के कारण मनु का हृदय सूना-सूना सा था। इसलिए उस सूनेपन को वह नशे में डुबाने लगे।

सन्ध्या का समय था। सारा वातावरण धुँधला था। मन्द चन्द्रमा को लिए हुए पर्वत की चोटी आकाश में चित्रित-सी दिखाई देती थी। उस समय का दृश्य एक चित्र के समान दिखाई दे रहा था।

श्रद्धा .... झुलसी थी।

शब्दार्थ—शयन गुहा=सोने की गुफा। विरक्ति=उदासी। विकलायी-व्याकुल। काष्ठ-सन्धि=लकड़ियों के बीच। अनल शिखा=आग की लपट। आभा=प्रकाश। तामस=अन्धकार। तामस को छलती=अन्धकार को दूर करती।

भावार्थ—मनु के आचरण से दुखी होकर श्रद्धा अपने सोने की गुफा में लौटकर आ गई थी। उसके हृदय पर उदासी का बोझ भरा था। वह मन ही मन बहुत व्याकुल थी।

सूखी हुई लकड़ियों के बीच आग की पतली ज्वाला जल रही थी और अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर करने का प्रयास कर रही थी।

किन्तु .... पाकर।

शब्दार्थ—चर्म=चमड़ा, खाल। श्रम=परिश्रम। मृदु=कोमल।

भावार्थ—किन्तु जब ठण्डी वायु का झोंका लगता था तो वह आग की लपट बुझ जाती थी। और कभी वह उन पवन के झोंकों के द्वारा स्वयं ही जल उठती थी। उसे फिर कौन बुझाता?

आग की इस लपट के जलने और बुझने के व्यापार के वर्णन में व्यंजना द्वारा श्रद्धा के हृदय की दशा का भी वर्णन किया गया है। कभी तो उसके हृदय में मनु के प्रति क्षोभ तीव्र हो उठता है और कभी शान्त हो उठता है।

कामायनी कोमल खाल बिछाये हुए लेटी हुई थी। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं परिश्रम ही मधुर आलस्य को प्राप्त कर विश्राम कर रहा है।

उत्प्रेक्षा अलंकार।

धीरे धीरे .... वाली।

शब्दार्थ—ऋजु=सीधा। मृग=हरिण। विधु=चन्द्रमा। मृग जुतते विधु रथ में=चन्द्रमा के रथ में हरिण जुत रहे थे—ऐसा माना जाता है कि चन्द्रमा के वाहन हरिण हैं। यहाँ इस कथन का अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा उदय हो रहा था। अंचल=वस्त्र। निशीथिनी=रात। ज्योत्स्ना-शाली=चाँदनी वाला सृष्टि=संसार। वेदना वाली=दर्द भरी।

भावार्थ—धीरे धीरे संसार अपने सीधे मार्ग पर चल रहा था। नित्य के समान ही तारे निकल रहे थे और चन्द्रमा के रथ में हरिण जुत रहे थे और वह उदय हो रहा था।

रात्रि ने अपना चाँदनी वाला वस्त्र बिखेर दिया था। सर्वत्र चाँदनी फैल गई थी जिसकी छाया में दुखी संसार शान्ति को प्राप्त करता है।

यहाँ रात्रि का मानवीकरण है।

उच्च .... उजाला।

शब्दार्थ—शैल शिखर=पर्वत की चोटी। प्रकृति-चंचला बाला=प्रकृति रूपी चंचल बाला। धवल हँसी=सफेद हँसी, चाँदनी।

भावार्थ—ऊँचे-ऊँचे पर्वत के शिखरों पर प्रकृति रूपी चचल बालिका हँसती-सी दिखाई देती थी। चाँदनी उसकी सफेद हँसी के रूप में सर्वत्र बिखर रही थी और उजाला कर रही थी।

जीवन .... मन में।

अब कवि श्रद्धा के हृदय की दशा का चित्रण करता है।

शब्दार्थ—उद्दाम=तीव्र। लालसा=कामना। व्रीड़ा=लज्जा। तीव्र उन्माद=तेज नशा। मन मथने वाली=मन में हलचल पैदा करने वाली। मधुर विरक्ति=मधुर उदासीनता। श्रद्धा के हृदय में इस समय मनु के प्रति उदासीनता हो है किन्तु वह मधु के प्रेम से उत्पन्न हुई है, इसलिए मधुर विरक्ति कहा है। अन्तर्दाह=हृदय की जलन।

भावार्थ—इस समय श्रद्धा के हृदय की अवस्था बड़ी विचित्र थी। उसमें जीवन की प्रचण्ड कामना थी जिसमें लज्जा भी उलझी थी। लज्जा के कारण वह अपनी कामना को मनु पर व्यक्त नहीं कर पाती। उसमें एक तेज

नशा सा था और साथ ही हलचल पैदा कर देने वाली पीड़ा भी थी। उसमें मनु के प्रति प्रेमजन्य उदासीनता भी थी। इन विविध भावनाओं ने श्रद्धा के हृदय रूपी आकाश को आच्छादित कर लिया था। किन्तु तब भी श्रद्धा के मन में प्रेम की जलन भी हो रही थी। ये सब भावनाएँ होते हुए भी, वह मनु के प्रेम को भुला नहीं सकी थी।

से　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　कटुता में।

शब्दार्थ—असहाय=बे सहारा। भीषणता=कठोरता, पीड़ा। पात्र=अधिकारी। कुटिल कटुता=दूषित कठोरता।

भावार्थ—श्रद्धा इस समय अपने आप को असहाय समझ रही थी। वह पीड़ा से व्याकुल होकर कभी अपने नयन बन्द कर लेती थी और कभी खोल लेती थी। आज उसके प्रेम का अधिकारी मनु दूषित कठोरता में घिरा था। उसने पशु की हिंसा कर अपना सुख साधा था इसलिए श्रद्धा अत्यन्त दुखी थी।

"कितना　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　निर्जन में।

शब्दार्थ—मानस चित्र=हृदय का चित्र, कल्पना का संसार। दारुण ज्वाला=भयंकर दुःख। मधुवन=सुन्दर वन, हृदय। नीरव निर्जन=शान्त एकांत।

भावार्थ—श्रद्धा सोच रही थी कि यह कितने दुःख की बात है कि मैं जिससे प्रेम करती हूँ वह आज कुछ और ही बना हुआ है। वह मुझ से विमुख होकर हिंसा में हर्ष मना रहा है। मैंने जो अपने हृदय में भविष्य का सुन्दर चित्र खींचा था, वह केवल एक सुन्दर स्वप्न बन कर रह गया। श्रद्धा ने बड़ी रम्य कल्पना की थी कि उसके सहयोग से मनु एक नवीन संसार का निर्माण करेंगे जो अपने सत्य के बल से सदैव उत्कर्ष को प्राप्त होगा। किन्तु आज का मनु के आचरण ने श्रद्धा की इस कल्पना के टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे।

इस शान्त और मधुर वन में हिंसा और क्रोध की ज्वाला धधक उठी है। मेरे हृदय में भी आज क्षोभ की भयंकर लपटें उठ रही हैं। यहाँ तो सर्वत्र

शान्ति है, कोई अन्य व्यक्ति है ही नहीं। मुझे कौन इसकी शान्ति का उपाय बताएगा। दुखी व्यक्ति को जब कोई सान्त्वना देने वाला होता है तो उसका दुख आधा रह जाता है। किन्तु जब कोई भी उसे समझाने वाला नहीं होता तो उसकी दशा और भी करुण हो जाती है।

यह उदासी।

शब्दार्थ—अवकाश=अन्तरिक्ष। नीड़=घोंसला। व्यथित बसेरा = दुख पूर्ण स्थान। सजग पलक=चेतन आँख। अलस सवेरा=प्रात काल शिथिल हो रहा है—प्रात काल का मानवीकरण। विस्तृत=फैली हुई। नभ=आकाश।

भावार्थ—श्रद्धा का हृदय वेदना से भरा हुआ है। अब वह सारी प्रकृति में वेदना का ही विस्तार देखती है कि यह विराट अन्तरिक्ष वेदना रूपी पक्षी का घोंसला है। सारे आकाश में दुख व्याप्त है। प्रात काल की चेतन आँखों में भी उसी वेदना का प्रसार है जिसके कारण वह शिथिल सा दिखाई देता है। इसीलिए श्रद्धा को दुखी प्रभात भी शिथिल दिखाई देता है।

वायु के चरण भी काँप रहे हैं। वायु के झोकों में भी दुख का घना प्रसार है। चारों ओर नीरवता बिखरी हुई है। आकाश में चारों दिशाओं की उदासी छाई जा रही है।

अंतरतम परम से।

शब्दार्थ—अंतरतम की प्यास=हृदय की वासना। विकलता=व्याकुलता। अवलम्बन=सहारा। विपुल=अत्यधिक। आतंक ग्रस्त=भयभीत। ताप विषम= भयङ्कर ज्वाला। शरदाह=हृदय की आग, वासना।

भावार्थ—हृदय की वासना की प्यास व्याकुलता से युक्त होकर निरतर बढ़ती जाती है। किन्तु हृदय की वासना सदैव ही असफल होती रही है। उसकी चाहे कैसी ही अबाध अभिव्यक्ति क्यों न हुई हो फिर भी वह तृप्त नहीं होता, इसीलिए उसे असफल कहा है। किन्तु उस असफलता के परिणाम स्वरूप हृदय में प्रतिक्रिया होती है और वासना और भी उग्रता से प्रकट होती है।

सारा संसार अपनी ही भयङ्कर ज्वाला से जल रहा है। मनुष्य की अपनी मूर्खा के कारण ही चारों ओर घना अंधकार छाता जा रहा है। हृदय की

ज्वाला के कारण ही कोई भी अपना मार्ग नहीं ढूंढ पा रहा है।

उद्वेलित   गाथा।

शब्दार्थ—उद्वेलित=क्षुब्ध। उदधि=सागर। चक्रवाल=चाँद के चारों ओर प्रकाश की वृत्त जिसे परिवेश भी कहते हैं। धूम कुण्डल=धुएं का चक्र, धुंधला आकाश। ज्वाला=चाँदनी की आग। तिमिर-फणी=अन्धकार रूपी सर्प—रूपक अलङ्कार।

भावार्थ—सागर भी क्षुब्ध है। लहरें भी व्याकुल सी दिखाई दे रही हैं और बार बार पुलिन की ओर लौट रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो परिवेश की धुंधली रेखा झुलसी जा रही हो। वैसे तो चाँदनी शीतल होती किन्तु श्रद्धा का हृदय क्षोभ की ज्वाला से जल रहा है इसलिए उसे सर्वत्र ताप और दाह ही दिखाई देता है।

सघन धुऐं जैसे आकाश में चाँदनी की लपटें नाच रही हैं। तारों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो अंधकार रूपी सर्प ने मणियों की माला धारण कर रखी है। मणि वाला सर्प बहुत अधिक विषैला माना जाता है। यहाँ श्रद्धा को अंधकार विषाक्त सा दिखाई देता है।

जगती   निर्ममता।

शब्दार्थ—जगती तल=संसार। क्रंदन=विलाप। विषमयी=जहरीली। अन्तरंग छल=हृदय का कपट। दारुण=भयङ्कर दुःख देने वाली। निर्ममता= कठोरता।

भावार्थ—इस जहरीली विषमता के कारण ही सारे संसार में विलाप हो रहा है। मनुष्य अपने हृदय को सन्तुलित नहीं रख सकता, इसका आचरण सम नहीं है, इसीलिए तो सारा संसार दुखी है। और कपट सदैव मन में चुभता रहता है। यदि कोई धोखा देता है तो सदैव उसके कारण हृदय में जलन होती रहती है और उसकी कठोरता बड़ी निर्मम होती है, उससे हृदय को भारी आघात पहुँचता है।

जीवन   रहते हैं।

शब्दार्थ—निष्ठुर=कठोर। दंशन=निरन्तर चुभने वाले, अपराध। आतुर पीड़ा=व्याकुल कर देने वाली पीड़ा। कलुष चक्र=पाप का चक्र। वन

आँखों की क्रीड़ा=आँखों के सामने का खेल, ये भूलें पाप के समान ही निरंतर आँखों के सामने नाचा करती हैं। स्खलन=फिसलना। चेतना का कौशल=बुद्धि की कुशलता। विषाद=दुःख। नद=नदियाँ।

भावार्थ—मनुष्य अपने जीवन में जो अपराध करता है उसकी पीड़ा को वह कभी भी भुला नहीं पाता। जिस प्रकार मनुष्य का पाप सदैव उसके आँखों के सामने नाचा करता है। उसी प्रकार अपराधों की पीड़ा भी उसे सदैव सताती रहती है। मनुष्य का पाप बार-बार उसकी स्मृति की सीमा में आकर उसे पीड़ित किया करती है। इसी प्रकार भूलों की पीड़ा से भी वह कभी मुक्त नहीं हो सकता।

बुद्धि की कुशलता के फिसल जाने को ही भूल कहते हैं। जब मनुष्य की बुद्धि सही मार्ग पर चलकर असद् मार्ग पर भटक जाती है, तभी यह कहा जाता है कि उससे भूल हो गई है। भूल एक बूँद के समान छोटी होती है किन्तु उसी में दुःख की असंख्य नदियाँ उमड़ा करती हैं। एक ही भूल से मनुष्य को जीवन पर्यन्त दुःखों में बहना पड़ता है।

आह छाया।

शब्दार्थ—दुर्बलता की माया=दुर्बलता का जाल। धरणी=धरती। वर्जित मादकता=ऐसा नशा जिसे करने से मना किया गया हो—भूलों में मोह होता है किन्तु वह वर्जित है। तम=अंधकार, अज्ञान।

भावार्थ—अपराध मानव समाज की दुर्बलता का ही जाल है। मनुष्य जब दुर्बलता के वशीभूत हो जाता है तभी वह बुरे रास्ते पर चलता है। भूल करने में भी एक मोहकता होती है, उसमें भी एक नशा होता है। किन्तु मनुष्य के लिए भूल का सुख वर्जित है। किन्तु जब मनुष्य भूल के सुख के सामने हार जाता है तभी वह भूल करता है। भूल तो अज्ञान की छाया है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य भूल करता है।

नील किधर से।

शब्दार्थ—गरल=विष। चन्द्र कपाल=चन्द्रमा रूपी खप्पर। निमीलित=छिपे हुए, धुँधले।

भावार्थ—जब कामायनी प्रकृति में शिव के विराट रूप का दर्शन करती

हुई उसे सम्बोधन करती है कि हे प्रभु तुमने नीले विष से भरा हुआ यह चन्द्रमा रूपी खप्पर हाथ में पकड़ा हुआ है। तुमने अपने नयन बन्द कर रखे हैं। किन्तु जिस प्रकार धु धले तारों से रात्रि छिटक रही है, उसी प्रकार तुम्हारे बन्द नयनों में भी शान्ति का सागर लहर रहा है।

तुम सारे विश्व का जहर पी रहे हो। जब सारा विष तुम पान कर लोगे तो संसार फिर से विकसित हो जाएगा। किन्तु तुम जो इतना विष पीकर भी शान्त बने रहते हो इसका क्या रहस्य है ? तुम्हें यह अक्षय शान्ति कहाँ से प्राप्त होती है।

अचल भिखारी।

शब्दार्थ—अचल=शान्त। अनंत लहरीं पर=अन्धकार से घिरे शान्त नीले आकाश पर। श्रम कण = पसीने की बूंद। छाया पथ=आकाश गङ्गा। लोक-पथिक=ग्रह रूपी पथिक।

भावार्थ—हे प्रभु तुम शान्त अंधेरे आकाश पर आसन लगाए हुए बैठे हो। तारे तुम्हारे शरीर से झरती हुई पसीने की बूंदों के समान दिखाई देते हैं। हे देव ! तुम कौन हो ?

आकाश गंगा के मार्ग से जो, असंख्य ग्रहरूपी पथिक तुम्हारे दर्शनों के लिए चले आ रहे हैं क्या वे तुम्हारे चरणों पर कर्म रूपी फूलों की अंजलि चढ़ा पाते हैं ?

यात्रिक बड़े दूर-दूर से भगवान के दर्शनों को आते हैं और उनके चरणों पर फूल चढ़ाकर अपने जीवन को धन्य मानते हैं। यहाँ भक्त ग्रहों को यात्रियों के रूप में देखती है।

किन्तु ये ग्रह रूपी पथिक कहाँ सफल हो पाते हैं। तुम्हारी दुर्लभ स्वीकृति उन्हें कहाँ मिल पाई। तुमने उनकी भेंट अस्वीकार कर दी। और जिस प्रकार भिखारियों को कोई नित्य ही बिना भिक्षा दिए वापिस कर देता है, वैसे ही तुम भी उन्हें नित्य ही वापिस कर देता है वैसे ही तुम भी उन्हें नित्य ही वापिस कर देते हो और वे फिर तुम्हारे दर्शन की आशा पर चल देते हैं।

प्रखर भरते क्या ?

शब्दार्थ—प्रखर = उग्र। विनाशशील=नाश में तत्पर। नत नम्र=नम्र।

विपुल = अनन्त। माया = शक्ति।

भावार्थ—इस संसार में प्रति क्षण नाश का नृत्य हो रहा है। सभी वस्तुएँ नाश के गर्भ में प्रविष्ट होती जा रही हैं। किन्तु अनन्त संसार की शक्ति उस शिव की काया बनकर प्रतिक्षण नवीन रूपों में प्रकट हो रही है। जहाँ निरन्तर नाश हो रहा है वहाँ अनवरत सृजन भी हो रहा है।

क्या भूल का भी जीवन में कोई महत्व है? क्या व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही भूल किया करता है? क्या जीवन में नवीन शक्ति का संचार करने के लिए ही मनुष्य बार बार जन्म लेकर मरता रहता है?

यह कहा जाता है कि जब तक मनुष्य भूलें नहीं करता तब तक उसे जीवन का पूर्ण अनुभव नहीं हो पाता। मरण में भी विकास छिपा ही रहता है। किन्तु क्या यह सत्य है?

यह   निर्ममता!

शब्दार्थ—महा गतिशाली=अत्यन्त तीव्र गति से चलने वाला। थकता क्या=शान्त नहीं होता क्या। चिर मंगल = स्थायी कल्याण। विराग सबध= घृणा। निर्ममता।

भावार्थ—क्या यह भूलों की क्रिया और मरण का तीव्र व्यापार कहीं भी शान्त नहीं होता? क्या यह सदैव चलता ही रहेगा? क्या ये जो क्षणिक विनाश हैं इनमें मानव जाति का स्थायी कल्याण निहित रहता है?

किन्तु हृदय की जो घृणा आज मनु के आचरण में दिखाई दी है क्या यह मानवता की विशेषता है? क्या अपने सुख के लिए पशु की हिंसा कर मनु ने मानवता का परिचय दिया है? क्या एक प्राणी के मन में दूसरे प्राणी के लिए केवल निर्दयता ही बची है?

जीवन   पायेगा!"

शब्दार्थ—रोदन=विलाप। परिकर=कमरबन्द। गरल = जहर।

भावार्थ—एक के जीवन का सन्तोष दूसरे का दुःख क्यों बन जाता है? क्या यह आवश्यक है कि एक के सुख के लिए दूसरा पीड़ा सहे? प्रत्येक विश्राम प्रगति को कमरबद के समान क्यों बाँध देता है? विश्राम क्यों जीवन की गति को आबद्ध कर लेता है।

एक प्राणी का कठोर व्यवहार दूसरा प्राणी कैसे भूल जाएगा ! दूसरे के अपकारों को भूलने का क्या उपाय है। मनुष्य विष को कैसे अमृत बना सकेगा। अपकार तो विष के समान है और उसको भुलाकर अपकारी से प्रेम करना अमृत के समान है। अपकारी के अपकार को भुलाकर कोई उससे कैसे प्रेम कर सकेगा !

जाग   तिरता।

शब्दार्थ—सरल वासना = सशक्त वासना। मादकता=नशा—यामरस का। मसृण=मृदुल। भुजमूल=बगल। उन्नत वक्ष=उठी हुई छाती। तिरता= तैरता।

भावार्थ—मनु के मन में वासना सशक्त होकर जाग उठी थी। उस वासना में नशा भी मिला हुआ था जिससे मनु और भी उत्तेजित हो उठे। उस उत्तेजित अवस्था में भला कौन मनु को श्रद्धा के पास आने से रोक सकता था !

मनु उठकर श्रद्धा की गुफा में आए। वह सो रही थी। उसके नग्न भुज मूलों से मनु को मोद का निमन्त्रण सा मिलता था। उन्हें देखकर उनकी वासना और भी तीव्र हो उठी। श्रद्धा के उन्नत वक्ष को देखकर मनु को आलिंगन की इच्छा होती थी। आलिंगन श्रद्धा के वक्षस्थल पर सुख की लहरों के समान तैरता प्रतीत होता था। आलिंगन में अबाध सुख दिखाई देता था।

नीचा   नारी।

शब्दार्थ—यौवन=वक्ष। हिमकर=चन्द्रमा। हास=चाँदनी। जाग्रत था सौंदर्य=सौंदर्य निखरा हुआ था। रूप-चन्द्रिका = सौंदर्य रूपी चाँदनी—रूपक अलंकार। निशा सी=रात-सी,—उपमा अलङ्कार।

भावार्थ—श्रद्धा का वक्षस्थल श्वासों के कारण नीचा होकर फिर बार बार ऊपर उठ रहा था। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्रमा की चाँदनी के कारण सागर में ज्वार उठ रहा हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार। श्रद्धा क

वक्षस्थल का धीरे धीरे उठना मनु के जीवन में भी तूफान पैदा कर रहा था यह बात भी यहाँ ध्वनित है।

यह कोमलाङ्गी श्रद्धा सो रही थी किन्तु उसका सौंदर्य फिर भी निखर रहा था। श्रद्धा का सौंदय स्वाभाविक था इसलिए जब वह निद्रा में अचेत थी, तब भी उसके आकर्षण में कोई कमी नहीं आती था। जिस प्रकार काली रात को चाँदनी उज्ज्वल कर देती है और उसे सुन्दर बना देती है, उसी प्रकार नीचे चम धारण करने वाली यह श्रद्धा भी सौन्दर्य की चाँदनी से उद्दीप्त थी।

थे पिरोती।

शब्दार्थ—मांसल परमाणु=श्रद्धा के शरीर के परमाणु, अभिप्राय यह है कि श्रद्धा के सारे शरीर से ही बिजली सी निकल रही थी। विद्युत = बिजली। अलक = बाल। विगत विचार=बीते हुए विचार, थोड़ी देर पूर्व ही श्रद्धा मनु के आचरण से क्षुब्ध होकर विविध विचारों में उलझी हुई थी। श्रम सीकर=पसीने की बूंद। करुण कल्पना = सारे संसार पर करुणा करने की कल्पना।

भावार्थ—श्रद्धा के सारे शरीर से किरणें-सी फूट रही थीं। और सौन्दर्य की ये किरणें मनु के हृदय में बिजली पैदा कर रही थीं। श्रद्धा के बाल बड़े सुन्दर थे। उन्हें देखकर समग्र जीवन उनकी डोरी में उलझ जाता था। देखने वाला सदैव के लिए श्रद्धा के केश जालों में उलझ कर रह जाता था।

थोड़ी देर पूर्व ही श्रद्धा मानवता के सम्बन्ध में विचार कर रही थी। उन विचारों में मग्न रहने के कारण श्रद्धा के मुख पर जो पसीने की बूँदें आगई थीं वे मोतियों के समान चमक रहीं थीं। श्रद्धा के मुख पर सम्पूर्ण विश्व के लिए करुणा का भाव बिकीर्ण होरहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो करुण कल्पना उन पसीने की बूंदों के मोतियों को पिरो रही है।

अभिप्राय यह है कि उन पसीने की बूदों के मूल में विश्व का प्रेम है। मानवता से प्रेम होने के कारण ही तो श्रद्धा मनु की हिंसा से क्षुब्ध हो गई थी।

छूते तना था।

शब्दार्थ—कंटकित=रोमांचित। वेली=लता, शरीर-रूपकातिशयोक्ति

अलंकार। स्वस्थ व्यथा=एक दुख जो रोग के कारण होता है, किन्तु श्रद्धा का दुख रोग आदि के कारण नहीं था। वह स्वयं स्वस्थ थी। उसका दुख संसार के कल्याण के लिए था। इसलिए उसके दुख के लिए स्वस्थ व्यथा का प्रयोग किया गया है। पागल सुख=भोग का सुख जो मनुष्य को पागल कर देता है। विराट=सबसे महान वस्तु। वितान = शामियाना।

भावार्थ—श्रद्धा एक लता के समान धरती पर लेटी हुई थी जैसे ही मनु उसका स्पर्श करते थे वह रोमांचित हो उठती थी। श्रद्धा के शरीर में विश्व कल्याण के लिए चिन्ता की लहरें उठ रही थीं।

आज मनु के लिए भोग का सुख ही संसार की सब से महान् वस्तु थी। इस समय मनु के लिए सारा संसार तुच्छ था। उस गुफा में अंधेरे से युक्त प्रकाश का एक शामियाना सा टँगा था। गुफा का वातावरण धुंधला था।

कामायनी नाता है।

शब्दार्थ—मनोभाव=हृदय का भाव।

भावार्थ—मनु के स्पर्श से कामायनी की नींद कुछ दूर हो चुकी थी। किन्तु उस समय उसकी चेतना कुछ कार्य नहीं कर रही थी। वह बेसुध सी हो रही थी। उसके हृदय का भाव अपने आप ही उसके मुख पर कभी आ जाता था और कभी फिर लुप्त होता था। यहाँ हृदय के भाव से कवि का तात्पर्य मनु के प्रति क्रोध से है जैसा कि आगे के छन्द से स्पष्ट होता है।

वही व्यक्ति अपने से दूर जाता है जिसका हृदय हमेशा हमारे पास होता है। जीवन में अनेक व्यक्ति आते है और चले जाते हैं। किन्तु हम सभी की दूरी का अनुभव नहीं करते, सभी के चले जाने पर उन्हें याद नहीं करते। हमें केवल उन्हीं की दूरी का अनुभव होता है जिनसे हमें प्रेम होता है, जिनका हृदय हमारे हृदय से मिला होता है। और मनुष्य को क्रोध भी उसी पर आता है जिससे हमारा कुछ सम्बन्ध होता है। अनेक व्यक्ति भूलें करते हैं किन्तु हमें सब पर क्रोध नहीं आता। किन्तु जब अपना प्रिय व्यक्ति भूल करता है तो उस पर क्रोध आता है।

प्रिय से भी।

शब्दार्थ—माया=ममता। प्रथम-शिक्षा=प्रेम की शिक्षा। प्रत्यावर्तन=

लौटाना। बलदागम=बादलों का आगमन। मारुत=पवन। पल्लव=कोंपल।
कर=हाथ।

भावार्थ—जब प्रेमिका अपने प्रिय को ठुकरा देती है, तब भी वह अपने मन की ममता में उलझ जाती है। ऊपर से रूठने पर भी उसके हृदय का प्रेम नष्ट नहीं होता वरन् वह और भी तीव्र हो जाता है। जिस प्रकार वायु के झोंके को चट्टान लौटा देती, है उसी प्रकार प्रेम की शिला प्रेमिका को फिर से प्रेमी की ओर उन्मुख कर देती है। वह अपने प्रेम से टकरा कर फिर प्रेमी के पास पहुँच जाती है।

उस समय श्रद्धा प्रेम के आवेश में काँप रही थी। उसकी हथेली बादल को उठाकर लाने वाली वायु में काँपती हुई कोंपल के समान ही काँप रही थी। मनु ने धीरे से श्रद्धा की काँपती हुई हथेली को अपने हाथों में ले लिया।

अनुनय सुनाओ।

शब्दार्थ—अनुनय = विनय। उपालम्भ = शिकायत। छाया=प्रभाव। अतीत=बीता हुआ युग, यहाँ मनु का संकेत देव सभ्यता की ओर है जिसमें स्वच्छन्द प्रणय गीत चलते थे।

भावार्थ—मनु के वचनों में विनय की भावना छलक रही थी। उनके आँखों में शिकायत भरी थी। इस प्रकार मनु श्रद्धा से बोले कि आज मान वती ने कैसा मान रचाया है। आज तुमने मानकर के कैसा रूप बनाया है।

हे अप्सरे! मैंने जो स्वर्ग बनाया है, तुम उसे नष्ट मत करो। तुम भी मेरे साथ मिलकर जीवन में आनन्द का उपभोग करो। आज तुम फिर बीते हुए समय के नवीन गीत सुनाओ। मैं जिस प्रकार प्रलय से पूर्व आनन्द में मग्न रहता था उसी प्रकार आज फिर तुम मुझे स्वीकार कर लो।

इस भाग।

शब्दार्थ—निजन=एकान्त। ज्योत्सना पुलकित=चाँदनी से पुलकित (आकाश)—मानवी करण। विधु युत नभ=चन्द्रमा से युक्त आकाश। भोग्य=भोग करने योग्य। दोनों कूलों में=दोनों किनारों में, मनु और श्रद्धा के बीच।

भावार्थ—यहाँ एकान्त है, कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। आकाश चन्द्रमा

से युक्त है और चाँदनी से रोमांचित सा प्रतीत होता है। यहाँ व्यंजना द्वारा आकाश और ज्योत्सना का प्रिय और प्रेमिका द्वारा वर्णन है। इस सुन्दर आकाश के नीचे हम और तुम बस दो व्यक्ति ही हैं। तुम आँखें बन्द करके इस प्रकार मत लेटी रहो।

यह संसार आश्चर्य से भरा हुआ है। चारों ओर सौंदर्य बिखरा हुआ है। यह संसार केवल हमारा ही भोग्य है, यह हमारे आनन्द के लिए ही है। जिस प्रकार दो किनारों के बीच नदी बहती है, उसी प्रकार मेरे और तुम्हारे बीच वासना की धारा बहती रहे।

बहता है।

श्रम

शब्दार्थ—श्रम=थकावट। अभाव=कमी। भीरुता चेतनता=क्षोभ की चेतना। स्वर्ग की घन अनंतता=अक्षय स्वर्ग सुख।

भावार्थ—इस संसार में हमें परिश्रम करना पड़ता है, हम थके रहते हैं। संसार में अभाव है जिनके कारण हम व्याकुल रहते हैं। हम इन सबको और अपनी क्षोभ की भावना को जिस समय बिल्कुल भूल सकें।

वही क्षण मेरे हृदय में अक्षय स्वर्ग सुख बन कर मुस्कराता है। जिस्न के क्षणों में हम जीवन के सभी अभावों का और दुःखों का भूल जायेंगे, इस लिए इस समय मेरी आँखों के सामने वही क्षण मंडरा रहा है। प्रेम की दो बूँदों में ही जीवन का सारा आनन्द संचित है।

झूलो।"

देवों

शब्दार्थ—मधु मिश्रित=शहद से युक्त। अधर=होंठ। मादकता दोला= मस्ती का झूला।

भावार्थ—हे श्रद्धा! तुम देवों को अर्पित किए गए और शहद से युक्त सोम से भरे पात्र को पी लो। और इसके बाद तुम भी मेरे साथ मिलकर मस्ती के झूले पर झूलो। हम और तुम दोनों मस्ती में डूब जाएँ।

छलकता।

श्रद्धा

शब्दार्थ— मधुर भाव=प्रेम का भाव। रस छलकना=रस भरना।

भावार्थ—श्रद्धा जाग रही थी, मनु के सब वचन सुन रही थी। किन्तु फिर भी वह मस्ती में डूबी थी। प्रेम के भाव ने उसके हृदय में और उसके शरीर में माधुरी भर दी थी।

बोली ... रचेगा!

शब्दार्थ—सहज मुद्रा=स्वाभाविक मुद्रा। नूतन=नवीन।

भावार्थ—श्रद्धा स्वाभाविक मुद्रा से मनु से कहने लगी कि तुम आज यह कैसी बातें कर रहे हो! आज तो तुम एक प्रकार की बातें कर रहे हो, आवेश के कारण मेरी अनुनय कर रहे हो

किन्तु कल ही यदि तुम में परिवर्तन होगा, तो फिर मेरा तो नाश ही हो जाएगा। यह हो सकता है कल तुम मुझसे विमुख हो जाओ, अपना कोई नवीन साथी ढूँढ निकालो और नवीन यज्ञ की रचना करो।

और ... फीके!

शब्दार्थ—अचल जागती=स्थिर संसार। फीके=तुच्छ।

भावार्थ—और हो सकता है कि कल तुम किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए किसी और प्राणी की बलि दो। इस प्रकार के यज्ञों में कितना धोका भरा है। इन यज्ञों से तो केवल हमें अपना ही सुख प्राप्त होता है। केवल अपने सुखों के लिए ही तो तुम प्राणियों की बलि देते हो।

इस स्थायी संसार के जो प्राणी बचे हुए हैं क्या उनका कोई अधिकार नहीं है? क्या वे सब तुच्छ हैं? क्या उनको जीने का अधिकार भी नहीं है?

श्रद्धा के इन वचनों में अहिंसा का स्पष्ट प्रभाव है। इसे हम प्रसादजी पर वर्तमान समाज का प्रभाव भी कह सकते हैं। श्रद्धा के इन शब्दों में और महात्मा गांधी के उपदेशों में विशेष समानता है।

मनु ... शवता!

शब्दार्था—उज्ज्वल=महान। हत=दुख का प्रकाशक शब्द। शवता=मृत्यु।

भावार्थ—हे मनु! क्या यही तुम्हारी नवीन और महान मानवता होगी जिसमें मनुष्य सब का सब कुछ लेने का प्रयास करेगा! अपने सुख के लिए अन्य प्राणियों का बलिदान करेगा! क्या केवल मृत्यु ही शेष बचेगी! क्या

जीवन के विकास के लिए कोई स्थान नहीं होगा !

"तुच्छ   कुछ है।

शब्दार्थ—तुच्छ=हेय । चरम=सबसे अधिक मूल्य वाला ।

भावार्थ—हे भद्रा ! अपना सुख भी तो हेय नहीं है । मनुष्य के अपने सुख का भी तो कुछ महत्व होता ही है । यह जीवन तो दो दिन का है, नश्वर है । इस नश्वर जीवन में अपना सुख ही तो सब कुछ है । जब तक जीवन है तब तक तो सुख प्राप्त करना चाहिए ।

इन्द्रिय   कहती हो !

अब मनु अपने सुख का वर्णन करते हैं ।

शब्दार्थ—सतत=निरन्तर । सफलता=तृप्ति । तृप्ति विलासिनि=विलास का हर्ष । रोम हर्ष हो=पुलकित हो । ज्योत्स्ना=चाँदनी । मृदु मुस्क्यान खिले तो=मुस्कुराहट हो । विश्व माधुरी = संसार की सुषमा । मुकुर बनी रहती हो = शीशा बनी रहती हो, अपने सुख को प्रतिबिम्बित करती हो ।

भावार्थ—जिस सुख में इन्द्रियों की कामना निरन्तर तृप्त होती रहे और जहाँ सन्तोष हृदय विलास में हर्षित होता रहे,

चाँदनी की छाया में शरीर रोमांचित हो उठे, होठों पर मधुर मुस्कान फैल जाए और आशाओं की पूर्ति के लिए मेरे और तुम्हारे श्वास एक दूसरे से मिल रहे हों,

जिस सुख को संसार की सुषमा शीशे के समान अपने में प्रतिबिम्बित करती हो, उसे और भी उद्दीप्त करती हो, क्या वह अपना सुख स्वर्ग नहीं है ! तुम यह कैसी बातें कर रही हो !

जिसे   होता है।

शब्दार्थ—हिम-गिरि = हिमालय । बड़ा अभाव = प्रेम का अभाव । स्वर्ग गन हँसता=स्वर्गीय सुख की ओर आकर्षित करता है । योग = मिलन । छली=धोखेबाज । अदृष्ट = भाग्य ।

भावार्थ—मैं जिस प्रेम के सुख को इस हिमालय के अंचल में खोजता

हुआ घूम रहा हूँ, वही भाव मेरे इस परिवर्तनशील जीवन में स्वर्गीय सुख का रूप धारण कर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। अभाव अपनी पूर्ति के लिए विकल रहता है। मनु के जीवन में प्रेम का अभाव है, उनकी कामना अतृप्त है। कामना की यह अतृप्ति उन्हें तृप्ति की ओर आकर्षित करती है।

मेरे वर्त्तमान जीवन म जब कभी सुख की प्राप्ति होने वाली है, पता नहीं वहीं क्यों भाग्य अभाव के रूप में प्रकट होता है। मेरा भाग्य ही मेरे सुख में बाधक है।

किंतु नहीं तो!

शब्दार्थ—सकल कृतियों की=समस्त रचनाओं की।

भावार्थ—संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब हमारे उपभोग के लिए ही तो हैं। हमारे सन्तोष के लिए ही तो उनका निर्माण हुआ है। यदि हम सृष्टि का उपभोग नहीं करते और हमारी कामनाएँ प्यासी रह जाती हैं, तो हमारा जीवन असफल ही है।

एक होंगी।

शब्दार्थ—अचेतनता = मूढ़ता। यह भाव = स्वार्थ का भाव। सृष्टि ने फिर से आँखें खोलीं=प्रलय के पश्चात संसार का फिर से विकास आरंभ हुआ है। भेद बुद्धि=अपने और पराए का भेद करने वाली बुद्धि। निर्मम ममता= निष्करुण प्रेम, केवल अपनी तृप्ति को उद्देश्य मान कर चलने वाला प्रेम। प्रलय पयोनिधि=प्रलय का सागर।

भावार्थ—तब श्रद्धा बड़ी विनम्र वाणी में बोली। उसके शब्दों ने मनु को मूढ़ सा बना दिया। उसने कहा कि यह समझ कर कि अभी स्वार्थ लिप्सा बची हुई है, संसार का विकास हुआ है। श्रद्धा यह मनु पर व्यंग ही कर रही है। अभिप्राय यह है कि प्रलय से पूर्व की सभ्यता का नाश देवताओं की स्वार्थ लिप्सा के कारण ही हुआ था। और अब प्रलय के पश्चात् जो संसार का विकास हुआ है वह भी मनु की स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति के उद्देश्य से हीं

है। श्रद्धा का व्यंग आगे के छन्द में भी चलता है।

हाँ ठीक है प्रलय के पश्चात भी अपने पराये में भेद करने वाली चेतना, और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही प्रेम करने की भावना भी बची ही हुई है। और अब तो प्रलयंकर सागर की लहरें भी शान्त हो गई हैं। इसलिए तुम निश्शंक होकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकते।

श्रद्धा मनु को यह समझाना चाहती है कि सृष्टि का नया विकास स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति के लिए या ईर्ष्या और द्वेष को पल्लवित करने के लिए नहीं हुआ है।

इसके पश्चात श्रद्धा सीधे शब्दों में मनु को समझाती है।

अपने मनाओ।

शब्दार्थ—एकान्त स्वार्थ = केवल अपना स्वार्थ। भीषण = मय कर।

भावार्थ—सारे संसार को अपने सुख का साधन मानकर चलने पर व्यक्ति कैसे अपना विकास कर पाएगा? जो अपने को संसार की सब रचनाओं का स्वामी समझता है उसका जीवन उन्नत नहीं हो सकता। इस प्रकार का एकांगी स्वार्थ बड़ा भयंकर है और इसमें उलझ कर मनुष्य स्वयं ही अपना नाश कर लेगा।

हे मनु! तुम दूसरों को प्रसन्न देखो और स्वयं भी प्रसन्न रहो। दूसरों के हर्ष में अपना हर्ष समझो। अपने सुख की भावना को व्यापक बना लो ताकि उसमें सारे संसार का सुख आजाए। केवल व्यक्तिगत सुख में मत उलझो। सारी सृष्टि के साथ तादात्म्य करो और सब के सुख में ही अपना सुख समझो।

रचना मोड़ोगे।

शब्दार्थ—रचना मूलक=निर्माण करने वाला। सृष्टि-यज्ञ=संसार रूपी यज्ञ। संसृति सेवा=संसार की सेवा। इतर=अन्य।

भावार्थ—यह संसार यज्ञ करने वाले परम पुरुष का निर्माण शील यज्ञ है। तुम हिंसामूलक यज्ञों के बन्धन में मत पड़ो। इस संसार रूपी विराट यज्ञ की सफलता के उपाय करो। इस यज्ञ में हमारा भी एक महान कर्तव्य है। और वह है संसार सेवा। संसार की सेवा द्वारा ही हम इस विराट यज्ञ का

विकसित कर सकते हैं, उसे अधिक आनन्दमय बना सकते हैं।

क्या सारा सुख तुम अपने में ही सीमित कर लोगे ? क्या शेष प्राणियों के लिए केवल दुःख ही दुख छोड़ोगे ? क्या उनकी पीड़ा से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं ? क्या तुम सदैव दूसरों के दुख की उपेक्षा ही करोगे ?

ये लाओगे।

शब्दार्थ—मुद्रित=सपुटित। दल = पत्ता। सौरभ=सुगन्धि। मकरंद = पुष्प रस। आमोद=हर्ष। मधुमय = रसमय। वसुधा=धरती।

भावार्थ—यदि ये सपुटित कलियाँ विकसित न हों और सारी सुगन्धि को अपने में बन्द करलें, खिलकर यदि ये पुष्ट रस से मधुर न बनें, तो य उसी प्रकार, अपने संपुटित रूप में ही मर जाएंगी।

ये बंद कलियाँ बिन खिले सूख जाएँगी और झड़ जाएँगी। तब केवल कुचली हुई मुरझाई हुई सुगन्धि ही प्राप्त होगी। यदि ऐसा ही है तो संसार में वसत का विकास कैसे होगा, आनन्दमय उत्सव कैसे होंगे।

इसी प्रकार यदि मनुष्य भी सारे सुख को अपने भीतर समेट ले अपने सुख को व्यापक न बनाए, तो वह उसी सकुचित भावना को लिए हुए जीवन यात्रा समाप्त कर देगा। और जब सभी व्यक्ति जीवन पर्यन्त अपने सुख का साधन ही करते रहें, तो संसार की उन्नति कैसे होगी, उसमें आनन्द का सचरण कैसे होगा। ससार को सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख को त्याग कर विश्व सुख के लिए प्रयत्नशील रहे।

सुख खिलेगा।

शब्दार्थ—सग्रह मूल=सचित करने के लिए। प्रदर्शन=दिखाना दूसरों तक पहुँचाना। निर्जन = एकान्त। प्रमोद = आनन्द। सुमन=फूल।

भावार्थ—सुख अपने सन्तोष के लिए ही संचित करने योग्य नहीं है। उसमें एक प्रदर्शन का भी भाव है। दूसरों को सुखी करने का भी भाव है। दूसरे जिस सुख को देखकर सुखी हों वही सच्चा सुख है।

इस एकान्त स्थान में क्या तुम अकेले ही सुख भोग सकते हो ? इस सुख से तुम्हें क्या लाभ होगा ? तुम्हारे इस सुख से तो किसी दूसरे के हृदय की कोई इच्छा पूर्ण नहीं होगी, उसे तो कोई सुख प्राप्त नहीं होगा !

सुख .... धारा ।"

शब्दार्थ—सुख समीर=सुख का पवन । संसृति=संसार ।

भावार्थ—चाहे सुख पवन के स्पर्श से तुम्हारा एकान्त जीवन सुखी हो जाए, किन्तु उससे विश्व-सुख में कोई वृद्धि नहीं होगी । संसार का सुख तो मानव मात्र के सुख की धारा के रूप में आगे बढ़ता है । व्यक्ति सुख से संसार का विकास नहीं होता, बरन् समाज के सुख से उसका विकास होता है ।

हृदय .... खोले ।

शब्दार्थ—उद्वेलित = कामना से उद्वेलित । मन की ज्वाला=वासना की ज्वाला । बुद्धि के बंधन को जो खोले=बुद्धि का इन विचारों से उन्मुक्त कर दे, मस्ती में डुबा दे ।

भावार्थ—श्रद्धा ये बातें तो कह रही थी किन्तु उसका हृदय कामना के वेग से उद्वेलित हो रहा था वासना की ज्वाला से इसके भी होठ सूख रहे थे ।

उधर मनु हाथ में सोमरस का पात्र लिए बैठे थे । श्रद्धा के हृदय की दुर्बलता को समझकर वे उस से बोले, श्रो श्रद्धे ! तुम इस सोमरस को पीलो । इसके पी लेने से तुम्हारी बुद्धि उन्मुक्त हो जाएगी ।

यही .... नस में ।

शब्दार्थ—सत्य = सत्य है । मनुहार=अनुनय । अवश=लाल । काल्पनिक विजय=श्रद्धा समझती थी उसकी विजय हो गई है और मनु ने उसकी बात मान ली है किन्तु यह केवल उसकी कल्पना ही थी ।

भावार्थ—मनु श्रद्धा से बोले, कि मैं वही करूँगा जो तुम कहती हो । यह तो सत्य ही है कि एकान्त सुख से क्या लाभ है ? किन्तु तुम सोमरस पीलो । जब इतनी अनुनय की जाय, तो फिर भला कैसे सोमरस पीने से इन्कार कर सकती थी ।

श्रद्धा ने अपनी आँखें मनु की आँखों से मिला दीं । उसके लाल होंठ सोमरस से भीग उठे । वह समझती थी कि मनु ने मेरी बात मान ली है इस

लिए वह अपनी इस विजय पर सुखी भी थी। किन्तु उसकी यह विजय काल्प-
निक ही थी। मनु ने केवल उसे प्राप्त करने के लिए उसकी बात मानी थी।
श्रद्धा की नस-नस में नवीन स्फूर्ति का संचार हो रहा था।

छल ... छल में।

शब्दार्थ—छल वाणी=कपट भरी बातें। प्रवचना=धोखा। हृदयों की
शिशुता को=हृदय की सरलता को, सरल हृदयों को। खेल खिलाती=अपने
इशारों पर नचाती। निर्मल विभूता=पवित्र गरिमा। प्रगति दिशा=साधना की
दिशा। मधुर संकेत=मनोहर इशारा।

भावार्थ—अब कवि कहता है कि मनु ने छल-शक्ति का सहारा लेकर
श्रद्धा को जीता था। वह छल शक्ति कैसी है :—

कपट भरे वचनों की शक्ति सरल हृदयों को अपने इशारों पर नचाती है।
पुरुष छल भरी बातें कहकर स्त्रियों के सरल हृदय को वश में कर लेते हैं और
जो चाहते हैं वह करवा लेते हैं। कपट वचनों में इतनी शक्ति होती है कि वह
स्त्रियों को अपनी पवित्र गरिमा का ज्ञान भी भुलवा देती है और वे आत्म
समर्पण कर देती हैं।

छल भरी वाणी एक पल में अपने एक इशारे से ही जीवन के उद्देश्य
को बदल सकती है साधना की दशा को मोड़ सकती है। मेनका के छल भरे
वचनों ने विश्वामित्र की साधना की दिशा बिल्कुल पलट दी थी।

वही ... लेती।

शब्दार्थ—अवलंब मनोहर = मधुर सहारा। अभिनय = दिखावा,
ऊपरी भाव।

भावार्थ—मनु को भी छल भरे वचनों की शक्ति ने ही मधुर सहारा दिया
था। उसी के द्वारा वे श्रद्धा को वश में कर सके थे। छल की शक्ति अपने
दिखावे से मन को सुख में फँसा लेती है।

"श्रद्धे ... तुम से।

शब्दार्थ—चन्द्र शालिनी=चाँद से युक्त, मधुर रजनी। भीमा=भयंकर रात्रि।
सुख की सीमा=परम सुख। आवरण=पर्दा। तम=अन्धकार। अकिंचन=दरिद्र,
गतिहीन।

भावार्थ—हे श्रद्धा ! यदि तुम मेरे जीवन का परम मूल धन आशा भर प्रणय को स्वीकार कर लो, तो यह भयंकर रात्रि अत्यन्त मधुर हो जाएगी।

लज्जा का पर्दा भावा का अन्धकार से ढक देता है। हृदय भी भावनाओं को दबा देता है और अपने में तथा पराए में भेद पैदा कर देता है। यह लज्जा ही है जो तुम्हें मुझ से मिलने नहीं देती।

कुचल मिल स।

शब्दार्थ—कुचल उठा आनन्द=लज्जा ने हमारे आनन्द को मसल डाला है। अपने ही अनुकूल=जो तुम्हें भी वांछनीय है। व्याकुल चुम्बन=व्याकुल कर देने वाला चुम्बन विशेषण विपमय। धधक उठता है=वासना से भग उठता है। तृषा तृप्ति के मिस से=कामना की प्यास बुझाने व बढ़ाने स।

भावार्थ—मनु ने कहा कि इस लज्जा की बाधा के कारण ही हमारा आनन्द कुचला जा रहा है। तुम इस बाधा को दूर कर दो। तुम मुझ से मिल जाओ और अपने वांछनीय सुख का प्राप्त कर लेने दो।

और इसके पश्चात एक चुम्बन हुआ जिस से रक्त खौल उठा। उससे शीतल प्राणों में भी तृप्ति के बहाने वासना की ज्वाला भभक उठती है। वासना भी इस ज्वाला का उद्देश्य कामना की प्यास का तृप्त करना ही होता है।

दो मयन।

शब्दार्थ—काठों=लकड़ियों। संधि=मिलन। निभृत=एकान्त। अग्नि शिखा= आग की लौ, वासना की ज्वाला। जागने पर जैसे मधुर सपने—ि प्रकार जागने पर मधुर स्वप्न मिट जाते हैं उसी प्रकार भाग क पश्चात वास की प्यास शान्त हो गई।

भावार्थ—उस एकान्त गुफा के भीतर दो लकड़ियों के बीच जलने वाल आग की लौ बुझ गई। इस वर्णन के द्वारा प्रसाद जी ने बड़े कौशल के द्वार श्रद्धा और मनु के मिलन का वर्णन किया है। जिस प्रकार प्रातःकाल जाग पर मधुर स्वप्न मिट जाते हैं, उसी प्रकार मिलन के पश्चात मनु और श्रद्धा क हृदय की प्यास शान्त हो गई।

ईर्ष्या

श्रद्धा ने क्षणिक आवेश में आकर आत्म समर्पण कर दिया था। किन्तु अब उसके जीवन म निराशा ही रह गई थी। मृगया के अतिरिक्त और किसी कार्य में मनु की रुचि नहीं रही थी। मनु ने श्रद्धा को तो प्राप्त कर ही लिया था, उसमें अब कोई नवीनता नहीं थी। अब वे कुछ और प्राप्त करना चाहते थे।

अब मनु को श्रद्धा का सरल विनोद आकर्षित नहीं कर पाता था। मनु के मन में बारबार नवीन लालसा जन्म लेती थी किन्तु वह अपने आप दबकर शान्त हो जाती थी।

एक दिन मनु सोचने लगे कि मैं कब तक अपने इसी जीवन में बन्दी रहूँगा! क्या अब सारा जीवन इसी प्रकार व्यतीत हो जाएगा! अब तो श्रद्धा के प्रेम में आकुलता नहीं रही। अब उसमें न वह प्रेरणा है और न ही वह आकर्षण है। उसमें कुछ भी तो नवीनता नहीं है। उसकी वाणी में भी शांति सी रहती है उसमें भी कोई उत्साह नहीं है। कभी तो वह शालियाँ बीनती दिखाई देती है, कभी बीजों का संग्रह करती है, और कभी तकली चला-चला कर कुछ गाया करती है।

जब मनु शिकार से लौटे तो वे अपनी गुफा के द्वार से कुछ दूर ही रुक गए। उनकी आगे बढ़ने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। इसलिए वे वहीं बैठ गए और धनुष आदि आयुधों को वहीं रख दिया। उन्होंने हरिण को भी एक ओर डाल दिया।

उधर श्रद्धा यह सोच रही थी कि सन्ध्या हो गई किन्तु अभी तक मनु नहीं आए। क्या वे चंचल पशु के पीछे भागते भागते कहीं दूर तो नहीं निकल गए।

श्रद्धा के हाथों म तकली घूम रही थी। उसका मुख केतकी के गर्भ के

समान पीला हो रहा था। वह गर्भवती हो गई थी। उसके पीन पयाधरों पर ऊन की नवीन पट्टी बँधी थी। उसके मुख पर माता बनने का गर्व झलक रहा था। पुत्र-जन्म का समय निकट ही आ रहा था।

मनु ने जब श्रद्धा का यह रूप देखा तो वे कुछ बोले नहीं। उन्हें श्रद्धा का यह रूप बिल्कुल पसन्द नहीं आया। वे अधिकारपूर्ण दृष्टि से श्रद्धा की ओर देखते भर रहे। श्रद्धा मानो उनके दिल का भाव भाँपकर मुस्करा उठी।

श्रद्धा स्नेह से मनु से बोली कि तुम दिनभर कहाँ भटकते रहे। तुम्हें यह शिकार इतना प्यारा है कि इसके पीछे तुम घर को और अपने शरीर का भी भूल जाते हो। जब तुम वन में मृग के पीछे दौड़ते हो तो मैं यहाँ अकेली बैठी हुई तुम्हारी याद में तुम्हारे पाँव की ध्वनि सी सुनती हूँ।

दिन ढल गया है। पक्षी भी घोंसलों में लौट आए हैं। पक्षियों के जोड़े अपने बच्चों का मुख चूम रहे हैं। उनका घर आनन्द की ध्वनि से गूँज रहा है किन्तु मेरा घर अभी सूना है। तुम्हें ऐसी क्या कमी है जिसके लिए तुम बाहर घूमते फिरते हो?

मनु श्रद्धा से बोले कि यह ठीक है, तुम्हें कोई कमी नहीं है। किन्तु मेरा जीवन तो अभाव ग्रस्त है। सदैव स्वच्छन्द रहने वाला व्यक्ति आज जाल में फँस गया है। अब मेरे जीवन में गतिरोध उपस्थित हो गया है और मेरा जीवन शिथिल होता जा रहा है।

अब तुममें भी तो पहले जैसी प्रेम की विह्वलता नहीं रही। तुम क्यों हर समय तकली घुमाने में लगी रहती हो। क्या तुम्हें कोमल खालें नहीं मिलतीं और फिर तुम्हारे मुख पर यह कैसा पीलापन छाया हुआ है? तुम बताओ तो सही कि तुम किस के लिए वस्त्र बुन रही हो?

श्रद्धा बोली कि हिंसक जन्तुओं से अपनी रक्षा के लिए अस्त्र चलाना तो उचित है किन्तु जो निरीह प्राणी हैं जो जीकर हमारा कुछ उपकार ही करेंगे क्या उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं है? चमड़े उन्हीं के शरीर की रक्षा करें, हम अपना कार्य ऊन से चलायेंगे। जिन्हें हम प्रेम पूर्वक पाल सकते हैं उन्हें मारने की क्या आवश्यकता है। यदि हम पशु से ऊँचे हैं तो हमें ऊँचा बनकर दिखाना चाहिए।

मनु ने कहा कि मैं सहज प्राप्य-सुखों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि मैं तुम्हारी आँखों में केवल अपना ही चित्र देखूँ, तुम सदैव मुझमें ही लीन रहो। क्या तुमने जीवन का नाश नहीं देखा है ? प्रलय के पश्चात तो अब यह स्पष्ट है कि छोटे से जीवन में जितना सुख प्राप्त कर सकते हो कर लो। तुम क्यों शाश्वत कल्याण के स्वप्न देखा करती हो ? हे रानी! मैं तो यह चाहता हूं कि तुम अपना सारा प्रेम मुझे दे दो और मैं तुम्हारे प्रेम के संसार में विचरण करूँ।

श्रद्धा ने कहा कि मैं ने एक स्वर्ग बनाया है। चलकर मेरी कुटिया देखो उस गुफा के समीप ही लताओं के कुञ्ज के भीतर श्रद्धा ने फूँस की एक झोंपड़ी तैयार की थी। उसमें वायु के आवागमन के लिए वातायन भी बने थे। उसमें बेंत की लता का सुन्दर झूला भी पड़ा हुआ था। उसमें पुष्पों का पराग बिखर रहा था।

मनु आश्चर्य चकित होकर इस नवीन घर को देख रहे थे। पर उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगा और वे बोले कि तुमने किसके सुख के लिए इसका निर्माण किया है ?

तब श्रद्धा ने कहा कि घोंसला तो बन गया है किन्तु अभी इसमें कोई कलरव करने वाला नहीं है। जब तुम दूर चले जाते हो तो मैं अकेली यहाँ तकली चलाती हूँ और गीत गाती रहती हूँ। जो नया मेहमान आने वाला है उसके लिए वस्त्र तैयार करती हूँ। जब कभी तुम मृगया के लिए जाओगे तब मेरा संसार सूना नहीं रहेगा और मैं अपने शिशु से अपना मन बहलाया करूँगी। मैं उसे झूला झुलाऊँगी, उसकी क्रीड़ाओं से मेरे मन में आनन्द का सागर लहराने लगेगा।

इन बातों को सुनकर मनु बोले कि तुम तो इस में भर उठोगी और मैं वन-वन अपनी शान्ति के लिए भटकता फिरूँगा। मैं यह जलन नहीं सह सकता। मैं अकेला ही तुम्हारे प्रेम का अधिकारी हूँ। तुमने पुत्र के नाम पर मेरा प्रेम बाँटने का उपाय निकाल लिया है। मैं भिखारी नहीं हूँ जो तुम्हारे प्रेम का दान स्वीकार करूँगा। तुम सदैव अपने पुत्र में मग्न रहोगी और कभी कभी मेरी ओर भी देख लिया करोगी। किन्तु तुम मुझ पर यह कृपा नहीं

कर सकती। तुम अपने सुख में मस्त रहो, और मैं स्वतन्त्र होकर दुख ही भोगता रहूँ किन्तु मुझे यही अच्छा है। लो आज मैं सब कुछ छोड़कर यहाँ से जा रहा हूँ।

यह कहकर मनु जलता हृदय लेकर चले गए। श्रद्धा व्याकुल होकर उन्हें पुकारती ही रह गई।

इस सर्ग की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं—

१—इस सर्ग के कथोपकथन नाटकीय ढङ्ग के और सार-गर्भित हैं।

२—इस सग में मनु और श्रद्धा का चरित्र स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। जो यह कहते हैं कि कामायनी में प्रसादजी ने चरित्र चित्रण की ओर ध्यान नहीं दिया उन्हें एक बार फिर से कामायनी पढ़नी चाहिए। कामायनी में जैसा मनोवैज्ञानिक सशक्त और पूर्ण चरित्र चित्रण हुआ है, वैसा उपन्यासों में भी अधिक नहीं मिलेगा।

पल ललाम।

शब्दार्थ—स्वाधिकार = अपना अधिकार, स्वच्छन्दता। मधुर निशा = रात्रि। निष्फल=नीरस। मृगया=शिकार। ललाम=सुन्दर।

भावार्थ—एक क्षणिक आवेश में आकर श्रद्धा ने अपने हृदय की स्वच्छंदता खो दी। अब वह सदैव के लिए मनु के आधीन हो गई थी। श्रद्धा की सुन्दर रातें बीत गई थीं और अब अँधेरी रातों के समान उसके जीवन में भी नीरसता घिर आई थी। मनु अब उससे वैसा प्रेम नहीं करते थे जैसा उन्होंने आरम्भ में किया था और न ही मनु अपने वचनों का ही पालन कर सके।

अब मनु का मन श्रद्धा में नहीं लगता था। उन्हें शिकार के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं रहा था। एक बार श्रद्धा का पशु मारकर था उन्होंने उसके माँस का भक्षण किया था, उसके पश्चात अब उन्हें हिंसा का नशा लग गया। अब वह सदैव मृगों को मारकर उसके माँस से अपनी जिह्वा को तृप्त करते थे।

हिंसा धूँम।

शब्दार्थ—प्रभुत्व=अधिकार। सुख-सीमा=सुखपूर्ण अधिकार। अवसाद चीर=दुःख को दूर करके। करतल-गत=हस्तगत, प्राप्त।

भावार्थ—मनु का मन केवल हिंसा में ही अनुरक्त नहीं था। अब वो यह कुछ और भी सोच रहा था। वे अब यह चाहते थे कि उनके अधिकार विस्तृत हो जायें जिससे उनके सारे अभाव दूर हो जाएँ और उनके जीवन में आनन्द भर जाए। मनु अब अपने प्रभुत्व की सीमा को व्यापक करना चाहते थे।

जो कुछ भी मनु को प्राप्त था उसमें कोई नवीनता नहीं रह गई थी। अब उन्हें श्रद्धा की मधुर और मीठी बातें भी अच्छी नहीं लगती थीं। उन्हें उनमें दीनता और उदासी ही दिखाई देती थी।

उठती ... शान्त।

शब्दार्थ—अन्तस्तल=हृदय। दुर्ललित लालसा=उग्र कामना। कांत= आकर्षक। इन्द्रचाप-सी झिलमिल हो=इन्द्र धनुष के समान क्षण भर के लिए प्रकट होकर।

भावार्थ—मनु के हृदय में सदैव उग्र कामना जागा करती थी। मनु को उस उग्र कामना में ही आकर्षण दिखाई देता था। किन्तु जिस प्रकार आकर्षक इन्द्र धनुष कुछ देर के लिए दिखाई देता है और फिर अपने आप ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मनु की यह कामना भी अपने आप दबकर शान्त हो जाती थी।

'निज ... सूक्ति।

शब्दार्थ—उद्‌गम=उत्पत्ति, प्रगति। अलस प्राण=अलसाया हुआ जीवन। जीवन की चिर चंचल पुकार=अधिकार प्राप्त करने की शाश्वत और परिवर्तनशील कामना। त्राण=रक्षा, आश्रय। प्रणय=दाम्पत्य प्रेम। अस्तित्व =सत्ता। कुशल सूक्ति=चतुराई के वचन।

भावार्थ—मेरा जीवन कब तक अपनी प्रगति को अवरुद्ध किए हुए इसी प्रकार आलस्य में पड़ा रहेगा? मेरा जीवन बँध गया है, क्या कभी उसके ये

बन्धन नहीं टूटेंगे ! कब तक मेरे जीवन में अधिकार प्राप्त करने की शाश्वत और परिवर्तनशील इच्छा बिलखती रहेगी ? मुझे कहीं भी तो आश्रय नहीं दिखाई देता। मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे किस मार्ग से चलना चाहिए ?

अब तो मेरे जीवन में केवल श्रद्धा का प्रेम है। किन्तु उसका प्रेम बड़े सरल रूप से अभिव्यक्त होता है। उसमें आवेश और उत्तेजना नहीं है। न ही वह मेरे आलिंगन के लिए कभी आकुल होती है और न ही वह कभी प्रेम भरे मधुराई के वचन कहती है। उसका प्रेम बड़ा सरल है।

भावनामयी मरोर।

शब्दार्थ—भावनामयी स्फूर्ति=भाव की उत्तेजना, कामना का आवेश। स्मित रेखा=मुस्कुराहट। विलीन=छिपा हुआ। अनुरोध=आग्रह। कुसुमोद्गम=फूलों का खिलना। चाव भरी=आवेश भरी। लीला हिलोर=क्रीड़ा की इच्छा। मरोर=कसक।

भावार्थ—श्रद्धा की नवीन मुस्कुराहट में कामना का आवेश नहीं मिला रहता। उसकी हँसी से प्रेम की उत्तेजना नहीं, सरलता बिखरती है। न तो वह कभी आग्रह करती है और न ही कभी उल्लसित होती है। फूलों के खिलने में जैसी नवीनता होती है, उसमें वैसी नवीनता नहीं है। एक फूल खिलता है और मुरझा जाता है फिर दूसरा फूल खिलता है। इसमें नवीनता बनी रहती है। किन्तु श्रद्धा का भाव सदैव एकसा ही बना रहता है।

श्रद्धा के वचनों में कभी प्रेम का वेग नहीं होता, उसके शब्दों में मिलन की वह आतुरता नहीं व्यक्त होती जिसमें नवीनता हो और हृदय की कसक व्यक्त होती हो। श्रद्धा की वाणी में उत्साह होता ही नहीं।

इन छन्दों से यह स्पष्ट व्यक्त होता है कि मनु और श्रद्धा के चरित्र में विरोध है। मनु वासना की ओर आकृष्ट हैं, वे कामना की उत्तेजना को ही सुखद समझते हैं और श्रद्धा से इसी उत्तेजना को न पाकर खिन्न हो जाते हैं। उधर श्रद्धा में वासना की उत्तेजना नहीं वरन प्रेम का स्थायित्व है जैसा कि आगे श्रद्धा के वचनों से स्पष्ट होगा।

अब मरोर।'

शब्दार्थ—थालियाँ=धान। श्रान्त=थकी। श्रशान्त=थकी। अस्तित्व = सत्ता। अतीत=बीत गई, महत्वहीन हो गई।

भावार्थ—अब भी देखो, या ता श्रद्धा निरन्तर धानें बीना करती है और अपने इस काम से थकती ही नहीं है और या अन्न एकत्रित किया करती है। अपने इस कार्य-भार से वह कभी मलिन भी नहीं होती।

वह बीजों का संग्रह करती है और साथ ही गीत गाती हुई तकली चलाया करती है उसके पास तो सब कुछ है, जो कुछ वह चाहती है वह सब उसे मिल गया है किन्तु मेरी सत्ता बिल्कुल विलीन हो गई है।

लौटे तीर।

शब्दार्थ—मृगया=शिकार। मृग = हरिण। शिथिलित=थका हुआ। उपकरण = साधन। आयुध=अस्त्र। प्रत्यंचा=धनुष की डोरी। शृंग = सींग का बाजा।

भावार्थ—मनु शिकार से थक कर वापस लौटे थे। सामने ही उन्हें गुफा का द्वार दिखाई देता था। किन्तु थकावट के कारण अब और आगे बढ़ने की इच्छा नहीं होती थी। और वे यह सोचते थे कि आगे बढ़े या नहीं।

फिर उन्होंने वहीं पर हरिण डाल दिया और धनुष भी पटक दिया। थक कर वे भी बैठ गए। शिकार के सारे साधन अस्त्र, डोरी, सींग का बाजा और तीर आदि सब इधर उधर बिखरे हुए थे।

"पश्चिम धूम।

शब्दार्थ—रागमयी=लाल। चपल जंतु=चञ्चल पशु। अनमनी=उदास। अलकें=बाल। गुल्फ = एड़ी के ऊपर की गाँठ।

भावार्थ = उधर श्रद्धा यह सोच रही थी कि पश्चिम दिशा में संध्या की लालिमा विलीन हो गई है और अब अँधेरा छाने लगा है किन्तु अब तक वे वापिस घर नहीं आए। क्या वे किसी चञ्चल पशु का पीछा करते-करते दूर निकल गए।

श्रद्धा अपने मन में यह सोच रही थी। उसके हाथों में तकली घूम रही थी अब वह कुछ-कुछ उदास हो गई। उसके बाल इतने लम्बे थे कि एड़ी ऊपर के भाग का स्पर्श कर रहे थे।

केतकी साज।

शब्दार्थ—केतकी गर्भ=केतकी पुष्प के भीतर का भाग जिसका रंग पीला होता है। कृशता=दुबलता। लतिका-सी=लता के समान-उपमा मालुल बोझ=श्रद्धा शीघ्र ही माँ बनने वाली है इसलिए उसके स्तन दूध से भारी हो गए हैं। पयोधर=स्तन। पीन=उभरे हुए। नव पट्टिका=नवीन पट्टी। रुचिर साज=सुन्दर वस्त्र।

भावार्थ—श्रद्धा का मुख केतकी के भीतरी भाग के समान पीला था। उसके नयनों में थकावट के कारण आलस्य था किन्तु साथ ही उनमें मनु का प्रेम झलक रहा था। उसके शरीर में नवीन दुर्बलता और लज्जा के दर्शन हो रहे थे। उसका शरीर कंपित लता के समान दिखाई देता था।

श्रद्धा शीघ्र ही माँ बनने वाली है। उसके स्तनों में दूध उतर आया है जिसके कारण वे भारी हो गए हैं। श्रद्धा ने अपने स्तनों को कोमल और ऊन की नई पट्टी से बाँध रखा था जो उसके शरीर पर बड़ी सुन्दर मालूम होती थी।

सोने मलीन।

शब्दार्थ—सिकता=रेत। कालिंदी=यमुना। उल्लास=हिलोर। स्वर्गङ्गा=आकाश गंगा। इंदीवर=नील कमल। कर रही हास=शोभा दे रही है। कटि=कमर। नवल वसन=नया वस्त्र। दुर्बर=क्षीण। सलील=लीला युक्त, सहज।

भावार्थ—उसके स्तनों पर बँधी हुई नीली पट्टी ऐसी प्रतीत होती थी मानो सोने की धूल के बीच यमुना हिलोर लेती हुई बह रही है। मानो उसका शरीर सोने की धूल के समान है और नीली पट्टी यमुना है।

ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश गंगा में नील कमलों की एक पंक्ति सुशोभित है। यहाँ कवि ने श्रद्धा के शरीर को आकाश गङ्गा माना है और नील कमलों की पंक्ति। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

भद्धा की कमर में भी वैसा ही नया पतला नीला वस्त्र लिपटा हुआ था। इस समय भद्धा को गर्भ की तीव्र पीड़ा हो रही थी किन्तु वह भावी माता उसे सहष सहन कर रही थी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शीघ्र ही श्रद्धा के यहाँ सन्तान का जन्म होने वाला है।

श्रम अनुप।

शब्दार्थ—श्रम विन्दु=पसीने की बूंद। भावी जननी=बनने वाली माँ। सरस गर्व=मधुर अभिमान। कुसुम=फूल। भू पर=धरती पर। महा पर्व=महान उत्सव, सन्तान के जन्म का समय। खेद=विषाद, खिन्नता। अपनी इच्छा दृढ़ विरोध=श्रद्धा का यह रूप मनु के अभीप्सित रूप से बिल्कुल विपरीत था, वे बनाव सिंगार चाहते थे, आकर्षण चाहते थे जो श्रद्धा के उस रूप में नहीं था। अनूप=नवीन।

भावार्थ—श्रद्धा के मुख पर पसीने की बूंद दिखाई दे रहीं थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे होने वाली माता के मधुर अभिमान की अभिव्यक्ति हैं। श्रद्धा को माँ बनने का गौरव प्राप्त होने वाला था। सन्तान के जन्म का महान उत्सव निकट आगया था। उसके स्वागत में पसीने की बूंदें फूल बन बन कर धरती पर बिखर रही थीं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

मनु ने श्रद्धा के उस रूप को देखा जिसमें स्वाभाविकता थी और साथ गर्भ पीड़ा के कारण खिन्नता भी। मनु को यह रूप बिल्कुल पसन्द नहीं आया क्योंकि वह उनकी इच्छा के विपरीत था। वे चाहते थे कि श्रद्धा नित्य नवीन बनाव सिंगार किया करे और उसमें नित्य नवीन आकर्षण दिखाई दें। उन्हें श्रद्धा के इस रूप में नवीन भावों के दर्शन नहीं हुए।

वे विचार।

शब्दार्थ—साधिकार=अधिकार की भावना से।

भावार्थ—मनु श्रद्धा के उस रूप को देखकर कुछ भी नहीं बोले मग्न चुपचाप उसकी ओर अधिकार भरी दृष्टि से देखते रहे। श्रद्धा धीरे से मुस्कुरा उठी। ऐसा प्रतीत होता था मानों उसने मनु के भावों को पढ़ लिया है।

'दिन ... ... अशान्त !

शब्दार्थ—देह = शरीर। गेह = घर। पद ध्वनि = चलने की ध्वनि। कानन=वन।

भावार्थ—श्रद्धा प्रेम में भर मनु से बोली कि तुम दिनभर कहाँ भटकते रहे ? तुम्हें इस मृगया से इतना अधिक प्रेम है कि इसके पीछे तुम अपने शरीर को और अपने घर को भी भूल जाते हो।

मैं यहाँ अकेली बैठी हुई तुम्हारा रास्ता देखती रही। जब तुम वन में मृग के पीछे तीव्रता से भागते हो, तो मैं तुम्हारे भागने की ध्वनि सी सुना करती हूँ।

वैसे तो श्रद्धा तक मनु की पद ध्वनि सुनाई नहीं दे सकती। किन्तु श्रद्धा मनु के विचार में इतनी तल्लीन रहती है कि उसे उनकी पद ध्वनि भी सुनाई सी देने लगती है।

ढल ... ... द्वार !"

शब्दार्थ—ढल गया=छिप गया। दिवस=दिन। रक्ताक्त=रक्त से लाल। नीड़=घोंसला। विहग-युगल=पक्षियों के जोड़े। जिसके हित=जिसके लिए।

भावार्थ—पीला-पीला दिन भी ढल गया है। चारों ओर अन्धकार छा गया है। किन्तु तुम अभी तक रक्त के समान लाल हो रहे हो। देखो तो सही पक्षी भी घोंसलों में वापिस आ गए हैं और उनके जोड़े अपने बच्चों को चूम रहे हैं।

उनके घर में तो बच्चों की ध्वनि गूँज रही है। किन्तु मेरी गुफा अभी तक सूनी है। तुमको ऐसी क्या कमी है जिसे दूर करने के लिए तुम वनों में भटका करते हो !

"भद्रे ... ... ढीठ।

शब्दार्थ—मधुर वस्तु=कमनीय वस्तु। विकल पाश=व्याकुल कर देने वाला पाश—विशेषण विपर्यय। चिर मुक्त=सदैव स्वच्छन्द रहने वाला। अपरूप

=रुँधे हुए, बंधन के। निरीह = बेचारा। पंगु=लगड़ा। ढहकर=गिरकर। डीह = उजड़े हुए गाँव का टीला।

भावार्थ—मनु ने उत्तर दिया कि हे भद्रे ! ठीक है तुम्हें तो कमी नहीं किन्तु मुझे तो अपने जीवन में स्पष्ट अभाव के दर्शन कर देती है, उसी प्रकार मुझे भी मेरे जीवन का अभाव खिन्न कर देता है।

मैं तो सदैव स्वच्छन्द रहने वाला व्यक्ति हूँ। मैं आज पहली बार बन्धन में पड़ा हूँ। किन्तु मैं असहाय होकर कब तक इस परतंत्रता में जीवित रहूँगा ! मेरी प्रगति बन्द हो गई है। लँगड़े व्यक्ति के समान आगे बढ़ने में असमर्थ होकर मेरी दशा उजड़े हुए गाँव के टीले के समान हो गई, जिस पर कभी कोई रौनक नहीं आती।

जब प्राण।

शब्दार्थ—प्राणों का मृदु शरीर=कोमल प्राण। आकुलता- तीव्र इच्छा। ग्रंथि=बन्धन की गाँठ। मधु निर्झर ललित गान = मनोहर झरने का सा मधुर सङ्गीत। उल्लास=आह्लाद।

भावार्थ—जब मोह का एक निरङ्कुश बन्धन कोमल प्राणों को कस लेता है तो यदि उस बन्धन को और अधिक कसने का प्रयास किया जाए, तो स्वयमेव उस बन्धन की गाँठ टूट जाती है। यहाँ मनु का अभिप्राय यह है मैं तुम्हारे प्रेम के बन्धन में पड़ गया हूँ। यदि तुम इस बन्धन को और दृढ़ करने का प्रयास करोगी तो यह बन्धन स्वयं ही टूट जाएगा। और आगे होता भी यही है। सन्तान का जन्म इस बन्धन को और भी दृढ़ करने वाला है। किन्तु जैसे ही मनु को यह ज्ञात होता है कि श्रद्धा मां बनने वाली है, उनका मोह का बन्धन टूट जाता है और वे श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं।

अगले छन्द में मनु अपनी इच्छा को अभिव्यक्ति करते हैं।

मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम हँस कर मुझ से बात करो ! तुम्हारी वाणी में झरने की मधुर ध्वनि के समान मनोहर संगीत भरा हो। तुम्हारे सङ्गीत में ऐसा आह्लाद हो जिसे सुनकर मेरे प्राण मस्ती में झूम उठे।

यह कर्म।

शब्दार्थ—कोमल तंतु = कोमल डोरी। शावक = पशुओं के बच्चे। मृदुल चर्म = कोमल खाल। शिथिल = श्रम।

भावार्थ—किन्तु अब तुम में प्रेम का वह उद्वेग कहाँ है जिसमें हम सब सुध भूल जाएँ। तुम तो अब आशा की कोमल डोरी के समान तकली में झूलती रहती हो। इससे यह भी स्पष्ट है कि तुम बड़ी कृश होगई हो और साथ ही यह भी व्यक्त है कि तुम पता नहीं किस आशा में उलझी निरन्तर तकली चलाने में मग्न रहती हो।

तुम तकली चलाती ही क्यों हो? क्या तुम्हें पशुओं के बच्चों की कोमल खालें नहीं मिलतीं? तुम निरन्तर बीज बीनने में क्यों लगी रहती हो? अभी तो मैं शिकार कर सकता हूँ और उसके द्वारा तुम्हारा पालन कर सकता हूँ।

सिस मेद!'

शब्दार्थ—श्रम सखेद = खिन्नता सहित यह परिश्रम।

भावार्थ—और उस पर भी तुम्हारे मुख पर यह कैसा पीलापन छा रहा रहा है? तुम क्यों खिन्न सी बनी तकली चलाने का परिश्रम किया करती हो? मुझे भी तो बताओ कि आखिर इसमें भेद क्या है? यह श्रम किसके लिए हो रहा है?

"अपनी अर्थ।

शब्दार्थ—हिंसक = मारने वाले पशु। निरीह = बेचारे।

भावार्थ—यदि तुम हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा के लिए अस्त्र चलाओ और उसे मार दो, तब तो उचित ही होगा। हिंसक पशुओं का मारना तो अपनी समझ में आता है।

किन्तु जो असहाय प्राणी जीवित रहकर हमारा कुछ उपकार ही करेंगे, वे उन्हें क्यों न जीवित रहने दिया जाए? उन्हें क्यों मारा जाए? यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

चमके मनु।"

शब्दार्थ—आवरण=छदा, वस्त्र। दुग्ध धाम = दूध के घर। हाँह =

विरोध। स्थल = स्थान। सेतु=उपकार के लिए। भव-जलनिधि=संसार रूपी सागर। सेतु=पुल, सहारा।

भावार्थ—पशु स्वयं ही जीवित रहकर अपने चमड़ों को धारण करें। मेरा काम तो ऊन से भी चल सकता है। वे पुष्ट होकर जीवित रहें। वे तो दूध के घर हैं, हमें उनसे दूध प्राप्त करना चाहिए।

जिन पशुओं को हम हित के लिए पाल सकते हैं, उनसे विरोध करना उचित नहीं है। यदि हम पशुओं से ऊँचे हैं, तो हमें उनसे ऊँचा बनकर दिखाना चाहिए, इस संसार रूपी सागर में पुल का काम करना चाहिए, उनका उद्धार करना चाहिए।

"मैं　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　अनन्य।

शब्दार्थ—सहज लब्ध=सरलता से प्राप्त। विफल = असफल। ले जाएँ= ठग लिए जाएँ। तारा=पुतली। मानस=हृदय। मुकुर=शीशा।

भावार्थ—मनु ने कहा कि मैं सहज ही प्राप्त होने वाले सुखों को उस प्रकार छोड़ देने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। हमें जीवन में संघर्ष करना है और यदि इस संघर्ष के बाद भी हमें सुख प्राप्त नहीं होता तो उसका क्या लाभ है। मैं अपने सुखों को त्यागकर जीवन को असफल बनाना चाहता, धोखा नहीं खाना चाहता।

मैं तो बस यह चाहता हूँ कि मैं हमेशा तुम्हारी आँखों की पुतली में अपना चित्र देखता रहूँ। और तुम निरन्तर मेरे मन रूप दर्पण में विराजमान रहो। तुम अपना सारा प्रेम मुझे दे दो, और मैं सदैव तुम्हारे प्रणय में आनन्द भोगता रहूँ।

भद्रे　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　सत्य ?

शब्दार्थ—नव संकल्प = नवीन निश्चय। लघु जीवन अमोल=यह छोटा जीवन अमूल्य है। चल दल सा = पीपल का वृक्ष, पीपल का पत्ता। प्रलय-नृत्य=नाश का नाच। चिर निद्रा=अनन्त नींद।

भावार्थ—हे भद्रा ! तुम्हारे इस नए विचार का जीवन में कोई उपयोग

नहीं है। यह छोटा जीवन बड़ा अमूल्य है। इस छोटे से जीवन में जितना आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, वह प्राप्त कर लेना चाहिए। इस जीवन के सभी सुख पीपल के पत्ते के समान चचल हैं, क्षणिक हैं। किन्तु मैंने तो इन क्षणिक सुखों को पूर्ण रूप से भोगने का निश्चय किया है।

क्या तुमने स्वर्ग जैसे जीवन पर महानाश का नाच नहीं देखा? क्या तुमने प्रलय के उस भीषण दृश्य को भुला दिया है जिसमें जीवन के सारे अनुपम सुख स्वाहा हो गए, जब इस संसार का अन्त प्रलय में है और जीवन का अन्त अनन्त निद्रा में है, तो फिर तुम्हें जीवन पर क्यों इतना अधिक विश्वास है।

यह भार।

शब्दार्थ—चिर प्रशांत=सदैव की शान्ति। मंगल=कल्याण। अभिलाषा=इच्छा। संचित=राशीकृत। सानुराग=प्रेम से युक्त। दुलार=प्रेम। तव चित=तुम्हारा हृदय। वहन कर रहे=धारण करे।

भावार्थ—यह आज तुम्हारे हृदय में अनन्त शान्ति देने वाले विश्व कल्याण की भावना क्यों उठ रही है? आज तुम्हारा प्रेम जिस पर संचित होकर बिखर रहा है? किस के प्रेम में तुम आज ऐसी बातें कह रही हो?

यही प्रेम तो जीवन का वरदान है, जीवन में शक्ति और स्फूर्ति का संचार करने वाला है। हे रानी! तुम अपने इस प्रेम को मुझे दे दो। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारा हृदय केवल मेरे सुख की चिन्ता में ही लीन रहे, तुम मेरे अतिरिक्त और किसी की ओर ध्यान मत दो।

मेरा एक।

शब्दार्थ—सृजना हो=निर्माण करता हो मधुमय विश्व=मनोहर संसार। मधु धारा=रस की धारा, प्रेम। लहरें=इच्छाएँ।

भावार्थ—मैं तो यह चाहता हूँ कि मेरा एक मनोहर संसार निर्मित हो जिसमें मैं विश्राम कर सकूँ। उस विश्व में रस की धारा के समान प्रेम का अखंड प्रवाह हो और लहरों के समान ही मेरे हृदय में निरंतर इच्छाएँ उठती रहें और सन्तुष्ट होती रहें।

"मैंने कुँज।

शब्दार्थ—कुटीर=कुटिया। पुम्राल=धान मादि के दाने झड़े हुए सूखे डंठल। छाजन=छापर। शांति-पुंज=शान्ति का समूह।

भावार्थ—यह सुनकर श्रद्धा बोली कि मैंने तो अपना एक स्वर्ग बनाया है। तुम चलकर मेरी कुटिया देखो। यह कह कर श्रद्धा ने मनु का हाथ पकड़ लिया और उतावली होकर उन्हें कुटिया की ओर ले चली।

उस गुफा के समीप एक कुंज था जो लताओं की डालियों के परस्पर मिलने के कारण अत्यन्त सघन होगया था। यहीं पर अत्यन्त शान्ति प्रदान करने वाली पुआलों का एक छप्पर था।

थे सुरभिचूर्ण।

शब्दार्थ—वातायन=झरोखे, रोशनदान। प्राचीर=दीवार। पर्णमय= पत्तों से युक्त। रचित=बना हुआ। शुभ्र = उज्ज्वल। अभ्र = बादल। वेतसी लता=बेंत की लता। सुरुचि-पूर्ण=सुन्दर, सुखद। धरातल=धरती। सुरभि चूर्ण=पराग-कण।

भावार्थ—उस कुटिया की उज्ज्वल दीवारें पत्तों की बनी हुई थीं। उसमें झरोखे भी बने हुए थे ताकि हवा और बादल के टुकड़े उसमें आते जाते रहें। एक ओर से हवा या बादल आएँ और दूसरी ओर से निकल जाए।

उस कुटिया में बेंत की लता का सुन्दर और सुखद झूला पड़ा हुआ था। नीचे धरती पर फूलों के कोमल पराग कण बिखरे हुए थे।

कितनी साभिमान !"

शब्दार्थ—मीठी अभिलाषाएँ=मधुर इच्छाएँ। मंगल के मधुर गान = उत्सव के समय के गीत। गृह-लक्ष्मी=घर की स्वामिनी। गृह विधान=घर का निर्माण। साभिमान = अभिमान युक्त, श्रद्धा बड़े गौरव के साथ मनु को यह कुटिया दिखा रही थी।

भावार्थ—उस कुटिया के भीतर जाने कितनी मधुर इच्छाएँ चुपचाप व्याप्त हो रहीं थीं। श्रद्धा माँ बनने वाली है इस लिए उसके मन में अपनी

सन्तान सम्बन्धित विविध इच्छाएँ उठ रही हैं और उनका इस कुटिया से घनिष्ट सम्बन्ध है। उस कुटिया में उत्सव के समय गाए जाने वाले गीत भी नीरवता से गूँज रहे थे। पुत्र जन्म पर गीत आदि गाए जाते हैं। उसके पश्चात माँ लारियाँ गाती है। इन सब गीतों की ओर संकेत है।

मनु आश्चर्य चकित होकर घर की स्वामिनी का यह नवीन घर और उसकी सजावट देख रहे थे। किन्तु उन्हें उसके देखने में कुछ सुख नहीं हुआ। वे यह सोच रहे थे कि श्रद्धा ने गौरव में भरकर किसके सुख के लिए यह सारा निर्माण किया है। मनु नहीं चाहते थे कि श्रद्धा उनके अतिरिक्त किसी अन्य को प्यार, उनकी सन्तान को भी नहीं।

चुप   पैठ।

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला। कलरव=मधुर गुँजार। आकुल=लालायित। निर्जनता=एकान्त। पैठ = डूबकर।

भावार्थ—मनु को यद्यपि वह कुटिया अच्छी न लगी, पर वह कुछ भी नहीं बोली। श्रद्धा ने कहा कि देखो घोंसला तो बन गया है किन्तु अभी इसमें मधुर गुँजार उत्पन्न करने के लिए कोई लालायित नहीं है।

जब तुम शिकार खेलने के लिए दूर चले जाते हो, तब मैं यहाँ अकेली बैठी रहती हूँ और शान्ति में डूबकर तकली चलाती रहती हूँ।

मैं   मान।

शब्दार्थ—प्रत्यावर्तन में=घूमने में। स्वर-विभोर = स्वरों में तल्लीन होना। अहेर=शिकारी। तंतु=सूत। मंजुलता=सुन्दरता। मान = मूल्य।

भावार्थ—मैं तकली घुमाती रहती हूँ और तल्लीन होकर यह गाती हूँ कि हे तकली मेरे प्रिय शिकार खेलने को गए हैं। मैं अकेली हूँ। तू धीरे धीरे चल।

जिस प्रकार तेरी सुन्दरता बढ़ती है, तू सूत को बढ़ाती है, उसी प्रकार जीवन का कोमल सूत्र भी विकसित हो, जीवन में प्रगति हो। सदैव नंगे रहने वाले मनुष्य सूत के बुने कपड़े में लिपट जाएँ जिससे सौंदर्य का मूल्य और भी बढ़ जाए।

किरनों   समान।

शब्दार्थ—किरनों-सी तू = तू प्रकाश की किरणों के समान है—उपमा अलंकार। उज्ज्वल = कान्तिमान। मधु-जीवन=सरस जीवन। प्रभात = प्रात काल, नवीन जीवन का आरम्भ—प्रतीक। निर्वसना=वस्त्र रहित, नंगी। नवल गात=नवीन शरीर, प्रात काल के समय प्रकृति में नवीन शोभा होती है, इसलिए नवल गात कहा गया है। आवरण=पर्दा। कान्तिमान=सुन्दर। फुल्ल= खिले हुए।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य की किरणें प्रात काल का सृजन करती हैं और उस समय प्रात कालीन नवीन प्रकृति अपने आपको प्रकाश रूपी वस्त्र से ढक कर निखर उठती है, उसी प्रकार तू भी मेरे जीवन का नवीन आरम्भ कर जिसमें सरसता और आनन्द हो। यहाँ जीवन के नवीन प्रभात का अर्थ है श्रद्धा का माँ बनना। आगे श्रद्धा कहती है कि मेरे इस नवीन जन्म में भोला-भाला नवजात शिशु तेरे उज्ज्वल वस्त्र से अपना मृदुल शरीर ढक ले।

तू वासना से भरे हुए नेत्रों पर सुन्दर पर्दा डाल दे। नग्न सौन्दर्य को देखकर वासना उत्तेजित हो उठती है और जब शरीर वस्त्र से ढक जाएगा तो वासना की वैसी उत्तेजना नहीं रहेगी। जिस प्रकार लता में खिले हुए फूल का सौंदर्य आधा प्रकट रहने और आधा छिपे रहने के कारण और भी उद्दीप्त हो उठता है उसी प्रकार वस्त्रों के पहने से शरीर का सौन्दर्य भी चमक उठता है।

अब फेन।

शब्दार्थ—आगन्तुक=मेहमान, नवजात शिशु। निवसन=वस्त्र रहित। अभाव की चपलता=अभाव की निराशा। लघु विश्व=छोटा सा संसार। मृदुल फेन=कोमल झाग, पराग।

भावार्थ—अब वह नया आने वाला जीव इस गुफा में पशु के समान नंगा न रहे। उसे जीवन में कोई भी अभाव न हो। उसे कभी भी जीवन में अभावों की निराशा में न डूबना पड़े।

जब कभी तुम मेरे पास न होगे, तो मेरा यह संसार सूना न रहेगा। मैं अपने पुत्र के लिए फूलों के पराग बिछा बिछा कर अपना मन बहलाया करूँगा।

मूला प्रवास ।

शब्दार्थ—दुलराकर=प्रेम करके । मृदु = कोमल । मलयज=मलय पवन । मसृण=चिकने । अधरों से=होठों से । नव मधुमय=नवीन और रसीली । स्मिति=हँसी । लतिका=लता । प्रवाल=कोंपल ।

भावार्थ—मैं उसे झूले पर झुलाऊँगी, उससे प्रेम करूँगी और उसका मुख चूम लूँगी । मैं उसे अपनी छाती से लगाकर इस सारी घाटी में घुमाया करूँगी ।

यह जब और बड़ा हो जाएगा तो मलय पवन के समान अपने कोमल बालों को लहराता हुआ मेरे पास आया करेगा । जिस प्रकार लता पर नवीन लाल कोंपल निकलकर शोभायमान होती है उसी प्रकार उसके होठों पर भी सुन्दर मुस्कुराहट फैल जाया करेगी ।

अपनी मुग्ध ।

शब्दार्थ—मीठी रसना=मधुर जिह्वा । कुसुम धूलि=फूलों का पराग । मकरन्द=पुष्प रस । अमृत स्निग्ध=मधुर अमृत । निर्विकार=सरल । मुग्ध= मोहित होकर ।

भावार्थ—वह अपनी मधुर जिह्वा से मीठी मीठी बातें करेगा जो मेरी पीड़ा को दूर करने के लिए पुष्प रस में घुले पराग कण का काम देंगे । उसकी बातें सुनकर मेरा सारा दुख दूर हो जाएगा ।

जब मैं उसके सरल नेत्रों में मुग्ध होकर अपना चित्र देखूँगी तो मेरी आँखों से बहते हुए आँसू भी मेरे लिए मधुर अमृत बन जाएँगे । यदि मैं रोती भी हूँगी तो मेरा हृदय हर्ष से भर उठेगा ।

"तुम सत्य ।

शब्दार्थ—फूल उठोगी=हर्षित हो जाओगी । कम्पित=आन्दोलित । मुग्ध सौरभ-तरंग=मुग्ध रूपी सुगन्धि की लहर बिखेर कर । कस्तूरी-मृग=जिस प्रकार हिरण अपने भीतर स्थित कस्तूरी के ज्ञान के अभाव में जंगल में मारा मारा फिरता है, उसी प्रकार मैं भी जंगलों में आनन्द प्राप्ति के लिए भटका

करूँगा। ममत्व=प्रेम। पचभूत=क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, पाँच भूतों से बना शरीर। रमण करूँ=सुख भोगूँ। एक तत्व=अकेला, आत्मा।

भावार्थ—मनु ने कहा कि तब तुम तो लता के समान फूल उठोगी। जिस प्रकार लता प्रफुल्लित होकर सुगन्धित की लहरें बिखेरती है, उसी प्रकार तुम भी सुख की लहरों में डूब कर हर्ष से भर उठोगी। और इधर मैं कस्तूरी के लिए भटकते हुए हिरण के समान ही वन-वन में सुख खोजता फिरूँगा।

हिरण की कस्तूरी उसके हृदय में है। उसी प्रकार मनु का सुख भी उनकी गुफा में, श्रद्धा में ही है। किन्तु इसका ज्ञान उन्हें बड़ी देर बाद होता है।

मुझे तो मेरा प्रेम का अधिकार चाहिए। मैं इस ईर्ष्या को सहन नहीं कर सकता। मैं तो यह चाहता हूँ कि जिस प्रकार पंचभौतिक संसार में आत्मा का एक तत्व विराजमान है उसी प्रकार मैं भी अकेला ही सुख का भोग भोगा करूँ। मैं यह चाहता हूँ कि तुम केवल मेरे प्रेम में ही डूबी रहो।

यह ऋतु।

शब्दार्थ—द्वैत=दो। द्विविधा=दो। भिक्षुक=भिखारी। सजल जलद=जल भरे मेघ। वितरो=बाँटो। बिंदु=जलकण। सुख-नभ=सुख का आकाश रूपक। सकल कलाधर=सम्पूर्ण कलाओं से युक्त। शरद-ऋतु=शरद् ऋतु का चन्द्रमा।

भावार्थ—तुमने अब अपने प्रेम के दो आलम्बन बना लिए हैं। यह तो तुमने प्रेम बाँटने का एक ढग निकाल लिया है। क्या मैं भिखारी हूँ जो तुम्हारी प्रेम की भिक्षा का स्वीकार करूँगा? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मैं अपने विचारों को ही बदल लूँगा।

तुम जल भरे मेघों के समान दान शील बनकर प्रेम के जल की बूँदें मत बाँटो। मैं यह नहीं होने दूँगा। जिस प्रकार शरद् ऋतु में आकाश में पूर्णिमा का चन्द्रमा अकेला ही विचरण करता है, उसी प्रकार मैं भी अकेला ही संसार के समस्त सुखों का भोग करूँगा। मुझे तुम्हारे प्रेम की कोई आवश्यकता नहीं है।

भूले व्यर्थ।

शब्दार्थ—निद्रारोगी=दत्तरोगी। आकर्षणमय=मनोहर। हास=हँसी। मायाविनि=छल करने वाली। जानुटक=घुटने टेककर। दीन अनुग्रह=दीनों पर की जाने वाली कृपा। प्रयास=प्रयत्न।

भावार्थ—कभी भूलकर मनोहर हँसी हँसते हुए तुम मेरी ओर देख लिया करोगी। तुमने मेरे साथ छल किया है। क्या मैं तुम्हारी प्रेम भरी दृष्टि का वरदान समझ कर और घुटने टेक कर स्वीकार करूँगा? तुम्हारा सारा प्रेम सन्तान को प्राप्त होगा और उस भूले से कभी तुम मुझ से भी प्रेम कर लिया करोगी।

ऐसी कृपा तो दीनों पर दिखाई जाती है। मैं दीन नहीं हूँ। तुम यह मत समझो कि तुम मुझ पर कृपा करने में समर्थ हो। यदि तुम मुझ पर कृपा करने का प्रयत्न करोगी, तो तुम्हें कभी सफलता नहीं मिलेगी।

तुम कुञ्ज।"

शब्दार्थ—संचित=एकत्रित किया हुआ। संवेदन भार-सु म=सहानुभूति के भार का समूह, तुम्हारा प्रेम। काँटे=विपत्तियाँ—प्रतीक। कुसुम-कुञ्ज=फूलों के कुञ्ज, सुख प्रतीक।

भावार्थ—तुम अपने सुख में ही सुखी रहो। चाहे मैं दुःखी रहूँ किन्तु अब मैं स्वतन्त्र होकर रहूँगा और सदैव इस महामन्त्र का जप किया करूँगा कि मन की पराधीनता ही संसार का सबसे बड़ा दुःख है।

लो आज मैं तुम्हारा सारा संचित प्रेम यहीं छोड़कर जा रहा हूँ। मुझे चाहे काँटों के मार्ग में चलना पड़े चाहे कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न सहनी पड़ें, मैं उसी में अपने आपको धन्य समझूँगा। तुम्हारे फूलों के कुञ्ज और सुख तुम्हें ही मुबारिक हों।

कह भाँत।

शब्दार्थ—ज्वलन शील=ईर्ष्या से जलता हुआ। अन्तर=हृदय। शून्य प्रान्त=शून्य प्रदेश सूना हो गया। अधीर=व्याकुल। श्रान्त=थकी।

भावार्थ—यह कहकर मनु अपना जलता हृदय लेकर चले गये। वह यह प्रदेश सूना हो गया। थकी हुई और व्याकुल श्रद्धा यह कहती ही रह गई

कि ओ निर्मोही जरा रुकजा, जरा मेरी बात तो सुन लो, किन्तु मनु उसे छोड़ कर चले आ रहे थे।

आज की सभ्यता में पिता का अपनी होने वाली सन्तान से ईर्ष्या करना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मनु का चरित्र अस्वाभाविक है। यह स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध का आरम्भिक युग था इसलिए उस समय ऐसा सम्भव हो सकता है।

इड़ा

मनु श्रद्धा को तो छोड़कर चले आए किन्तु उसके पश्चात उनका जीवन फिर लक्ष्यहीन हो गया। बहुत समय तक वे पहाड़ों पर, जंगलों में, मैदानों में घूमते रहे किन्तु कहीं भी उनके क्षुब्ध मन को शान्ति प्राप्त नहीं हुई, उनके हृदय का भार कहीं भी हल्का नहीं हुआ।

घूमते घूमते मनु एक बार उजड़े हुए सारस्वत नगर के पास पहुँचे। वहाँ पर विश्राम करते हुए मनु जीवन के सम्बन्ध में विचार करने लगे। वे सोच रहे थे कि जीवन में निरन्तर संघर्षों की वर्षा होती रहती है। मनुष्य स्वयं भी भयभीत रहता है और संसार को भी भयभीत बनाता है। मनुष्य प्रतिक्षण जहाँ सृजन में लीन है, वहीं वह नाश में भी तत्पर है। संसार में मनुष्य कटुता के ही बीज बो रहा है।

उस समय उन्हें श्रद्धा का स्मरण हो आता है। वे सोचते हैं कि अधिकार की प्राप्ति के लिए मैं यह सुन्दर जीवन छोड़ कर चला आया हूँ। मैं तो पागल हूँ। मैंने किसी पर दया नहीं की, और सभी से अपनी ममता तोड़ ली। यहाँ कौन है जो मेरी बात सुने और उसका उत्तर दे? मेरा जीवन लू के समान है। मैंने झुलसाना ही सीखा है, खिलाना नहीं। मेरी निराशा के अन्धकार में मेरी चेतना तिरोहित होती जा रही है, मैं यह नहीं निश्चित कर पा रहा हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।

मनु प्रारम्भिक देवों और असुरों के संघर्ष का स्मरण करते हैं। देव और असुर दोनों ही सत्य से दूर थे। देवता यह समझते थे कि हम ही संसार के स्वामी हैं, हम ही पूज्य हैं और हमें अब किसी के आश्रयकी आवश्यकता नहीं है। हममें अनन्त आनन्द और अपार शक्ति है। हमारा जीवन निरन्तर विकासशील है।

उधर असुर यह सोचते थे कि देह का सुख ही सबसे बड़ा सुख है। वे

अपने शरीर की उपासना में ही लीन रहते थे और अपने विश्वासों को ही एकमात्र सत्य समझते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि देवों और असुरों में तर्क युद्ध भी हुआ और शस्त्र युद्ध भी। मनु कहते हैं कि आज फिर से मेरे हृदय में वही संघर्ष नवीन रूप धारण कर रहा है। सचमुच मैं श्रद्धा रहित हूँ।

उसी समय उन्हें फिर काम का सन्देश सुनाई देता है। मनु ने सोचा कि इसी काम की प्रेरणा से ही मैंने श्रद्धा को प्राप्त करने का प्रयास किया था। अब यह फिर कहाँ आ गया? क्या जीवन में कोई नया उत्पात उत्पन्न करना चाहता है?

– काम ने कहा कि हे मनु! तुमने श्रद्धा को भुला दिया है। तुमने उसके हृदय का, उसके विश्वास का कोई मूल्य नहीं समझा। तुमने समझा कि जो समय सुख में बीते वही स्वर्ग है। तुमने यह समझा कि वासना की तृप्ति ही स्वर्ग है। तुमने यह बिल्कुल भुला दिया कि स्त्री का भी कोई अधिकार होता है। तुम अपने और श्रद्धा के बीच समरस सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाए।

मनु के हृदय में काम की वाणी काँटे के समान चुभ गई। उन्होंने कहा कि क्या मैं अब तक भ्रम में था? क्या मेरी सारी साधना असफल थी? क्या तुमने श्रद्धा को प्राप्त करने के लिए नहीं कहा था? और तुम्हारे कहने से ही मैंने उसे पाया भी और उसने मुझे अपना स्वर्गीय हृदय अर्पित कर दिया। फिर भी मेरी कामना तुष्ट क्यों नहीं हुई?

काम ने उत्तर दिया कि हे मनु! उसने तो तुम्हें अपना हृदय प्रदान कर दिया था। उसका हृदय प्रेम से आलोकित था, श्रद्धा से स्निग्ध था, उसमें जीवन की स्फूर्ति थी। किन्तु तुम उसके हृदय को प्राप्त ही कहाँ कर सके? तुमने तो सदैव उसके शरीर को ही पाया था। तुम्हें तो अधिकार प्राप्ति की धुन सवार थी और अपनी अपूर्णता के कारण ही तुम श्रद्धा के प्रेम का प्रतिदान नहीं कर पाए।

किन्तु अब तुम स्वतन्त्र होना चाहते हो और इसीलिए तुमने सारे दोष श्रद्धा पर मढ़ दिए। जीवन में तो फूल भी हैं और काँटे भी। किन्तु तुमने सदैव काँटे ही चुने। तुमने वासना को ही जीवन सबसे ऊँचा स्थान दिया।

और इसी कारण मैं यह शाप देता हूँ कि अब तुम्हारे सारे प्रयत्न काम का जन्म देने वाले होंगे।

यह जो नवीन मानव सृष्टि होगी, वह स्वयं विरोधों को जन्म देती रहेगी। वह स्वयं अपना ही विनाश कर लेगी। परस्पर संघर्ष प्रबल होता जाएगा और अभीष्ट वस्तु कभी प्राप्त नहीं होगी। सब कुछ होते हुए भी यह संसार संतुष्ट नहीं रह पाएगा।

जीवन में आँसू और हाहाकार होगा। नित्य नवीन सन्देह उत्पन्न होंगे। प्रकृति का सौंदर्य भी दरिद्रता से भर जाएगा। चारों ओर का वातावरण क्षोभ युक्त और अन्धकारमय होगा।

संसार प्रेम के महत्व को नहीं समझ पाएगा। सभी व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ में बँधे रहेंगे। संसार में विरह और करुणा का साम्राज्य होगा। हृदय और मस्तिष्क में समरसता नहीं होगी। हृदय कहीं जाएगा और मस्तिष्क कहीं। सारा वर्तमान रोकर ही व्यतीत हो जाएगा।

सारा जीवन ही युद्ध बन जाएगा। शुद्ध भावनाओं का लोप हो जाएगा अग्नि और रक्त की वर्षा होगी। कोई भी शक्ति विश्व की बुराइयों को दूर नहीं कर पाएगी। हृदय की विश्वासमयी शक्ति श्रद्धा ने तुम्हें सर्वस्व समर्पित कर दिया था किन्तु तुमने उसे धोखा दिया। तुम सदैव अशान्त रहोगे। तुम दुःखमय चिंतन के प्रतीक हो। तुम्हारा अमरत्व नष्ट हो जाएगा। मनुष्य सदैव थककर तक काल में बँधा हुआ चलता जाएगा।

इसके पश्चात काम की अभिशाप ध्वनि लीन हो गई। सारा वातावरण स्तब्ध था। मनु सोच रहे थे कि काम ने अन्तहीन यातना का शाप दिया है। अब तो इस यातना को दूर करने का कोई उपाय भी नहीं है।

सरस्वती मधुर ध्वनि करती हुई बह रही थी। उसका वेग निरन्तर विराम का प्रतीक था। उसमें सुन्दर लहरें उठ रही थीं। प्रातःकालीन किरणें बिखर कर अपूर्व शोभा का वितरण कर रही थीं।

उसी समय मनु के सामने एक बाला प्रकट हुई। उसके केश सर्प-जाल के समान फैले हुए थे। उसके नेत्रों में प्रेम और विरक्ति भरी थी। उसके वक्षस्थल पर संसार के सारे ज्ञान और विज्ञान संचित से प्रतीत होते थे। उसे

देखकर मनु सहसा बोल उठे कि चेतना की छाया के समान यह कौन है।

इड़ा ने कहा कि मेरा नाम इड़ा है किन्तु तुम कौन हो ? इस पर मनु ने कहा कि मेरा नाम मनु है और मैं घूमता हुआ दुःख सहन कर रहा हूँ।

इड़ा ने कहा कि मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। यह जो सामने उजड़ा हुआ सारस्वत प्रदेश दिखाई देता है, वह मेरा ही देश था। मैं यहाँ इस आशा में पड़ी हूँ कि कोई आए और उसकी सहायता से मैं फिर से अपने देश को बसाऊँ।

मनु ने कहा कि मैं तो इसलिए भटक रहा हूँ कि कोई मुझे जीवन का मुख्य बता दे। तुम्हीं बताओ कि मुझे अब क्या करना चाहिए ? इस संसार में जिसने नक्षत्र आदि का वर्णन किया है, वह अपनी भीषणता दिखा रहा है क्या यह सृष्टि मनुष्यों को भयभीत करने के लिए ही रची गई है ? तब क्यों मनुष्य इस नश्वर दृश्य को सृष्टि कहता है ? वही इसका अधिपति होगा जिसने कभी दुःखमय वाणी नहीं सुनी। कहते हैं कि शनि लोक के पीछे एक प्रकाश का लोक है। क्या उसका प्रकाश जीवन की निराशा को दूर कर सकता है।

इड़ा ने कहा कि चाहे वहाँ कोई भी हो किन्तु उसका सहारा लेना उचित नहीं है। मनुष्य को अपनी शक्ति और दुर्बलता का परीक्षण कर अपने मार्ग पर चलना चाहिए। जो स्वयं अपना विकास करने के लिए कटिबद्ध है, उसे भला कोई कब रोक सकता है, बुद्धि के कहने के अनुसार कार्य करो और इस उजड़े हुए नगर को फिर से बसाओ।

इड़ा के सन्देश ने मनु के जीवन में स्फूर्ति का सचार किया। उनके जीवन की निराशा दूर होने लगी और उन्होंने कर्म में लीन होने का निश्चय किया तथा निरन्तर परिश्रम के फलस्वरूप उजड़े हुए सारस्वत नगर को फिर से बसाया।

मुख्य विशेषताएँ

१—ये छन्द जिनमें मनु ने जीवन के सम्बन्ध में विचार किया है, कला की ओर प्रभाव की दृष्टि से कामायनी के श्रेष्ठ छन्दों में से हैं।

२—मनु के अन्तर्द्वन्द्व का सशक्त चित्रण हुआ है।

३—काम के अभिशाप में वर्तमान समाज की विषमताओं का मूल कारण

देखे
पतंग।

शब्दार्थ—शैल शृंग=पर्वत की चोटियाँ। अनल=शान्त। हिमानी=बर्फ। रमित=रमी हुई, युत। उन्मुक्त=स्वतंत्र। उपेक्षा भरे=संसार की अन्य वस्तुओं की उपेक्षा करने वाला। तुङ्ग=ऊँचे। वह गौरव=पवन की चोटियाँ वह हैं किन्तु ऊँची भी हैं इसलिए वह गौरव कहा—विशेषण विपर्यय। प्रतीक=प्रतिरूप। वसुधा=धरती। अभिमान भंग=अपनी उच्चता और अचलता से ये धरती के घमंड को तोड़ देती हैं। समाधि=अचलता। अघोष=शान्त। स्वेद बिंदु=पसीने की बूँदें, सूर्य की गर्मी से गली हुई बर्फ का पानी। स्तिमित=निश्चल। गत-शोक-क्रोध=दुःख और क्रोध से रहित। प्रतिष्ठा=दर। अबाध=निरंतर। मरुत-सदृश=पवन के समान। अग जग=जड़ चेतन। कम्पन की तरंग=अत्यंत वेग। स्खलन शील=जलता हुआ। गतिमय=गतिमान। पतंग=सूर्य।

भावार्थ—मैंने पर्वत की वे चोटियाँ देखी हैं जिन पर सदैव बर्फ जमी रहती है, जो स्वच्छन्द दिखाई देती हैं और जो अपनी उच्चता में सारे संसार की उपेक्षा करती सी दिखाई देती हैं। वे चोटियाँ अपनी महत्ता तथा उच्चता की प्रतीक हैं। ये अचलता और उच्चता में धरती का गौरव नष्ट करती सी दिखाई देती हैं।

यहाँ व्यंजना द्वारा उन योगियों की ओर संकेत है जो अपनी साधना के फलस्वरूप संसार से बहुत ऊपर उठ जाते हैं, अपनी ज्ञान की ज्योति में लीन रहकर संसार के समस्त आकर्षणों की उपेक्षा करते हैं।

ये पर्वत की चोटियाँ योगियों के समान ही अपनी समाधि में सुखी रहती हैं। उन चोटियों पर जमी बर्फ के पिघलने से नदियाँ बन जाती हैं और उन पर बहती हुई चली आती हैं। किन्तु वे चोटियाँ अपने योगियों के समान अपने नेत्र को निश्चल रखती हैं तथा शोक और क्रोध से अतीत हैं। चोटियाँ सदैव शान्त रहती हैं।

किन्तु मैं अपने जीवन की वैसी अचल मुक्ति और शान्ति प्राप्त नहीं पाया।

मैं भोगी नहीं बनना चाहता। मैं तो यह चाहता हूँ कि मेरा मन वायु के समान अबस्र वेग वाला हो। मेरा मन सदैव आगे बढ़ता जाय और नवीन सुखों को प्राप्त करता रहे।

अथवा मैं अपना जीवन सूर्य के समान बनाना चाहता हूँ। जिस प्रकार चलता हुआ सूर्य अपनी एक एक किरण से जड़ और चेतन को चूमता हुआ बढ़ता रहता है उसी प्रकार मैं भी सारे विश्व के सौंदर्य का रसपान करता हुआ आगे बढ़ता जाऊँ। जिस प्रकार सूर्य निरन्तर चलता रहता है और आगे बढ़ता रहता है, उसी प्रकार मैं भी सदैव आकांक्षा के ताप में अपना विकास करता रहूँ।

अपनी   हास।

शब्दार्थ—ज्वाला = आकांक्षा का प्रकाश=अभिव्यक्त कर के। प्रारम्भिक जीवन का निवास=हिमालय पर्वत का निवास। गुहा = गुफा। मरु अंचल= रेगिस्तान का विस्तार। सदय=सप्रेम। कड़ी होड़=अति स्पर्धा। विजन प्रांत= एकान्त भाग। कल्पना-लोक में कर निवास=मैं उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाओं में लीन रहता हूँ। कुसुम-हास=सरस, सुखमय जीवन।

भावार्थ—मैं अपनी वासना को व्यक्त करके हिमालय का निवास छोड़ कर चला आया हूँ। मेरा वह निवास सुन्दर था, सरस था। किन्तु उसे छोड़ कर मैं आज तक वनों में, गुफाओं में कुंजों में, रेगिस्तानों में अपने जीवन के विकास के उपाय खोज रहा हूँ, हृदय की शान्ति ढूँढ रहा हू।

मैं भी कितना पागल हूँ। मैंने अपने जीवन में किसी पर भी दया नहीं की। सभी से प्रेम कर मैं उनके प्रेम को ठुकराता आया हूँ मैं आज तक किसी पर उदार नहीं बना। मने अभी तक सभी से प्रतिस्पर्धा की है। यहाँ मनु श्रद्धा का स्मरण कर रहे हैं।

आज मैं एकान्त प्रदेश में पड़ा हूँ। मेरी कातर पुकार गूँज रही है किन्तु यहाँ कोई मुझे उत्तर देने वाला ही नहीं है। मेरा जीवन लू के समान है। जिस प्रकार लू सारे वृक्षों को और जीवों को झुलसा देती है, उसी प्रकार मैंने

भी सभी के जीवन को दग्ध ही किया है। लू फूलों को खिलाती नहीं है, मुरझाती है। इसी प्रकार मैंने भी अपने जीवन में किसी के जीवन को विकसित नहीं किया।

मैं उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाओं में लीन रहता हूँ किन्तु फिर भी मुझे अपना भविष्य दुःखपूर्ण दिखाई दे रहा है। मैंने अपने जीवन में कभी यौवन का सुख और माधुर्य नहीं देखा।

इस विनाश।

शब्दार्थ—नभ=आकाश। नील लता=नीली लता। हताश = निराश। कलियाँ = सुख प्रतीक। कांटे=विपत्तियाँ— प्रतीक। बीहड़=भीषण। नितांत= बिल्कुल। उन्मुक्त शिखर=स्वतन्त्र चोटियाँ। निर्वासित = घर से निकाला हुआ। नियति-नटी भाग्य रूपी नर्तकी। अति भीषण=दारुण। अभिनय की छाया नाच रही = नियति-नटी अपना प्रभाव दिखा रही है। प्रतिपद = प्रत्येक पग। कुलाँच रही=छलाँग लगाना, तीव्र होना। पावस-रजनी = वर्षा की अंधेरी रात। ज्योति-कण = प्रकाश के कण।

भावार्थ—मेरे जीवन का प्रकाश तो अब निराश होकर आकाश रूपी लता की नीली डालियों में उलझा हुआ है। अभिप्राय यह है कि दुःखी मनुष्य को आकाश की ओर देखकर कुछ सान्त्वना मिलती है। दूसरा भाव यह भी है कि जब व्यक्ति इस संसार से निराश हो जाता है, तो वह ऊपर स्वर्ग में सुख की प्राप्ति की कामना करता है। मनु का अब धरती पर कहीं भी सुख का चिह्न नहीं दिखाई देता। वे कहते हैं कि यहाँ जिन्हें मैं सुख और आनन्द का साधन समझता हूँ वे मेरे लिए विपत्तियाँ बन जाती हैं।

मैं कितना भयंकर पथ चलकर आया हूँ। जब कभी मैं बहुत अधिक थक जाता था तो मैं लेट रहता था। पर्वत की ऊँची ऊँची चोटियाँ मुझे मेरे दुःख पर हँसती दिखाई देतीं थीं। और मैं अपने घर से निकाले हुए व्यक्ति के समान दुःखी होकर रोया करता था।

आज मेरे जीवन के चारों ओर नियति रूपी नर्तकी का करुण अभिनय हो

पूरा पड़ चुका है। मेरा भाग्य ही मुझे यह दुख पूर्ण खेल खिला रहा है। मेरे जीवन के चारों ओर शून्यता घिर आई है। कोई मार्ग नहीं, कहीं प्रकाश नहीं। मेरे प्रत्येक पग पर मुझे भीषण असफलता ही प्राप्त होती है।

मैं तो वर्षा की अँधेरी रात में दौड़कर जुगुनुओं को पकड़ने का प्रयत्न करता हूँ किन्तु मुझे निराशा ही मिलती है और उन जुगुनुओं की ज्योति नष्ट हो जाती है। वर्षा की रात घोर निराशा की प्रतीक है। जुगुनुओं के कण मिथ्या आशा के प्रतीक हैं। अभिप्राय यह कि मनु घोर निराशा में आशा का सहारा लेकर आगे बढ़ते हैं किन्तु ये आशाएँ क्षण भर में ही नष्ट हो जाती हैं।

जीवन भार।

शब्दार्थ—जीवन निशीथ=जीवन रूपी रात्रि-रूपक अलकार। अधकार= अँधेरा, निराशा। नील=काला। तुहिन=कुहरा। जल निधि=सागर। वार पार, आर-पार, सर्वत्र। निर्विकार=उज्ज्वल। मादक=मस्त कर देने वाला। अचेत कर देने वाला। तम=अँधकार। निखिल=सम्पूर्ण। भुवन=ब्रह्मांड, समग्र। मूर्तिमान=प्रकट। अनग=अग हीन। ममता=प्रेम। क्षीण=धुँधली। अरुण=लाल। ज्योति-कला=प्रकाश का वैभव, आशा-प्रतीक। ऊर्मिल=लहराती हुई। अलकें=केश। कुकुम चूर्ण=सिन्दूर। चिर निवास=शाश्वत निवास। मोह-जलद=मोहरूपी बादल-रूपक अलकार। माया-रानी के केश-भार=अंधकार रात के बालों के समान हैं, निराशा को माया के बाल कहा गया है जिनमें वह मनुष्यों को उलझा लेती है।

भावार्थ—जिस प्रकार रात्रि के समय अधकार छा जाता है उसी प्रकार जीवन में घनी निराशा छा जाती है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि रात का समय है और मनु के जीवन में निराशा है, प्रस्तुत अप्रस्तुत का सामञ्जस्य है।

मनु कहते हैं कि हे रात्रि के अंधकार तू काले कुहरे के सागर के समान सर्वत्र व्याप्त है और तुम में संध्या के समय सूर्य की कितनी ही उज्ज्वल किरणें

विलीन हो गई है। मनु को सारी सृष्टि में निराशा का अनन्त सागर दिखाई देता है। जब मनुष्य के हृदय में निराशा छाई है तब संसार में भी निराशा दिखाई देना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार अंधकार में सूर्य की किरणें विलीन हो जाती हैं इसी प्रकार निराशा में चेतना का मंगल व्यापार रुक जाता है। जीवन में जब निराशा सघन हो उठती है तब बुद्धि कार्य नहीं करती, मनुष्य कुछ सोच ही नहीं सकता।

रात्रि का अंधकार निद्रा विखेरता सा व्याप्त होता है। इसलिए मनु उस अंधकार को मादक कहते हैं। अंधकार ने समस्त सृष्टि को अपने विस्तार में समेट लिया है। सारस्वत नगर उजड़ चुका है इसलिए वहाँ भी कोई प्रकाश नहीं है। अंधकार प्रकट होकर फिर छिप जाता है। उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है और उसका कोई शरीर भी नहीं है। न्याय में अंधकार को पदार्थ नहीं माना जाता, उसे प्रकाश का अभाव माना जाता है। उसी प्रकार निराशा भी मनुष्य को बेसुध कर देती है, उसकी विचार-शक्ति को शिथिल कर देती है। सारा संसार ही तो निराशा में डूबा हुआ है। निराशा का अँधेरा जीवन पर छाता है और फिर कुछ समय पश्चात् नष्ट भी हो जाता है। इसमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। प्रलय के पश्चात मनु के जीवन में निराशा का अंधकार छा गया था किन्तु श्रद्धा के मिलन के पश्चात वह दब गया। किन्तु अब फिर उसने मनु के जीवन को आक्रान्त कर लिया है, इसलिए मनु निराशा को परिवर्तन शील कहते हैं। निराशा का कोई आकार भी नहीं होता।

'मूर्तिमान' और अनंग में विरोधाभास अलंकार है।

प्रातःकाल उषा की धुँधली लाल किरणें प्रकट होकर अंधकार का लोप करती हैं, तथा प्रकृति में प्रकाश विकीर्ण करती हैं। प्रभात वेला में अंधकार में उषा की लाल किरणों के विकास में वैसी [illegible] शोभा होती है, वैसी [illegible] सुहागिनी के केशों के बीच [illegible] माँग [illegible] वैभव होता है। भाव यह है कि सिन्दूर के [illegible] माँ [illegible] सौंदर्य आ जाता है। उसी प्रकार प्रभात वेला [illegible] [illegible] कर देती है। उधर जब जीवन में [illegible] किसी

का थोड़ा सा भी प्रेम प्राप्त हो जाए, तो निराशा धीरे धीरे दूर होने लगती है। निराश व्यक्ति को यदि थोड़ा सा प्रेम भी प्राप्त हो जाए तो उसे विशेष आनन्द होता है। प्रेम के प्राप्त हो जाने के पश्चात यदि निराशा बनी भी रहे तो उसमें वैसा अवसाद नहीं रहता, वरन् उसका भार बहुत हल्का हो जाता है। यहाँ स्वत ही मनु के इन कथनों का स्मरण आता है जो उन्होंने श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा से कहे थे।

अन्धकार हमेशा से जीवन को विश्राम देता आया है। सभी व्यक्ति रात्रि में विश्राम करते हैं। अन्धकार उदार बादलों की छाया के समान ही सुख और सन्तोष देने वाला होता है। यह रजनी के केश भार समान है। निराशा में भी प्राणों को पूर्ण विश्राम मिलता है। कारण यह है कि निराश व्यक्ति कोई भी कार्य—शारीरिक या मानसिक करने में असमर्थ होता है इसलिए निराशा में विश्राम तो मिलता है किन्तु वह ज्ञान का सन्तोष नहीं मोह की शिथिलता है, मोह रूपी बादल की छाया है। जिस प्रकार अज्ञानी पुरुष अज्ञान में ही सुख मानता है, उसी प्रकार निराशा व्यक्ति में भी प्रयास का अभाव हो जाता है और कम का अभाव विश्राम है। निराशा माया रानी के बालों के जाल के समान है जिसमें संसारी व्यक्तियों को उलझा लेती है। जिस प्रकार प्रेमी का मन प्रिया के केशों में उलझ जाता है उसी प्रकार संसारी व्यक्ति का हृदय माया जनित निराशा में डूब जाता है।

इस छन्द में अर्थ गांभीर्य और विम्बोपमता के गुण पाए जाते हैं।

जीवन-निशीथ　　　　　　　　　　　　　　　　　　　अपार।

शब्दार्थ—अभिलाषा=इच्छा। नव=नई। ज्वलन=जलन। दुर्निवार= जो दूर न किया जा सके। अपूर्ण लालसा=अतृप्त इच्छा। कसक=जलन। मधुवन=वृन्दावन, बसन्त। कालिंदी=यमुना। चूमकर=छू कर। दिगंत= दिशाएँ। मन शिशु=मन रूपी बालक—रूपक अलङ्कार। क्रीड़ा-नौकाएँ= बच्चे के खेलने की कागज की नावें। कुहकिनी=जादूगरनी। अपलक दृग= खुले नेत्र। अंजन=काजल। सुन्दर छलना=ऐसा धोका जो सुखमय है। धूमिल=

कभी अवनति के गढ़े में गिर पड़ता है।

जब इस नगर का विध्वंस हुआ होगा तो कितने ही व्यक्तियों की इच्छाएँ अपूर्ण रह गई होंगी। आज उन बिखरी हुई अपूर्ण इच्छाओं में ही उस काल की मधुर स्मृतियाँ व्यक्त हो रही हैं। भाव ये है कि इस नगर ने अपने निर्माण में जो आनन्दोत्सव मनाए होंगे, उनकी स्मृतियाँ इसके नाश में भी प्रकट हो रही हैं और साथ ही उस युग के व्यक्तियों की कितनी ही इच्छाएँ अपूर्ण भी रह गई होंगी। गिरे हुए मकानों के नीचे सूखे पत्तों जैसी अवांछनीय इच्छाएँ भी दबी हुई हैं। उस नगर के व्यक्तियों अवांछित इच्छाएँ भी रही होंगी जिसके कारण उस नगर का विध्वंस हुआ है।

इस नाश के दृश्य को देखकर प्रेम भावना का अन्त होने लगता है। खँडहरों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रेम एक धोखा है। उजड़े हुए नगर के कोनों में प्रेम की असफलता की पीर भरी दिखाई देती है। जिस प्रकार किसी वृक्ष पर अमर बेल छाकर उसका सब नाश कर देती है, उस वृक्ष को सुखा देती है उसी प्रकार वासना की अमर बेल ने इस नगर को भी उजाड़ दिया है।

जिस प्रकार कोई किसी व्यक्ति की समाधि पर दीपक जला जाता है और वह स्वयं ही बुझ कर शान्त हो जाता है उसी प्रकार इस नगर को देखकर मन हृदय में विराग और निर्वेद की भावनाएँ उदित होती हैं वे अपने आप शांत हो जाती हैं।

मनु स्वयं प्रलय का दृश्य देख चुके हैं। अपने वैभव का विध्वंस देख चुके चुके हैं इसलिए इस नगर को देखकर उनका हृदय करुण भावना से भर आता है।

यों — ख्यात।

शब्दार्थ—श्रांत=थके हुए। सुख साधन=सुख देने वाला। प्रशान्तिक शान्ति देने वाला। निस्तब्ध=शान्त। निशा श्यामल=अंधेरी रात। नक्षत्र तारा गण। निर्निमेष=अपलक। वसुधा=धरती। विकल=व्याकुल करने वाली

विशेषण विपर्यय । वाम=कुटिल । वृत्रघ्नी=इन्द्र । जनाकीर्ण=मनुष्यों स भरा हुआ । उपकुल=नदी के किनारे की भूमि । विजय कथा=विजय की कहानी । दु स्वप्न=बुरा स्वप्न । म्लान=दुखी ।

ध्वनि अलङ्कार ।

भावार्थ—थके हुए मनु इस प्रकार विचार कर रहे थे । जब से मनु ने सुख और शान्ति प्रदान करने वाली श्रद्धा का विकास साथ छोड़कर चल दिए थे तभी से वे कई मार्गों में भटकते हुए, रुकते हुए, इस उजड़े हुए शहर के समीप आगए थे ।

सरस्वती नदी की वेगवती धारा बह रही थी । अंधेरी रात में सघन शांति फैली हुई थी । आकाश में तारे चमक रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अपलक होकर संसार की दुख भरी और थक चाल को देख रहे हैं ।

सरस्वती नदी के किनारे की वह भूमि जहाँ पर कभी इन्द्र का राज्य था और जो कभी मनुष्यों से भरी हुई थी आज सूनी पड़ी हुई थी । देवताओं के स्वामी इन्द्र ने यहाँ पर विजय प्राप्त की थी । उस विजय की स्मृति और भी दुख दायक थी । दुख में सुखमय क्षणों की स्मृति दुख को और भी उद्दीप्त करती है ।

उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कोई बुरा स्वप्न देख रहा हो और दुखी हो । उसके चारों ओर अंधकार था ।

इस उजड़ी अवस्था को सारस्वत नगर का बुरा स्वप्न कहने में यह भाव भी निहित है कि भविष्य उसका यह बुरा स्वप्न टूट जाएगा और वह फिर से अपनी स्वाभाविक अवस्था को ग्रहण करेगा ।

"जीवन दुर्निवार ।

शब्दार्थ—नव विचार=नवीन सिद्धान्त । द्वन्द्व=संघर्ष युद्ध । प्राणों की पूजा का प्रचार=शारीरिक सुख की कामना का प्रचार हुआ । आत्म विश्वास निरत=आत्मा की शक्ति पर विश्वास रखने वाले । सुर-वर्ग=देवताओं का समाज । सतत=सदैव । आराध्य=आराधना करने योग्य, पूज्य । आत्ममंगल=

है कि तुम ने श्रद्धा को भुला दिया है। उसे आत्मा पर और उसके विकास पूरी आस्था थी, किन्तु तुमने उसकी उपेक्षा की और रुई के समान ही उसे उड़ा दिया, उसे त्यागकर चले आए। तुमने तो यह समझा था कि यह नश्वर संसार जीवन की डोरी से बंधा है, जब तक अपना जीवन है तभी तक संसार और सांसारिक सुख भी हैं।

तुमने उन्हीं पक्षों को सत्य मान लिया जो शारीरिक सुख प्रदान करते हैं। शारीरिक सुख प्रदान करते हैं। शारीरिक सुख के अतिरिक्त तुमने किसी अन्य बात की ओर ध्यान भी नहीं दिया था। तुमने कामेच्छा की पूर्ति को ही जीवन का परम सुख मान लिया था। तुम्हारा यह ज्ञान हानिकर था और विपरीत बुद्धि की उपज था।

तुम अपने पुरुष होने के अभिमान में यह भी भूल गए कि स्त्री की भी कोई सत्ता होती है, उसका भी कोई अधिकार होता है। अधिकारी को अपने अधिकारों के साथ सन्तुलन रखना चाहिए, कभी उनका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

जब अनन्त आकाश में यह तीव्र वाणी गूँज उठी तो मनु को ऐसे प्रतीत हुआ मानो उनको कोई काँटा चुभ गया हो।

'यह ... काम !"

शब्दार्थ—विराम=विश्राम। प्रत्यक्ष होने लगा=आँखों के सामने आने लगा। अन्तरंग=हृदय। अभिशाप ताप=शाप का दुःख। भ्रान्त साधना=गलत प्रयत्न। अमृत धाम=अमृत के समान सुख और शान्ति का घर। पूर्ण काम=वह व्यक्ति जिसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गई हों।

भावार्थ—मनु एक दम चौंककर बोल उठे कि यह किस की आवाज है! और फिर पहचान कर बोले कि अरे यह तो वही काम है जिसने मुझसे मेरे जीवन का सुख और विश्राम छीनकर अब मुझे इस उलझन में डाला है। यदि यह मुझे श्रद्धा को पाने के लिए नहीं कहता तो क्यों यह सारी विपत्ति आती। बीती हुई सदियों का तो यह अब अतीत नाम ही देख रहा है और

सब कुछ तो मिट चुका है । आज काम की आवाज सुनकर अतीत के दृश्य मेरे नयनों के सामने नाचने लगे हैं ।

उस बीते हुए समय के काम ने जो वरदान दिया था आज उसका स्मरण कर मेरा हृदय काँप उठता है । आज तो मेरा मन और शरीर किसी शाप की ज्वाला में जल रहा है ।

यह सोचकर मनु ने काम से प्रश्न किया कि क्या मैं अभी तक गलत साधना करता रहा, क्या मैं आज अनुचित मार्ग पर ही चलता रहा ? क्या तुमने प्रेममय वाणी में मुझे श्रद्धा को पाने के लिए नहीं कहा था ?

तुम्हारे कहने पर ही तो मैंने श्रद्धा को प्राप्त किया था । और उसने भी अमृत के समान सुख और शान्ति देने वाले हृदय को मुझे अर्पित कर दिया फिर भी क्यों मेरी इच्छाएं पूर्ण नहीं हुई ? क्यों मुझे शान्ति नहीं मिली ।

"मनु ... पान ।

शब्दार्थ—प्रणय=प्रेम । सरल=शुद्ध । मान=महिमा । चेतनता=ज्ञान । शान्त प्रभा=शान्ति देने वाला प्रकाश । ज्योतिमान=कांतिमान । सौंदय जलधि=सौंदर्य रूपी सागर रूपक अलङ्कार । गरल पान=विष का सेवन । अबोध=अज्ञ । परिणय=प्रतिदान । राग-भाव=स्वार्थ भाव । मानस जल निधि=मानस रूपी समुद्र—रूपक अलङ्कार । क्षुद्र मान=निश्चल बहाव ।

भावार्थ—काम ने उत्तर दिया कि हे मनु उसने तो प्रेम से भरा हुआ, भोला भाला जीवन, की महिमा से पूर्ण अपना हृदय तुम्हें दे दिया था । उसके हृदय में केवल ज्ञान था जो कि शीतल प्रकाश से कांतिमान था । उसके विचार सत्य, पवित्र और शान्ति देने वाले थे ।

किन्तु तुम तो उसके हृदय को ग्रहण कर ही नहीं पाए । तुम ने तो केवल सुन्दर भौतिक शरीर को ही प्राप्त किया था, उससे केवल शारीरिक इच्छा ही शान्त की थी । सागर में विष और अमृत दोनों ही है, यह तो व्यक्ति की इच्छा के ऊपर है कि वह अमृत ग्रहण करे या विष । उसी प्रकार सौंदय के सागर में शान्ति का अमृत भी है और वासना का विष भी । किन्तु हे मनु तुम

इच्छा करेगा और जिसकी प्राप्ति के लिए वह प्रयत्न करेगा वह सदैव उससे दूर रहेगी, उसकी कामना कभी भी पूर्ण नहीं होगी। इसके विपरीत उसे अवांछित वस्तुएँ प्राप्त होती जाएँगी और अपने परिश्रम के फलस्वरूप उसे दुख ही दुख प्राप्त होगा।

व्यक्ति के हृदय का अज्ञान ही उसकी पवित्र भावनाओं को दबा देगा। वह भ्रम में पड़कर सदैव सद्-प्रवृत्तियों से दूर होता जाएगा। एक व्यक्ति दूसरे को भलीभाँति समझ भी नहीं पाएगा। सभी अपने अपने स्वार्थ के घेरे में आबद्ध रहेंगे और सारा समाज बड़े दुख के साथ जैसे तैसे करके अपना जीवन बिताएगा।

वह व्यक्ति ऐसा होगा कि सब कुछ प्राप्त करके भी उसे सन्तोष नहीं होगा। उसकी इच्छाओं का अन्त ही नहीं होगा और इसी कारण वह कभी भी जीवन में सन्तोष का अनुभव नहीं करेगा और स्वार्थ पूर्ति में लगा हुआ दृष्टिकोण ही उसके दुख का कारण बन जाएगा।

पतंग।

अनवरत

शब्दार्थ—अनवरत=निरंतर। उमंग=अभिलाषा। घुमिल हों=स्पर्श कर रहे हों। जलधर=बादल। शैल शृंग=पर्वत की चोटियाँ। जीवन-नद=जीवन रूपी नदी। हाहाकार=दुख की ध्वनि। लालसा=कामना। संतप्त=दुखी सा समीर=सदैव करती रह। स्वजनों का विरोध=अपने ही सम्बन्धियों से विरोध। तम वाली श्याम अमा=अंधकार भरी अमावस्या। दारिद्र्य-दलित=गरीबी से चूमी हुई। बिलखाती हो=बिलाप करती हो। शस्य-श्यामला=धान से हरी। प्रकृति रमा=प्रकृति की लक्ष्मी। दुख नीद=दुख का बादल। रग=नग स्वभाव श्लेष तृष्णा-ज्वाला=कामना की लपटें। पतंगा।

भावार्थ—नई सभ्यता के व्यक्ति में निरंतर अनेक अभिलाषाएँ उठती रहेंगी। जिस प्रकार पर्वतों की चोटियों पर बादल घिर रहते हैं उसी प्रकार व्यक्ति की उच्चाकांक्षाएँ आँसुओं में डूबी रहेंगी व्यक्ति की सभी इच्छाएँ अपूर्ण होंगी और वह निरन्तर अपनी असफलता पर आँसू बहाता रहेगा। जिस

प्रकार पर्वत के ऊपर से कोलाहल करती हुई नदी बहती, है और उसमें विविध तरंगें उठती हैं उसी प्रकार व्यक्ति का जीवन भी शोक ध्वनि से पूरित होगा और उसमें असंख्य पीड़ाएँ भड़का करेंगी। यहाँ सांग रूपक अलंकार है।

व्यक्ति के यौवन में असंख्य कामनाएँ प्रबुद्ध होती हैं। किन्तु उस नई सभ्यता में युवकों की कामनाएँ कभी भी पूर्ण नहीं होंगी और उनका सारा यौवन पतझड़ के समान दुख, और नीरसता में बीत जाएगा। सदैव व्यक्ति के मन में नए नए संशय जन्म लेते रहेंगे जिनके कारण वह दुखी और भयभीत रहेगा। संशयात्मा को कभी सुख और स्वातंत्र्य का अनुभव नहीं होता।

'पतझड़-से' में उपमा अलंकार।

नए समाज में व्यक्ति अपने सम्बन्धियों से ही विरोध करेगा। परिवार में नित्य ही झगड़े उठा करेंगे। और यह विरोध अँधेरी अमावस्या के समान सब‍त्र फैलकर सारे समाज का जीवन अस्त-व्यस्त और विरागमय कर देंगे। आज जो धान से भरी हरी प्रकृति लक्ष्मी के समान दिखाई देती है, उसे गरीबी के दुख में रोना पड़ेगा। प्रकृति की सुषमा भी नष्ट हो जाएगी।

जिस प्रकार बादलों में इन्द्र धनुष बन जाता है और प्रतिक्षण नए-नए रंगों को धारण करता है, इसी प्रकार मनुष्य भी अपने दुखमय जीवन में नित्य ही अपना स्वभाव बदलता रहेगा, नित्य नई चालें चला करेगा। और मनुष्य वैभव की प्यास की आग का पतिंगा बन जाएगा। जिस प्रकार पतिंगा दीपक में स्वयं अपने को जला देता है उसी प्रकार व्यक्ति भी स्वयं तृष्णा की आग में जलकर भस्म हो जाएगा।

वह जीत।

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। आहृत हो=ग्रस्त होकर। मंगल र स्य=कल्याण करने वाला जीवन का रहस्य—प्रेम। सकुचे सभीत=भयभीत होकर संकुचित हो जाए। संसृति=संसार। करुण गीत=दुख भरे गीत। आकांक्षा जलनिधि=

अभिलाषा रूपी सागर। सीमा=अन्त। क्षितिज निराशा=निराशा का क्षितिज। रक्त=खूनी उम। राग-विराग=प्रेम-द्वेष। शतशः=सैकड़ों प्रकार से। विभक्त= बाँध कर। सद्‌भाव=मैत्री, अनुकूलता। विकल=व्याकुल होकर, चंचल। सुन्दर सपना=मधुर कल्पना। अतीत=बीत जाएँ, नष्ट हो जाएँ। पेंगों में झूले हार जीत=झूले की गति के अनुसार ही मनुष्य कभी हारता और कभी जीतता रहे—पेंग झूले के ऊँचे और तेज उतार चढ़ाव को कहते हैं।

भावार्थ— अब यह प्रेम पवित्र नहीं रह जाएगा। यह प्रेम से अभिप्राय उस प्रेम से है जिसका उपदेश, काम ने पहले काम सर्ग में किया है। अब यह कल्याणकारी और रहस्यमय स्वार्थ भावना से ग्रस्त होकर डर कर संकुचित हो जाएगा। निस्वार्थ प्रेम का कोई मूल्य ही नहीं रह जाएगा। जब व्यक्ति निस्वार्थ प्रेम को धोखा देंगे, उसका मजाक उड़ाएँगे तो यह अपने आप ही नष्ट हो जाएगा। प्रेम में किसी को भी सफलता नहीं मिलेगी। सारा संसार विरह के दुख से पीड़ित रहेगा। व्यक्ति का जीवन दर्द भरे गीत गाते ही व्यतीत हो जाएगा।

संध्या के समय यदि सागर को देखा जाए तो वह खून जैसे लाल क्षितिज पर समाप्त होता दिखाई देता है। उसी प्रकार मनुष्य की अभिलाषाओं का अन्त भी घातक निराशा में ही होगा, उसे कभी जीवन में सफलता नहीं मिलेगी। और तुम अपनी शक्ति को सैकड़ों मार्गों में विभक्त करके किसी से प्रेम और किसी से ईर्ष्या करोगे। राग द्वेष में तुम्हारी सारी शक्ति नष्ट हो जाएगी। अभिप्राय यह है कि जब किसी की सहायता की आवश्यकता होगी तब तुम उससे प्रेम करोगे और जब काम निकल जाएगा तो उससे द्वेष करने लगोगे। किसी पर भी तुम्हारा सच्चा प्रेम नहीं होगा।

मस्तिष्क और हृदय मनुष्य की दो बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं। दोनों के सम न्वय से ही मानव उन्नति कर सकता है। किन्तु तुम्हारी नई सृष्टि में बुद्धि और हृदय का सदैव विरोध रहेगा। दोनों में क्षणिक भी सामन्जस्य नहीं होगा। जब मस्तिष्क हृदय को एक ओर चलने को कहेगा तो चंचल हृदय कहीं और ही चल देगा। और इसी प्रकार जब हृदय एक ओर बढ़ेगा तो बुद्धि दूसरी ओर बढ़ेगी।

व्यक्तियों का वर्तमान जीवन दुख में ही बीतेगा और उसकी सारी सुन्दर कल्पनाएँ अपूर्ण रहने के कारण विलीन हो जाएँगी। जिस प्रकार झूला तेजी से ऊपर नीचे आता जाता है उसी प्रकार एक क्षण व्यक्ति विजयी होगा और दूसरे ही क्षण उसे पराजय का दुख भोगना पड़ेगा।

संकुचित युक्ति।

शब्दार्थ—संकुचित=ससीम। असीम=अनन्त। अमोघ=अकाट्य। बाधामय पथ=विघ्नों से भरा मार्ग। भेद=द्वयता। अपूर्ण अहंता=अपूर्णता में ही अहंकार का भाव। रागमयी=मोहमयी। व्यापकता=विशालता। नियति=भाग्य। सर्वज्ञ=सब कुछ जानने वाला। क्षुद्र अंश=छोटा हिस्सा। रचे छन्द=जाल फैलाए। कर्तृत्व सकल=सम्पूर्ण सृजन। छाया-सी=धुंधली। ललित कला=सुन्दर कला। नित्यता=सनातनता। तर्क से भरी युक्ति=तर्कपूर्ण उक्ति।

भावार्थ—मनुष्य की अनन्त और अकाट्य शक्ति सीमित हो जाएगी। उसे अपने क्षेत्र का ज्ञान ही नहीं हो पाएगा। और द्वयता से पूर्ण श्रद्धा सदैव मनुष्य जीवन को विघ्नपूर्ण मार्गों पर लेकर चलेगी। मनुष्यों में श्रद्धा होगी किन्तु उसके मूल में भी ईर्ष्या और क्षोभ छिपा होगा। अथवा कभी-कभी अपनी अपूर्णता में ही अहंकार के कारण अपने को सर्वशक्ति मान समझने लगेगा! अपने सामने सारे संसार को तुच्छ गिनेगा!

मनुष्य का जीवन बड़ा विशाल है। किन्तु यह विशालता भाग्य की प्रेरणा बन कर सीमित हो जाएगी। उस विशालता को ही भाग्य अपना साधन बनाकर उसे संकुचित कर देगा। भाव यह है कि जब मनुष्य का दृष्टिकोण सीमित हो जाएगा तो पारस्परिक संघर्ष बढ़ेगा। दृष्टिकोण के सीमित होने अतः पारस्परिक झगड़ों के मूल में भाग्य का ही हाथ रहेगा। समग्र ज्ञान का केवल एक छोटा सा भाग ही इस नवीन सभ्यता को प्राप्त होगा। और यह नया व्यक्ति उसी अल्प ज्ञान को विद्या समझ कर उसकी माया में रंग जाएगा।

नाशवान और अस्पष्ट ललित कलाओं क सृजन में ही मनुष्य अपनी पूण

सृजनात्मिका शक्ति का विकास मानेगा, पर समझेगा कि जो कुछ मैंने बनाया है यही श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है, उससे अच्छा और कुछ है ही नहीं। मनुष्य जीवन की अनित्यता से अनभिज्ञ हो जाएँगे। काल को क्षण क्षण में विभाजित कर देंगे। काल के सनातन प्रवाह के और अपनी नित्यता के ज्ञान के अभाव में मनुष्य अपने को और सारे संसार को नश्वर समझ लेगा और दुखों में घिर जाएगा।

तुम्हें यह भी समझ नहीं रहेगी कि बुराई की अपेक्षा शुभेच्छा और सहृदयता की शक्ति बड़ी है। तुम बुराई को ही अधिक प्रभावशाली मानकर उसी को स्वीकार कर लोगे और तुम्हारा तर्क पूर्ण ज्ञान असफल होगा। तुम्हारा तर्क तुम्हारी किसी बात को सिद्ध नहीं कर सकेगा।

जीवन अशुद्ध।

शब्दार्थ—रक्त अग्नि=खून और आग। शुद्ध=पवित्र। आवृत किए रहो ढके रहो। कृत्रिम=नकली। वसुधा=धरती। समतल=एक सी भूमि। दम्भ स्तूप=अहंकार का स्तूप, स्तूप से बड़प्पन भी व्यक्त है। संसृति=संसार। विशुद्ध=पावन। सब निधि=नवीन खजाना, हृदय। वंचित=रहित। रंग रज= उलझे रहो। प्रपंच=प्रचार। कलुषित=दूषित।

भावार्थ—मनुष्य का सारा जीवन ही एक युद्ध बन जाएगा। उस युद्ध में खून और आग की वर्षा होगी। चारों ओर नाश के दृश्य भरे हुए उपस्थित होंगे। और उस खूनी तूफान में पवित्र भावनाओं का सर्वथा नाश हो जाएगा। तुम स्वयं अपने ही सन्देहों से व्याकुल रहोगे। तुम्हारे कर्म तक तुम्हारे विरोधी बन जाएँगे।

और इस प्रकार मोह में पड़कर अपना नाश करते हुए भी तुम समाज के सामने अपना नकली किन्तु सौम्य रूप दिखलाते रहोगे। तुम धरती की सम भूमि पर चलते फिरते एक अहंकार के स्तूप के समान बड़ और मदान्ध रहोगे।

अहा इस सृष्टि का महान रहस्य है। यह पवित्र और विश्वास से भरे

दुई है। उसने तुम्हें अपना सर्वस्व दान कर दिया किन्तु तुमने उसे धोखा दिया, उसका सब कुछ लूट लिया।

तुम सदैव अपने वर्त्तमान के सुख से रहित रहोगे तुम अपने वर्त्तमान जीवन से असन्तुष्ट होकर सदैव भविष्य के जीवन में ही उलझे रहोगे। तुम्हारा सारा प्रपच ही दूषित हो जाए।

तुम भांत।

शब्दार्थ—जरा=वृद्धावस्था। चिर अशांत=सदैव व्यग्र। जीवन में परिवर्तन अनन्त=जीवन में सदैव परिवर्तन होता रहता है। श्रद्धा वंचक=श्रद्धा हीन। संतति=सन्तान। ग्रह-रश्मि रज्जु=नक्षत्रों की किरणों की रस्सी से, ज्योतिष के अनुसार ग्रह दिशा से। श्रद्धा से ज्ञात होने वाला रहस्य। अति चारी=अत्याचार करने वाला। परलोक वंचना=दूसरे लोक का धोखा, स्वर्ग सुख का धोखा। बुद्धि विभव=बुद्धि की क्रियाओं से। भांत=थक कर।

भावार्थ—तुम सदैव वृद्धावस्था और मृत्यु में अशांत रहोगे। अभी तक तो तुम जीवन के परिवर्तन को अनन्त समझे हुए थे किन्तु अब तुम अमरत्व की भावना को भूल जाओगे। तुम व्याकुल होकर अब जीवन के परिवर्तन को सान्त कहोगे। पहले तो तुम्हें जीवन की अक्षय शक्ति पर विश्वास था और तुम अमर जाति के गुणों से युक्त थे, किन्तु अब तुम्हारा जीवन मृत्यु में समाप्त हो जाएगा।

तुम सदैव दुख देने वाले चिन्तन के प्रतीक के रूप में माने जाओगे। तुमने केवल चिन्तन का सहारा लिया और इसी कारण उसका अब भयंकर परिणाम भी भोगना पड़ेगा। अब तुम्हारी सन्तान श्रद्धा रहित होकर सदैव व्याकुल रहेगी। वह अपने भाग्य को ज्योतिष की ग्रह-दिशाओं में बांध कर सदैव एक ही मार्ग पर चलती रहेगी, सदैव दुख और नाश के मार्ग पर चलती रहेगी।

श्रद्धा से जानने योग्य ही यह रहस्य है कि यही संसार मंगलमय है यहीं सुख के सब साधन प्राप्त हैं। किन्तु श्रद्धा हीन होने के कारण तुम्हारी प्रजा

सृजनात्मिका शक्ति का विकास मानेगा, वह समझेगा कि जो कुछ मैंने बनाया है वही श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है, उससे अच्छा और कुछ है ही नहीं। मनुष्य जीवन की अनित्यता से अनभिज्ञ हो जाएँगे। काल को क्षण क्षण में विभाजित कर देंगे। काल के सनातन प्रवाह के और अपनी नित्यता के ज्ञान के अभाव में मनुष्य अपने को और सारे संसार को नश्वर समझ लेगा और बुराई में घिर जाएगा।

तुम्हें यह भी समझ नहीं रहेगी कि बुराई की अपेक्षा शुभेच्छा और सहृदयता की शक्ति बड़ी है। तुम बुराई को ही अधिक प्रभावशाली मानकर उसी को स्वीकार कर लोगे और तुम्हारा तर्क पूर्ण ज्ञान असफल होगा। तुम्हारा तर्क तुम्हारी किसी बात को सिद्ध नहीं कर सकेगा।

आवन अशुद्ध।

शब्दार्थ—रक्त अग्नि=खून और आग। शुद्ध=पवित्र। आवृत किए रहो ढके रहो। कृत्रिम=नकली। वसुधा=धरती। समतल=एक सी भूमि। दम्भ-स्तूप=अहंकार का स्तूप, स्तूप से बड़ता भी व्यक्त है। संसृति=संसार। विशुद्ध=पावन। नव निर्मित=नवीन बनाना, हृदय। संचित=रक्षित। रहो रत=उसमें रहो। प्रपंच=प्रयास। अशुद्ध=दूषित।

भावार्थ—मनुष्य का सारा जीवन ही एक युद्ध बन जाएगा। उस युद्ध में खून और आग की वर्षा होगी। चारों ओर नाश के दर्द भरे दृश्य उपस्थित होंगे। और उस खूनी तूफान में पवित्र भावनाओं का सर्वथा लोप हो जाएगा। तुम स्वयं अपने ही सन्देहों से व्याकुल रहोगे। तुम्हारे कर्म स्वयं तुम्हारे विरोधी बन जाएँगे।

और इस प्रकार मोह में पड़कर अपना नाश करते हुए भी तुम समाज के सामने अपना नकली किन्तु सौम्य रूप दिखलाते रहोगे। तुम धरती की सम भूमि पर चलते फिरते एक अहंकार के स्तूप के समान जड़ और मदान्ध रहो गे।

श्रद्धा इस सृष्टि का महान रहस्य है। यह पवित्र और विश्वास से भरी

हुई है। उसने तुम्हें अपना सर्वस्व दान कर दिया किन्तु तुमने उसे धोका दिया, उसका सब कुछ लूट लिया।

तुम सदैव अपने वर्त्तमान के सुख से रहित रहोगे तुम अपने वर्त्तमान जीवन से असन्तुष्ट होकर सदैव भविष्य के जीवन में ही उलझे रहोगे। तुम्हारा सारा प्रपंच ही दूषित हो जाए।

तुम भ्रांत।

शब्दार्थ—जरा=वृद्धावस्था। चिर अशांत=सदैव व्यग्र। जीवन में परिवर्तन अनन्त=जीवन में सदैव परिवर्तन होता रहता है। श्रद्धा वंचक=श्रद्धा हीन। संतति=सन्तान। ग्रह-रश्मि रज्जु=नक्षत्रों की किरणों की रस्सी से, ज्योतिष के अनुसार ग्रह दिशा से। श्रद्धा से ज्ञात होने वाला रहस्य। अतिचारी=अत्याचार करने वाला। परलोक वंचना=दूसरे लोक का धोका, स्वर्ग सुख का धोका। बुद्धि विभव=बुद्धि की क्रियाओं से। भ्रांत=थक कर।

भावार्थ—तुम सदैव वृद्धावस्था और मृत्यु में अशांत रहोगे। अभी तक तो तुम जीवन के परिवर्तन को अनन्त समझे हुए थे किन्तु अब तुम अमरत्व की भावना को भूल जाओगे। तुम व्याकुल होकर अब जीवन के परिवर्तन को सान्त कहोगे। पहले तो तुम्हें जीवन की अक्षय शक्ति पर विश्वास था और तुम अमर जाति के गुणों से युक्त थे, किन्तु अब तुम्हारा जीवन मृत्यु में समाप्त हो जाएगा।

तुम सदैव दुख देने वाले चिन्तन के प्रतीक के रूप में माने जाओगे। तुमने केवल चिन्तन का सहारा लिया और इसी कारण उसका अब भयंकर परिणाम भी भोगना पड़ेगा। अब तुम्हारी सन्तान श्रद्धा रहित होकर सदैव व्याकुल रहेगी। वह अपने भाग्य को ज्योतिष की ग्रह-दिशाओं में बांध कर सदैव एक ही मार्ग पर चलती रहेगी, सदैव दुख और नाश के मार्ग पर चलती रहेगी।

श्रद्धा से जानने योग्य ही यह रहस्य है कि यही संसार मंगलमय है यहीं सुख के सब साधन प्राप्त हैं। किन्तु श्रद्धा हीन होने के कारण तुम्हारी प्रजा

इस रहस्य का नहीं ज्ञान पाएगी। और यह इस संसार को दुखपूर्ण और असत् मानकर सदैव परलोक की आशा किया करेगी। उसका विश्वास इस लोक पर होगा ही नहीं। उसकी आखें तो स्वर्ग में लगी होंगी।

नवीन मानव अपनी अनेक आशाओं के भार को सहन करते हुए भी निराश ही रहेगा। वह अपनी ही बुद्धि के तर्क जाल में फँस कर अज्ञान में पड़ जाएगा। और वह जीवन भर थका होने पर भी अपने उसी मार्ग पर चलता जाएगा।

काम के इस शाप वाणी का कथा विकास की दृष्टि से, प्रसाद जी के चिन्तन की दृष्टि से, और कवि की युग-सचेष्ट प्रतिभा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि आज के जीवन का चित्र खींच रहा है। साथ यह भी ध्यान देने योग्य है कि सारस्वत प्रदेश को बसाकर जब मनु नवीन सभ्यता की प्रतिष्ठा करते हैं, तब उसकी भी यही दशा होती है जो काम की वाणी में व्यक्त है। इस सब का मूल कारण एक है। और वह यह कि मनुष्य का मनुष्य पर विश्वास नहीं रहा, सभी तर्क और स्वार्थ में बँध गए हैं कोई भी श्रद्धा की महिमा को नहीं समझता।

अभिशाप भी न।"

शब्दार्थ—अभिशाप प्रतिध्वनि = शाप की गूँज। नभ सागर—आकाश रूपी सागर। अंतस्तल=भीतर। महा मीन=बड़ी मछली। मृदु = कोमल। लहर=हवा का झौंका। फेनोपम = झाग के समान। निस्तब्ध = शान्त। अखिल लोक=सारा संसार। तंद्रालस = निद्रा का आलस। विजन प्रांत=सुना प्रदेश। रजनी-तम=रात का अंधकार। पु जीभूत=संचित। सदृश=समान। अदृष्ट=भाग्य। यातना=दुख। अवशिष्ट=शेष।

भावार्थ—इसके बाद काम की शाप वाणी शान्त हो गई। वह ध्वनि उसी प्रकार आकाश में समा गई जैसे कि सागर के भीतर कोई महान मछली छिप जाती है और फिर ऊपर उसका कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। धीरे धीरे पवन के झोंके चला रहे थे। फेन के समान बिखरे हुए तारों की ज्योति

मन्द पड़ गई थी।

सारा संसार शान्त था। यह सूना प्रदेश भी निद्रा के आलस में डूबा हुआ दिखाई देता था। रात्रि के घना अंधकार के समान हो निराशा से भरे हुए मनु व्याकुल होकर सांस ले रहे थे।

वे यह सोच रहे थे कि जिस काम ने पहले पहल मेरे जीवन में अपनी दुखपूर्ण छाया डाली थी, आज फिर वही मेरा भाग्य बनकर आया है। उसी ने मुझे श्रद्धा की प्राप्ति के लिए कहा था जिसके फलस्वरूप आज मैं यह विपत्ति भोग रहा हूँ।

आज काम ने मेरे भविष्य जीवन का भी निश्चय कर दिया है। अब तो मेरे जीवन में अपार दुख ही दुख है। और अब तो कोई उपाय भी नहीं है। कोई ऐसा साधन भी तो नहीं है जिसके द्वारा मैं अपने जीवन को सुधार सकूँ।

करता सु संवाद।

शब्दार्थ—मधुर नाद=मधुर ध्वनि। श्यामल=नीली हरी। निलिप्त भाव-सी=तटस्थ भावना के समान। अप्रमाद=बिना आलस्य के, निरंतर। उपल=पत्थर। निष्ठुर=निर्दय। जड़ विषाद=जड़ता और दुख के प्रतीक। कर्म निरंतरता=निरंतर कर्म में लीन रहने की भावना। स्ववश=अपने अधिकार में, अनुभूत अनंत=अपार। हिम-शीतल=बर्फ के समान ठण्डी। आलोक= प्रकाश। अरुण=लाल। अद्भुत था=चकित कर देने वाला था। निज निर्मित पथ=अपना बनाया हुआ मार्ग। निर्विवाद=बिना किसी विघ्न के। सु-संवाद= सुखद संदेश।

भावार्थ—उधर सरस्वती की मधुर कल कल ध्वनि गूँज रही थी। वह उस हरी घाटी में तटस्थता की भावना के समान निरंतर बहती चली जा रही थी। उसे किसी के सुख दुख से कोई प्रयोजन नहीं था। उसने सारे पत्थरों की उपेक्षा की थी मानो वे सब निर्दयता, जड़ता और दुख के प्रतीक थे।

सरस्वती तो हर्ष की धारा के समान थी जिसमें मधुर संगीत मुखरित

था। वह निरंतर कर्म में लीन रहती थी, बहती रहती थी यही उसके अनुभूत अनन्त ज्ञान का प्रतीक था।

यहाँ सरस्वती का चित्रण एक निस्संग कर्म योगी के समान हुआ है। उसका निरंतर कर्मशील रहना ही उसके अनुभूत ज्ञान का प्रतीक है।

सरस्वती नदी की बर्फ सी शीतल लहरें बार बार किनारों से टकरा रही थीं। उन लहरों पर प्रभात कालीन सूर्य की लाल लाल किरणें छिटक रही थीं।

सरस्वती नदी का यह दृश्य सचमुच चकित कर देने वाला था। सरस्वती अपने बनाए हुए मार्ग पर बिना किसी रोक-टोक के चली जा रही थी। वह मधुर ध्वनि द्वारा कोई सुखद संदेश भी देने जा रही थी।

प्राची विराग।

शब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा। मधुर=सुन्दर सरस। राग=लालिमा। मार पराग=पुष्प रज। परिमल=सुगन्धि। श्यामल=नीले, काले। कलरव सब उठे जाग=सभी मधुर ध्वनियाँ गूँज उठीं, पक्षी जाग कर चहचाने लगे। आलोक रश्मि=प्रकाश की किरण। उषा अँचल=प्रभात का आँचल। आंदोलन अमन्द= तीव्र हलचल, पवन के झोंके के कारण। बिखरने का = बाँटने को मकरन्द=पुष्प रस। रम्य=आकर्षक। फलक=पट। नवल चित्र-वीथी=नए चित्र के समान। वह नयन मोहत्सव की प्रतीक=नेत्रों से महान उत्सव की प्रतिमा। अम्लान= प्रफुल्ल। नलिन=कमल। सुषमा=सौन्दर्य। सुस्मित=मुस्कराता हुआ। संसृति= सृष्टि। सुराग=प्रेम। श्रम=निराशा। विराग=विरक्ति उदासीनता।

भावार्थ—धीरे धीरे रात बीत गई। पूर्व दिशा में मनोहर लालिमा बिखर गई। पूर्व दिशा में उस लालिमा के बीच ही सुनहले और पुष्प रज, से भरे एक कमल के समान सूर्य का उदय हुआ। चारों ओर उसकी प्रकाश रूपी सुगंधि व्याप्त हो गई। उस प्रकाश में सारे पक्षी जो अंधकार में विलीन थे जाग उठे और मधुर ध्वनि से चहचाने लगे।

उषा का आँचल सूर्य की किरणों से बुना हुआ था। चारों ओर सूर्य की

किरणें व्याप्त थीं। प्रभात का शीतल पवन चारों दिशाओं में पुष्प रस बाँटने के लिए उषा के इस स्वर्णिम आँचल को, तीव्रता से हिला रहा था। पवन के झौंके चारों ओर सुगन्धि बिखेर रहे थे।

जिस प्रकार आकर्षक चित्र पट पर एक नवीन चित्र रचा जाता है उसी प्रकार उस रमणीय वातावरण के बीच एक सुन्दर बाला प्रकट हुई। जब कभी कोई महान उत्सव होता है तब नए कमलों की मालाएँ बनाई जाती हैं। वह बाला नेत्रों के लिए सौंदर्य के महान उत्सव की प्रतीक नए कमलों की एक माला के समान थी। भाव यह है कि उस बाला के सारे अंग नवीन कमलों के समान थे।

उसका मुख परम सौंदर्य की निधि के समान था। वह मुस्कराती हुई सी सारे संसार पर प्रेम की वर्षा कर रही थी। उसके इस प्रेम में जीवन की सारी निराशा और उदासीनता विलीन हो जाती थी। उसकी मुस्कराहट व्यक्ति के हृदय की निराशा और उदासीनता को दूर कर, में संसार के लिए एक नवीन प्रेम का संचार करती थी।

बिखरीं ताल।

शब्दार्थ—अलकें=बाल। विश्व मुकुट सा=संसार का मुकुट, उसके माला में सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य था जो संसार को मुकुट के समान सुशोभित करता था। शशिमंडल=सम्पूर्ण कलावाला चन्द्रमा। सदृश=समान। पद्म पलाश=कमल पत्र। चषक=प्याला। अनुराग=प्रेम। विराग=उपेक्षा। गुंजरित मधुप से=भौंरों की गुंजार से युक्त। मुकुल सदृश=कली के समान। आनन्द=मुख। वक्ष स्थल=छाती। संसृति=संसार। कम-कलश=कम का घड़ा। वसुधा=धरती। नभ=आकाश। अभयज=अभय करने वाला विशेषण विपर्यय। अवलम्ब=सहारा। त्रिवली=पेट पर पड़ने वाली तीन रेखाएँ। त्रिगुण तरंग मयी=प्रकृति के तीन गुणों की तरंगों के समान। आलोक वसन=प्रकाश का वस्त्र उज्ज्वल वस्त्र। अराल=विरला।

भावार्थ—उस बाला के केश तर्क-जाल के समान बिखरे हुए थे। उसका

रहा हूँ। क्लेश=विपत्ति। आए दिन मेरा=मेरे भी अच्छे दिन आएँ। सहज मोल=वास्तविक मूल्य। भव=संसार।

भावार्थ—तेजयुक्त और हर्ष भरा मुख खोल कर इड़ा ने स्वाभाविकता से उत्तर दिया कि मेरा नाम इड़ा है। बताओ तो कि तुम कौन हो और यहाँ कैसे घूम रहे हो? इड़ा ने जब यह कहा तो उसकी नुकीली नासिका के पुट फरक रहे थे और उसके होठों पर रमणीय मुस्कराहट फैली थी।

मनु ने उत्तर दिया कि हे बाले मेरा नाम मनु है और मैं संसार का भ्रमण करता हुआ दुःख सहन कर रहा हूँ।

इस पर इड़ा ने कहा कि मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। किन्तु तुम जिस उजड़े हुए सारस्वत देश को देख रहे हो यह मेरा ही देश था। भौतिक क्रान्तियों के कारण ही इसकी यह दशा हो गई है। किन्तु मैं इस आशा में यहीं पड़ी हूँ कि कभी मेरे भी अच्छे दिन आएँगे।

मनु ने उत्तर दिया कि हे देवि! मैं तो केवल यह पूछने के लिए आया हूँ कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? तुम मुझे यह बताकर मेरे भविष्य का निश्चय कर दो। अभी तक अपने भविष्य के विषय में मैं कोई भी लक्ष्य नहीं बना पाया हूँ, किन्तु तुमसे उत्तर पाकर उसके अनुकूल ही मैं अपना भविष्य बनाऊँ।

इस ... ... जाल।

शब्दार्थ—कुहर=बिल, छेद। इन्द्रजाल=जादू। नखत=नक्षत्र। माल=माला। भीषणतम=सबसे अधिक भयङ्कर। वसुधा=धरती। लघु-लघु=छोटे छोटे। निष्ठुर=निर्दय। अधिपति=स्वामी। सुख-नीड़=सुख के घोंसले। अविरत=निरन्तर। विषाद का चक्रवाल=दुःख का घेरा। पट=पर्दा।

भावार्थ—किसने इस संसार रूपी गुफा में अपना जादू फैलाकर ग्रह, तारे और नक्षत्रों की माला बनाई है। इसका रचने वाला महाकाल सागर की सबसे भयङ्कर लहर के समान ही खेल रहा है। जिस प्रकार सागर की भयङ्कर

लहर अपने खेल ही खेल में अनेक प्राणियों का नाश कर देती है, उन्हें बहा कर ले जाती है, उसी प्रकार इस संसार का रचयिता भी मृत्यु के खेल खेल रहा है।

क्या उस निर्दय की भयङ्कर रचना का उद्देश्य छोटे-छोटे प्राणियों को भयभीत ही करना है? यहाँ तो केवल विध्वंस ही विजयी होता है। सभी वस्तुएँ नाश की गत में विलीन हो जाती हैं।

यदि ऐसा ही है तो मूर्ख मनुष्य, इस नाशमयी रचना का निर्माण करने वाली क्यों समझते हैं? इसका स्वामी तो वही होगा जिसने आज तक मनुष्य की दुखों की पुकार नहीं सुनी है। यदि वह एक बार दर्द भरी पुकार सुन लेता तो अपनी भयङ्करता को त्याग देता।

यहाँ सुख के घोंसलो को सदैव विषाद का वृक्ष घेरे रहता है। छोटे से सुख बड़े-बड़े दुखों को सहन करना पड़ता है। दुखों ने सुख को आक्रान्त कर दिया है। किसने ससार पर इस दुख के पर्दे को डाल दिया है?

शनि रोक।

शब्दार्थ—सुदूर=बहुत दूर। गगन शोक=आकाश रूपी दुख। श्रोक=पुञ्ज। नियति जाल=भाग्य का फन्दा। निर्भर न करे=आश्रय न ले। गतव्य=लक्ष्य। कर=हाथ।

भावार्थ—सामने बहुत दूर शनि का काला लोक दिखाई देता है। यह सारा आकाश रूपी दुख उसी की छाया के समान ऊपर-नीचे फैला हुआ है। किन्तु सुनते हैं कि उसके परे भी प्रकाश के एक विराट् पुञ्ज हैं।

क्या वह अपनी एक किरण देकर ही मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता दे सकता है और इस प्रकार मुझे भाग्य के फन्दे से छुड़ा सकता है।

इस पर इड़ा ने कहा वह चाहे कोई भी हो किन्तु वह तुम्हारी क्या सहायता कर सकता है? मनुष्य को पागल बनकर किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उसे तो अपनी कुशलता और बल को परख कर अपने लक्ष्य मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए।

तुम किसी के सामने हाथ मत फैलाओ वरन अपनी शक्ति के सहारे ही चलो। जो व्यक्ति आगे बढ़ने की अभिलाषा रखता है उसे कोई भी नहीं रोक सकता।

"हाँ   छाया।"

शब्दार्थ—सहाय=सहायक। परम रमणीय=अत्यन्त सुन्दर। अखिल ऐश्वर्य=सम्पूर्ण वैभव। शोधकविहीन=अन्वेषक से रहित। पटल=पर्दा। परिकर कसकर=कमर कसकर, पूरी तरह तैयार होकर। समता=शांति। निर्णायक=निश्चय करने वाले। सहज साधन=सरल साधन।

भावार्थ—इड़ा ने फिर मनु से कहा कि यह बिल्कुल निश्चित है कि तुम स्वयं ही अपने सहायक हो। तुम्हें किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं है। यदि मनुष्य बुद्धि के अनुसार काम न करे तो फिर वह किसका सहारा ले सारे विचारों और संस्कारों की परीक्षा करने का केवल एक ही साधन है, और वह है बुद्धि।

यह प्रकृति अत्यन्त सुन्दर है। इसमें सम्पूर्ण वैभव भरा हुआ है। किन्तु अभी तक किसी ने भी उसके वैभव को खोजने का प्रयास नहीं किया है। तुम्हें यह चाहिए कि इसका रहस्य जानने के लिए तुम कमर कस कर तैयार हो जाओ और कर्म में लीन हो जाओ।

जो कुछ भी तुम्हारे मार्ग में आए तुम सब को अपने अधिकार में लेते जाओ, उसके सम्बन्ध में नियम बनाओ और बस अपनी शक्ति बढ़ाते चले जाओ। कहाँ समता है और कहाँ विषमता है, क्या उचित है और क्या अनुचित है, इसके निश्चय करने वाले केवल तुम ही हो।

तुम जड़ वस्तुओं को भी चेतन बनादो और यह करने के लिए विज्ञान ही एकमात्र साधन है। यदि तुम विज्ञान की शक्ति से जड़ वस्तुओं में भी चेतना भर दोगे तो सारे संसार में तुम्हारा यश व्याप्त हो जाएगा।

हँस   शोक।

शब्दार्थ—गगन=आकाश। शून्य लोक=सूना संसार। क्रन्दन करते=

विलाप करते । विरह कोक=विरह का दुख सहने वाले कोक पक्षी के समान । विषम=कठोर । प्राची=पूर्व दिशा । कौतुक=खेल । मलयाचल की बाला=वायु लख=देखकर । कपोल=लाली । तारादल=तारों का समूह । उन्निद्र=जाग्रत, खिले हुए । कमल-कानन=कमलों का वन । वसुधा=धरती । विस्मृत=भूली । सकल शोक=सारा दुख ।

भावार्थ—इड़ा की बातों ने मनु को उत्साहित किया । उनकी सारी निराशा दूर हो गई । किन्तु प्रसादजी ने आकाश और उस प्रान्त के हर्ष का चित्रण कर मनु के हृदय की उत्फुल्ल अवस्था का चित्र खींचा है ।

वह आकाश और वह सूना प्रदेश हँस पड़े । सर्वत्र आनन्द छा गया । उस सूने प्रान्त में न जाने कितने समाजों का निर्माण हुआ, व्यक्तियों ने जीवन का विकास किया, मृत्यु में शान्त हो गए और दुखों का अनुभव किया । उस सूने प्रान्त में न जाने कितने प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं से मिले होंगे और फिर वहीं चकवा-चकवी के समान ही बिछुड़ कर वियोग के दुख का अनुभव किया होगा ।

जब मनु ने अपने सर पर सारस्वत नगर को फिर से बसाने का भयङ्कर भार ले लिया था । जब ऊषा ने मनुष्य को अपना राजकार्य सँभालने के लिए उद्यत देखा तो वह पूर्व दिशा में हँसने लगी । ऊषा का प्रकाश सवत्र फैल गया ।

नव निर्माण के उस खेल को देखने के लिए मलयाचल की चंचल पुत्री वायु भी चल पड़ी । शीतल मद सुगन्ध समीर बहने लगा । प्रकृति के आकाश रूपी गालों पर लालिमा देखकर तारों का मतवाला समूह विलीन होने लगा । जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ने लगा वैसे ही वैसे तारे भी छिपने लगे ।

कमलों के वन विकसित हो गए थे और उस पर भँवरे गुंजार करते हुए मधुर क्रीड़ाएँ कर रहे थे । उस समय के आनन्दमय वातावरण को देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो धरती अपना सारा दुख भूल गई है ।

"जीवन ... द्वार।"

शब्दार्थ—जीवन निशीथ=जीवन रूपी रात। क्षितिज=धरती और आकाश के मिलन की रेखा। मुख आवृत कर=मुख ढककर। कलरव=मधुर ध्वनि। मनोभाव=हृदय के भाव। सोए विहग=पक्षी जो रात में सोये थे। अवलम्ब= सहारा। विकल्प=भ्रम, अनिश्चय। सङ्कल्प=दृढ़ निश्चय। कर्मों की पुकार= कर्मशील।

भावार्थ—मनु ने इड़ा से कहा कि जिस प्रकार उषा के आने पर रात का अन्धकार अपना मुँह छिपाकर क्षितिज के पार भागता चला जाता है, उसी प्रकार तुम्हें देखते ही मेरे जीवन की सारी निराशा दूर हो गई है। हे इड़ा! तुम आज मेरे जीवन में उषा के समान ही उदारता और सहृदयता लेकर उपस्थित हुई हो।

जब उषा का आगमन होता है तो सोए हुए पक्षी जाग उठते हैं, वे मधुर ध्वनि में गाने लगते हैं, और सर्वत्र किरणों की लहरें बिखर जाती हैं। उसी प्रकार तुम्हारे आने पर मेरे सोए हुए भाव जागकर कूकने लगे हैं और सर्वत्र प्रसन्नता की लहरें इठलाती दिखाई देती हैं।

जब मैंने दूसरों का सहारा छोड़कर बुद्धिवाद को अपना लिया तो मैं बड़ी लालसा से विकास की ओर अग्रसर हुआ और तुम तो मानो साक्षात् बुद्धि ही हो जिसे मैंने आज पाया है।

अब तो मेरे भ्रम दृढ़ निश्चय बन जाएँगे। मेरा सारा जीवन कर्मों में में लीन होगा। मैं कर्मठ बनूँगा और इस प्रकार आगे बढ़ने से सारे सुखों के रास्ते मेरे लिए खुल जाएँगे।

———

स्वप्न

जब मनु कामायनी को छोड़कर चले आए तो उसकी सारी शोभा नष्ट होने लगी। वियोग की असह्य पीड़ा ने उसकी कमनीयता को जला दिया। न तो उसमें पहले जैसी सरसता थी, न पहला सा आकर्षण था। उसकी दशा प्रातःकालीन चाँद के समान है जिसकी चाँदनी क्षीण हो जाती है। उसका जीवन वियोग की एक दर्द भरी कहानी बन गया था।

कामायनी का जीवन एक ऐसे तालाब के समान था जिसके सभी कमल मुरझा गए हैं। वह चुपचाप अपने विरह के दुख को सहन करती जा रही थी! वह एक विरह की ऐसी नदी थी जिसका कहीं अन्त नहीं था।

जब रात के समय सूर्य की किरणें भी सोने चलीं जाती थीं, तब भी श्रद्धा दुखी रहती थी। अंधेरा होते ही उसे मनु की स्मृति बेचैन करने लगती थी। श्रद्धा बैठी बैठी प्रकृति से बातें किया करती थी। उसने मन्दाकिनी से पूछा कि क्या तुम बता सकती हो कि जीवन में सुख अधिक है या दुख!

वह सोचा करती थी कि इस संसार में नवीनता और विकास का आकर्षण तो है किन्तु सभी दृश्य नष्ट होकर निराशा के विशाल वातावरण का निर्माण करते हैं। वह अपने आप को समझाया करती थी। यदि मनु मेरे समीप नहीं है तो भी मुझे धीरज के साथ वियोग की ज्वाला को सहन करना चाहिए। हे कामायनी! तू अपना हृदय कठोर करले और जो भी विपत्ति तुझ पर आती है, सब सहन कर!

मेरी आँखों में आँसू भर भर आते हैं! किन्तु वे किसके चरणों को धोएँगे! मेरा स्वामी तो बिना अपराध के ही मुझ से रूठ गया है। किन्तु अब जो बीत गया उसकी स्मृति से क्या लाभ! अब न तो मेरे हृदय में वैसी कामना है और न हो वैसा प्यार रहा है। मेरी सारी आशाएँ और अभिलाषाएँ विलीन होती जा रही हैं। मेरा निर्दय प्रियतम विजयी हुआ। किन्तु

फिर भी मैं पराजिता नहीं हूँ। मैंने जो विश्वास किया था, वह केवल मेरा मोह था। मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था, किन्तु अब तो मैं वे सब बातें भूलती जा रही हूँ। हाँ इतना मुझे अवश्य याद है कि कभी मैंने कुछ दे दिया था।

हृदय को किसी आदान की आशा नहीं करनी चाहिए। जितना उसे दान करना हो वह कर दे किन्तु निस्वार्थ होकर। वे जो मेरे जीवन के मधुर दिवस आए और जब मुझे सर्वत्र आनन्द की अनुभूति होने लगी थी उसी समय वे मुझे छोड़कर चले गए। सभी घर आने वाले घर आ चुके थे किन्तु श्रद्धा की प्रतीक्षा करते-करते एक युग बीत गया और मनु लौटकर नहीं आए।

जब कामायनी इस प्रकार सोच रही थी उसी समय उसे दूर से 'माँ' शब्द सुनाई दिया। वह व्याकुल होकर अपने पुत्र को अङ्क में भरने के लिए दौड़ पड़ी। श्रद्धा ने बालक से पूछा कि अब तक तू कहाँ था? तू भी अपने पिता के समान ही है और उन्हीं के समान ही तू ने भी मुझे बहुत सुख-दुख दिए हैं। मैं तुझे इस डर से बाहर जाने से नहीं रोकती कि कहीं तू भी रूठ न जाए।

बालक बोला माँ यह तो बहुत अच्छा हो मैं रूठ जाऊँ और तुम मुझे मनाओ तो इसमें बड़ा आनन्द आएगा। लो अब तो मैं सोने जा रहा हूँ। मैंने खूब पेट भर कर फल खा लिए हैं और अब सबेरे तक मेरी नींद नहीं खुलेगी।

श्रद्धा का प्रणय बन्धन ही अब मुक्ति जैसा सुखद प्रतीत हो रहा था। उसका प्रिय उससे जितना ही दूर था, वह उतना ही हृदय के पास आता जाता है। जब वह निद्रा में मग्न होगई तो प्रिय स्वप्न में दिखाई देने लगा।

श्रद्धा ने देखा कि मनु के आगे आगे हाथ में मशाल लिए इड़ा चली जा रही है। उसने मनु को विपत्तियों से बचाया, उन्हें उन्नति के शिखर पर पहुँचाया। और उन्हें तनिक भी थकान का अनुभव नहीं होने दिया। मनु को प्राप्त होने वाली सफलता की प्राप्ति की इच्छुक जनता ने मनु के नियमन में खूब परिश्रम किया।

मनु का सुन्दर नगर बसा हुआ है। सभी उनके सहयोगी हैं। सेवी हो

रही है, भावुएँ गलाई जा रही हैं, नए-नए गहने और वस्त्र बन रहे हैं। सारे प्राणी मिल कर परिश्रम करते थे जिसके फलस्वरूप यह नगरी धन-धान्य से भर गई। सारे सुख के साधन एकत्र किए जा रहे थे। आज व्यक्ति निर्भीक होकर अपनी शक्ति के आधार पर धरती पर निवास कर रहा था।

श्रद्धा ने जब अपने को विचित्र स्थान पर पाया तो वह चकित होकर चारों ओर देखती हुई आगे बढ़ने लगी। वह नगर के सिंह द्वार के भीतर घुसी। नगर में बहुत ऊँचे-ऊँचे महल बने थे।

भवन सोने के कलशों से सुशोभित हैं। उनमें सुन्दर बगीचे बने हुए हैं। बीच-बीच में सुन्दर मार्ग बने हैं। कहीं-कहीं घने कुञ्ज भी हैं। यहाँ प्रेमी और प्रेमिका गले में बाँहें डाले हुए घूम रहे हैं। यहाँ एक नया मण्डप बना था। यहाँ सिंहासन के सामने कई मंच बने थे। श्रद्धा स्वप्न में सोच रही थी कि मैं कहाँ आ गई हूँ।

और सामने ही उसने क्या देखा कि मनु सिंहासन पर बैठे हैं और इड़ा उन्हें मदिरा पिला रही थी। किन्तु मनु उसे पी कर तृप्त नहीं हो रहे थे। मनु ने श्रद्धा से पूछा कि क्या मुझे अभी कुछ और भी करना है? इड़ा ने कहा कि अभी तुम्हारा कर्म पूर्ण नहीं हुआ है। मनु ने कहा कि चाहे यह नगर बस गया है किन्तु मेरा हृदय तो सूना है।

आगे मनु ने इड़ा से कहा कि तुम्हारा मुख सुन्दर है, तुम्हारी आँखों में आशाएँ भरी हैं। किन्तु सौंदर्य और आशाएँ कभी किसी के अधिकार में नहीं रहते। हे मेरी चेतना तू बता कि तू किसकी है और तेरे ये भाव किसके हैं।

इड़ा ने उत्तर दिया किया कि मैं तुम्हारी प्रजा हूँ और तुम्हें मैं सबका प्रजापति मानती आ रही हूँ। फिर आज यह नया प्रश्न क्यों?

मनु ने कहा कि तुम मेरी प्रजा नहीं हो वरन् मेरी रानी हो। अब तुम मुझे धोका मत दो। तुम मेरे प्रणय को स्वीकार करो। मेरे धुँधले भाग्य में तुमने उषा के समान प्रवेश कर उजाला कर दिया। मैं भिखारी हूँ तू बता कि कब मेरे हृदय की प्यास तेरे होठों के रस से बुझेगी? अब सारे सुख के

साधन प्राप्त हैं। ऐसी मधुर रातों में तुम मेरी प्रजा मत बनो। तुम तो मेरी रानी हो।

यह कहते-कहते मनु की वासना उत्तेजित हो उठी। उधर आकाश में घनी घटा घिरी आ रही थी।

मनु ने उत्तेजित होकर इड़ा का आलिंगन कर लिया वह भय के कारण कांप उठी। उस अत्याचारी के सामने इड़ा ने परित्राण की पुकार की। उसी समय अन्तरिक्ष में भयङ्कर गर्जन हुआ। प्रजा तो सन्तान के समान होती है, और आज मनु अपनी ही पुत्री के साथ अत्याचार करने पर तुले हैं! मनु का पाप ही उनके लिए शाप बन गया।

आकाश की सारी देव शक्तियाँ उद्बुद्ध हो गईं। शिव का तीसरा नेत्र अचानक ही खुल गया। सारा नगर कांपने लगा। सारी प्रकृति भयभीत थी। महादेव ताण्डव नृत्य कर रहे थे। सारे संसार का प्रलय हुआ ही चाहता था। सभी व्यक्ति आसरा पाने को व्याकुल हो उठे। मनु के मन में भी संदेह उत्पन्न हो गया। उन्होंने धरती का कम्पन देख कर समझ लिया कि अब फिर कुछ हुआ चाहता है।

सारे प्राणी भय से कांप रहे थे। सभी को अपनी अपनी पड़ी थी। स्नेह का बन्धन टूट गया था। सभी प्रजा का आश्रय पाना चाहते थे। इड़ा भी क्रोध और लज्जा से भर कर बाहर निकली। किन्तु बाहर उसने क्या देखा कि प्रजा एकत्रित हो गई है। पहरेदार भी उनके साथ हो गए हैं और सभी कुपित हैं। अभी तक जिस प्रजा ने सेवा की थी, आज वह कुछ और ही सोच रही थी।

मनु ने चारों ओर कोलाहल सुनकर छिप कर बैठना ही उचित समझा। जब प्रजा ने महलों के द्वार बन्द देखे तो उसका धीरज टूटने लगा। मनु ने जो नवीन सृजन की अभिनव अभिलाषाएँ की थीं वे वर्गों की खाई के रूप में प्रकट हुई। एक ओर शासक वर्ग था और दूसरी ओर शासित वर्ग थी! आज यह वर्गों का भेद ऐसा था जो कभी मिट नहीं सकता।

मनु असन्तुष्ट होकर क्रोधित हो गए और बोले यह अचानक कैसी बाधा आगई है! प्रजा क्यों एकत्रित हो गई है! प्रजा की प्रार्थना भय के कारण

विद्रोह का रूप धारण कर चुकी थी। मनु ने समझा कि यह सारा, उत्पात इड़ा का खड़ा किया है। अत उन्होंने प्रहरियों को यह आज्ञा दी कि वे द्वार बन्द कर दें और उन्हें सोने दें। यह कह कर मन में भय लिए मनु सोने चले गए।

श्रद्धा स्वप्न में काँप उठी। उसकी आँखें खुल गईं। उसने सोचा कि मैंने यह क्या देखा क्या मनु ऐसे हो गए हैं। श्रद्धा के मन में अनेक आशंकाएँ उठने लगी और उसने शेष रात मनु के विषय में चिन्ता करते ही बिताई।

इस सर्ग में ये मुख्य विशेषताएँ हैं।

(१) कामायनी के वियोग वर्णन में अपूर्व मार्मिकता है। प्रकृति चित्रण और छन्द की लय भी वियोग की मार्मिकता को स्फुट करते हैं।

(२) श्रद्धा ने मनु के सम्बन्ध में जो स्वप्न देखा है वह सत्य सिद्ध होता है। यद्यपि स्वप्न के इस प्रयोग के लिए कोई मनोवैज्ञानिक आधार नहीं प्रस्तुत किया जा सकता फिर भी जीवन में ऐसा अनेक बार होता है। प्रिय सम्बन्धी की विपत्ति को प्राय मनुष्य स्वप्न में पहले ही देख लिया करते हैं।

(३) मनु ने जिस प्रकार की नगरी का निर्माण किया है वह आज के युग से विशेष समानता रखती है।

संध्या मैं बराती।

शब्दार्थ—अरुण=लाल। जलज केसर=कमल के पराग कण। तामरस= कमल। क्षितिज भाल=क्षितिज का माथा। कुंकुम=केसर। काकली=ध्वनि, कूक।

भावार्थ—सन्ध्या के समय कमल मुरझा कर गिर गया था। संध्या उसे खोज नहीं पा रही थी और वह अपना मन लाल केसर से ही बहला रही थी।

व्यंजना द्वारा यह अर्थ भी निकलता है कि सूर्य मलिन होकर छिप गया था। उसके डूबने के पश्चात फैली लालिमा से ही संध्या अपना मन बहला रही थी।

लालिमा कुंकुम के समान क्षितिज के माथे पर फैली थी। किन्तु अब

अंधकार के हाथ उसे पोंछ रहे थे। अंधेरा उस सिन्दूरी लालिमा को भी नष्ट किए दे रहा था। अब कोयल व्यर्थ ही कालिमा पर कूक रही थी। सारा वातावरण अंधकार से ग्रस्त होकर उदासी फैला रहा था। उसमें कोयल की कूक का भी माधुर्य छिपा सा लगता था।

कामायनी　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　जहाँ।

शब्दार्थ—कुसुम वसुधा=फूलों से युक्त धरती। मकरंद=पुष्प रस, सरसता। रंग=वर्ण, आकर्षण। हीन कला शशि=चन्द्रमा या चाँदनी से रहित हो गया हो, जो मलिन पड़ गया हो।

भावार्थ—ऐसे उदास वातावरण में कामायनी फूलों से युक्त धरती पर लेटी हुई थी। कभी तो वह फूल के समान विकसित और सरस थी किन्तु अब उसमें उस सरसता का अभाव है। वह अब उस रेखाओं के चित्र के समान है जिसका रंग उड़ चुका है। रंगीन चित्र में विशेष आकर्षण होता है। रंग मिट जाने पर उसकी शोभा मलिन हो जाती है। कामायनी की कांति भी मलिन पड़ गई थी।

कामायनी की दशा प्रभात के कलाहीन चन्द्रमा के समान थी। प्रभात कालीन चन्द्रमा में न तो वैसी किरणें रहतीं हैं और नहीं चाँदनी का निखार होता है। उसी प्रकार कामायनी का आकर्षण भी नष्ट हो चुका था। कामायनी की दशा संध्या के समान थी। जिस प्रकार संध्या बिल्कुल सूनी होती है, न उसमें चाँद होता है, न सूरज और न तारे, उसी प्रकार कामायनी में भी अब कोई आकर्षण नहीं था।

जहाँ　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　आये।

शब्दार्थ—तामरस=लाल कमल। इन्दीवर=नील कमल। सित शतदल=सफेद कमल। नाल=कमल दण्ड। सरसी=तालाब। मधुप=भौंरे। जलधर=बादल। चपला=बिजली। शिशिर कला=सर्दी। क्षीण स्रोत=छोटा झरना। हिमजल=बर्फ।

भावार्थ—श्रद्धा उस तालाब के समान थी जिसके लाल, नीले और सफेद सभी कमल मुरझा गए थे। श्रद्धा के सारे अंग मलिन पड़ गए थे। जिस प्रकार मुरझाए हुए कमलों पर भौंरे नहीं आते थे, उसी प्रकार अब श्रद्धा

को देखकर कोई भी आकर्षित नहीं हो सकता था। श्रद्धा के पक्ष में मधुप से मनु का अभिप्राय लिया जाएगा।

श्रद्धा उस बादल के समान है जिसमें न बिजली है और न नीलिमा है। नीला और बिजली वाला बादल ही जल बरसाता है, उसमें शक्ति और स्फूर्ति होती है। दूसरा बादल हल्का और निबल होता है। उससे श्रद्धा में उत्तेजना का अभाव और निर्बलता की व्यंजना होती है। कामायनी सर्दी के उस नन्हें झरने के समान थी जो बर्फ के कारण जम जाता है और उसका सारा वैभव नष्ट हो जाता है। श्रद्धा का भी सारा जीवन नष्ट हो चुका था।

एक नहीं।

शब्दार्थ—विजन=एकांत। झिल्ली=झींगुर। जगती की अस्पष्ट उपेक्षा= संसार ने जिसकी परोक्ष रूप से उपेक्षा कर रखी थी। कसक=पीड़ा। हरित= हो। वसुधा=धरती।

भावार्थ—श्रद्धा का दुख एकांत के दुख के समान था जिसमें झींगुर की झंकार भी नहीं होती। निर्जन स्थान के दर्द भरे मौन के समान श्रद्धा का जीवन भी चुपचाप व्यतीत होता जा रहा था। सारे संसार ने परोक्ष रूप से उसकी उपेक्षा की थी। उसका संसार में कोई भी सहायक नहीं था। वह पीड़ा की साक्षात प्रतिमा थी।

वह धरती पर लेटी हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो दो फुक्ष की छाया धरती पर पड़ी है। वह छाया के समान कृश और मलिन हो गई थी। वह विरह की एक छोटी सी नदी के समान है जिसका कहीं अन्त नहीं हो उसे अनन्त विरह-वेदना को सहन करना है।

नील घिरने।

शब्दार्थ—नील गगन=अंधकार के कारण श्याम आकाश। विहग बालिका=पक्षी की बालिका। किरनें=सूर्य की किरणें। तम घन घिरने=अंधकार के बादल छाने लगे।

भावार्थ—नीले आकाश में पक्षियों की बालिकाओं के समान ही सूर्य की किरणें भी छिपने लगीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे थक गई हैं और सेज पर सोने के लिए जा रहीं हैं। पक्षी भी सोने को जा रहे हैं। अतः यहाँ

प्रस्तुत अप्रस्तुत का सामंजस्य है।

सारी प्रकृति विश्राम करने के लिए तैयार है किन्तु वियोगिनी के जीवन में तो एक क्षण भर के लिए विश्राम नहीं होता। जैसे ही अन्धकार के बादल घिरने लगते हैं, बिजली के समान अपने प्रिय की स्मृति उसे विचलित करने लगती है।

संध्या ... थे —

शब्दार्थ—नील सरोरुह=नील कमल। शैल घाटियों=पर्वत की घाटियाँ। तृण गुल्म=घास और पौधे। नग=पर्वत।

भावार्थ—जिस प्रकार नील कमल से नीली पुष्प रज बिखरती है उसी प्रकार सन्ध्या रूपी नील कमल से अन्धकार रूपी नील पुष्परज बिखर कर धीरे-धीरे पर्वत की घाटियों का भर रही थी। उन घाटियों में धीरे धीरे अँधेरा भर रहा था।

श्रद्धा स्वयं ही अपने दुःख की कथा को सुना रही थी और ठण्डी साँसें भर रही थी। घास और पौधों से रोमान्चित पर्वत ही श्रद्धा की दर्द भरी कहानी सुन रहे थे। वे पर्वत भी श्रद्धा के दुःख को सुनकर विह्वल होगए थे।

"जीवन ... खोलोगी!

शब्दार्थ—मंदाकिनी=गंगा। नभ=आकाश। नखत=नक्षत्र। बुद-बुद=बुलबुले।

भावार्थ—श्रद्धा गङ्गा से पूछती है कि क्या तुम यह बता सकती हो कि जीवन में दुःख अधिक है या सुख? क्या तुम मुझे यह बता सकती हो कि आकाश में तारे अधिक हैं या सागर में बुलबुले अधिक हैं? अभिप्राय यह है कि जीवन में तारों के समान असंख्य सुख और बुलबुलों के समान अनगिनत दुःख हैं। श्रद्धा ने गङ्गा से यह प्रश्न क्यों पूछा है, इसका कारण भी आगे बताया है।

आकाश के सारे तारे तुम में प्रतिबिम्बित हैं और उधर तुम सागर में जाकर मिल जाती हैं जिससे तुम वहाँ के बुलबुलों को भी गिन सकती हो।

अथवा क्या तुम यह रहस्य सुलझा सकती है कि कहा ये सुख और दुःख दोनों ही किसी एक बिम्ब के प्रतिबिम्ब तो नहीं हैं !

इस   धुनता है ।

शब्दार्थ—अवकाश पटी=आकाश का पट, काल का पट । सुरधनु=इन्द्र धनुष । छनते हैं=प्रकट होते हैं और छिप जाते हैं । पल=क्षण । आवरण= पर्दा ।

भावार्थ—जिस प्रकार आकाश में कितने ही इन्द्र धनुष बनते और बिगड़ते हैं, उसी प्रकार इस काल में भी कितने ही चित्र प्रस्तुत होते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं । कभी जीवन में एक दृश्य उपस्थित होता है और कभी दूसरा । और सभी दृश्य इन्द्र धनुष के रंगों के समान ही परिवर्तनशील होते हैं ।

किन्तु एक क्षण भर में ही सारे अणु एक दूसरे में घुल कर इस व्यापक नील आकाश के समान ही एक अस्पष्ट पीड़ा का पर्दा बना देते हैं जो सदैव संसार को ढक रहता है । जीवन के सुखों के नष्ट हो जाने पर केवल दुःख ही दुःख बच रहता है ।

दग्ध   यहाँ !

शब्दार्थ—दग्ध=जली हुई । सजल=ओस भरी, आँसू भरी । कुहू=अमावस्या की रात । स्नेह=तेल, प्रेम, श्लेष । लघु दीप=छोटा दीपक, छोटा सा जीवन । शलभ=पतिंगा, मनु ।

भावार्थ—आज अमावस्या की रात है । आँसू के समान ओस की बूंदें बरस रही हैं । किंतु फिर भी मैं यह चाहती हूँ कि वियोग की आग में जली हुई मेरी साँसों से आह न निकले । मेरे जीवन रूपी दीप ने कितना प्रेम रूपी तेल जलाया है, प्रेम में कितनी वियोग्नि को सहा है ! ऐसा कोई दूसरा दीपक नहीं है जो इतना तेल जलाए । कोई दूसरी स्त्री इतना दुःख सहन नहीं कर सकती थी ।

मुझे डर है कि जिस प्रकार संध्या की किरणें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार इस कुटिया का मेरा जीवन रूपी दीप कहीं बुझ न जाए ! मनु रूपी पतिंगा तो यहाँ है ही नहीं फिर भी मैं यह चाहती हूँ कि मेरा जीवन सुख

पूर्वक वियोग की आग में जलता रहे।

आज सह ले।

शब्दार्थ—पराग=पुष्प रज।

भावार्थ—आज चाहे कोकिल जो भी कहे, मुझे सब कुछ चुप होकर ही सहना है। कोकिल की ध्वनि हृदय में भावनाओं को जाग्रत करती है, किन्तु मुझे उन्हें दबाना है। पहले वसन्त ऋतु का निखार था, सर्वत्र पुष्परज बिखरा था, किन्तु आज तो सब मिट चुका है।

आज पतझड़ की ऋतु है। प्रकृति भी श्रीहीन हो गई है। संध्या का समय है और मैं मनु की प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे कामायनी! तू अपने हृदय को कठोर बना ले और जो भी विपत्ति तुझ पर आती है सब सहन करले।

विरल कहे।

शब्दार्थ—विरल=बिखरी हुई। अश्रु=आँसू।

भावार्थ—बिखरी हुई कलियों के पुञ्ज भी दुख के श्वास ले रहे हैं। श्रद्धा को प्रकृति में भी दुख दिखाई दे रहा है। मनु की स्मृति की वायु चल रही है। कौन यहाँ ऐसा है जो मिलन की कहानी कहे। कलियाँ भी दुखी हैं और वायु में भी स्मृति है मिलन के क्षणों का कोई भी स्मरण नहीं कराता।

आज मुझे प्रतीत हो रहा है जैसे मेरा अभिमानी संसार बिना कुछ अपराध के ही मुझ से रूठ गया है। मनु से ही मेरा संसार है और वे बिना अपराध के मुझे छोड़कर चले गए हैं। मेरी पलकों में जो आँसू भर-भर आते हैं, वे अब किन चरणों को धोएँगे? मनु तो यहाँ है ही नहीं।

अरे घड़ियाँ!

शब्दार्थ—निस्संबल=बेसहारा। कोई जोड़ रहा बिखरी घड़ियाँ=अपने जीवन के बीते क्षणों का स्मरण कर रहा हो।

भावार्थ—जब कोई व्यक्ति बे सहारा होकर अपने अतीत जीवन का स्मरण करता है, तो बीते हुए दुख के क्षण भी मधुर प्रतीत होते हैं। यह एक स्वाभाविक बात है कि अतीत सुख का स्मरण दुखदायी होता है और अतीत दुख का स्मरण सुखदायी होता है।

जो अपने अद्वय सौंदर्य में मेरे जीवन का सत्य बन गया था, वही यहाँ छिप गया है। मनु को मैंने अपने जीवन का सत्य मान लिया था। किन्तु अब वे ही चले गए हैं। तब आज मैं अपने उलझे हुए दुख और सुख को कैसे अलग अलग करूँ क्योंकि उस समय मुझे दुखपूर्ण क्षण भी सुखदायी प्रतीत होते हैं। तो यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि कौन से क्षण सच मुच सुख के थे और कौन से दुख के थे। यदि मनु आ जाएँ तो उस सुख से बीते क्षणों की तुलना कर के मैं सुख और दुख का निश्चय कर लूँगी।

विस्मृत नहीं !

शब्दार्थ—विस्मृत हों=भूल जाएँ। जलती छाती=उत्तेजित हृदय। मधु अभिलाषाएँ=मधुर इच्छाएँ। निष्ठुर=कठोर।

भावार्थ—अब तो मैं यह चाहती हूँ कि मैं यह बीती बातें भूल जाऊं। अब उनका कोई महत्त्व नहीं रहा। न तो अब मेरा हृदय कामना से उत्तेजित होता है और न अब वैसा प्रेम ही रहा है। अब तो केवल वियोग की जलन रह गई है।

मेरी सारी आशाएँ और मनोहर अभिलाषाएँ अतीत में घुलती जा रही हैं। आज मेरे मन में न वैसी आशाएँ आती हैं और न वैसी मनोहर अभि लाषाएँ ही जागती हैं। मेरे प्रिय मनु अपनी निष्ठुरता में जीतकर चले गए। किन्तु यह मेरी पराजय तो नहीं है। मैं अपने कर्तव्य से भ्रष्ट नहीं हुई हूँ।

वे अनुमान रहा।

शब्दार्थ—एक पाश=बन्धन। स्मित=मुस्कराहट। चपला=बिजली। वंचित=धोका खाया हुआ। समर्पण=बलिदान। अकिंचन=दरिद्र।

भावार्थ—मनु जब यहाँ थे तो हमारे प्रेम के आलिंगन एक बन्धन के समान थे। उस समय मुस्कराहट बिजली के समान थी, किन्तु आज वे सब बातें कहाँ चली हैं! और उस समय मैंने मनु पर विश्वास किया था और उस विश्वास में ही जीवन का सारा सुख माना था। किन्तु यह सब मेरे पागलपन का अनुमान ही था।

मैंने मनु पर विश्वास करके धोका खाया। मेरा जो उस समय का अभि मान था, वह ही आज धोका खाने के बाद समर्पण बन गया था। मेरा सारा

अभिमान इस बलिदान के रूप में बदल गया था। किन्तु अब तो मुझे अपने उस बलिदान का पूर्ण स्मरण भी नहीं है। हाँ इतना अवश्य कुछ-कुछ ध्यान है कि मैंने कभी मनु को कुछ दे दिया था।

विनिमय   बिखरे।

शब्दार्थ—विनिमय=आदान प्रदान। भय-संकुल=भय से भरा हुआ। परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा=यह क्षुद्र इन्तजार कि जीवन में परिवर्तन हो। रवि=सूर्य। उडुगन=तारों का समूह।

भावार्थ—प्रेम में भावों का आदान प्रदान होता है, प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे को अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, किन्तु यह प्रेम का व्यापार बड़ा भयङ्कर है, इसमें बड़े बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। हे मेरे मन! तू जितना देना चाहे बेशक दे दे, किन्तु किसी को भी लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए प्रेम निस्वार्थ होना चाहिए।

व्यक्ति यह प्रतीक्षा किया करता है कि उसके जीवन में कुछ परिवर्तन हो, कुछ नवीनता हो, किन्तु यह अनुचित है। और यह प्रतीक्षा कभी भी पूरी नहीं होती, जीवन में नित्य नए नए सुख प्राप्त नहीं होते। संध्या परिवर्तन की कामना करती है और सूर्य को दे देती है। किन्तु उसे मिलता क्या है! केवल इधर-उधर बिखरे हुए कुछ सितारे।

वे   उच्छ्वास।

शब्दार्थ—अन्तरिक्ष=आकाश और धरती के बीच का शून्य। अरुणाचल =उदयाचल। फूल=मधुर भाव। स्वरों का कूजन=संगीत। कुहक बल से=जादू के बल के समान। स्मिति की माया=मुस्कराहट का आकर्षण। चिर प्रवास= शाश्वत विरह।

भावार्थ—रात के अन्धकार को नष्ट करता हुआ सूर्य उदयाचल पर्वत के पीछे से निकलता है। अन्तरिक्ष में स्वर्णिम प्रकाश फैल जाता है। इसी प्रकार मेरे जीवन में भी मनु से मिलन के पश्चात कुछ सुखमय दिन आए थे। प्रातःकाल होते ही फूल खिलने लगते हैं और जादू की शक्ति के समान संगीत मुखरित हो उठता था, पक्षी चहचहाने लगते हैं।

प्रातःकाल किरणें बिखर कर कलियों से क्रीड़ा करती हैं, उन्हें खिला

रही है। मेरे जीवन में भी जब फूलों की हँसी के समान आनन्द का हास बिखरने लगा तभी मेरे प्रियतम मुझे धोका देकर और फिर आने की आशा देकर सदैव का विरह देकर चले गए सारा सुख का संसार अन्धकार मय हो गया।

जब मुस्क्याते।"

शब्दार्थ—शिरीष=शिरीषा का सुगन्धि फूल। मान भरी=गौरव से युक्त, रमणीय। मधुऋतु=वसंत। रक्तिम-मुख=खून सा लाल मुँह, उषा की लालिमा। घातें=चोटें। दिवस=दिन। आलाप=बात-चीत।

भावार्थ—वसंत की रातें शिरीष की सुगंधि से युक्त होकर अपनी रमणीयता में घिर आती थी। किन्तु मुझे उन मधुर रातों में भी वियोग वेदना के कारण निद्रा नहीं आती थी। मैं जब व्यथित होकर जागा करती थी तो मेरी व्यथा को सहन न कर रात्रि उषा की लालिमा से अपना मुख लाल करके मुझ से रूठ कर चली जाती थी। निरन्तर जागते रहने से आँखें लाल हो जाती हैं।

रात के बीत जाने पर दिन पक्षियों के कूजन में मानों मधुर कहानी कहता हुआ आकाश में छा जाता था। दिवस में कार्य में रत रहने के कारण वियोग वेदना इतनी नहीं सताती। इसलिए दिन तो काम में व्यतीत हो जाता था। और उसके पश्चात हमारे उज्ज्वल स्वप्न तारों के रूप में मुस्कराते थे। जैसे रात में तारे निकलते थे, मेरे मधुर स्वप्न जाग्रत हो उठते थे।

वन बरसे।

शब्दार्थ—वन बालाएँ=वन में रहने वाली स्त्रियाँ। वेणु के मधु स्वर से=जब वायु बाँस के छेदों में टकराया करती थी तो उसमें से संगीत की ध्वनि निकलती है। रजनी=रात। तुहिन विन्दु=ओस की बूँद।

भावार्थ—वन में रहने वाली स्त्रियों के कुंज बाँस की मधुर ध्वनि से गूँज उठे। सन्ध्या के समय जो वायु चलती है उसके कारण बाँसों में से संगीत ध्वनि मुखरित हो उठती है। घर आने वाले पुरुष अपने घर की पुकार सुनकर वापिस आ चुके थे।

किन्तु वह परदेसी मनु अभी तक नहीं आया। श्रद्धा को प्रतीक्षा करते करते एक युग सा व्यतीत हो गया था। रात के भीगे भीगे नयनों से निरन्तर

ओस की बूँदें आँसुओं के समान बरसती रहीं। श्रद्धा मनु के वियोग में रातों को रोती रही।

मानस　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　रचने।

शब्दार्थ—मानस=हृदय, मानसरोवर। शतदल=कमल। बिंदु मरन्द घने=मधुर घी रस की बूँदें। कठिन=कठोर, निर्दयता से उत्पन्न। पारदर्शी=जिनके पार देखा जा सकता है, शीशे के समान स्वच्छ। विद्युत्कण=बिजली के कण। नयनालोक=नयन का प्रकाश। विरह-तम=विरह का अन्धकार। संबल=सहारा।

भावार्थ—तालाब में कमल खिलते हैं और उनसे मधु की बूँदें बरसती हैं, सारा पवन उनसे सुगन्धित हो उठता है। उसी प्रकार श्रद्धा के हृदय में स्मृति का कमल खिल जाता है और उसमें कितने ही आँसू की बूँदें बरसती थीं। मोतियों के समान ये आँसू बड़े कठोर किन्तु पारदर्शी होते हैं। इन आँसुओं में न जाने कितने मिलन के चित्र दिखाई देते हैं, पता नहीं जब आँसू बरसते हैं तो श्रद्धा अपने किन किन अतीत के चित्रों में खो जाती है।

श्रद्धा की आँखों के सामने विरह का अन्धकार छाया है। केवल यह सरल आँसू ही उसके नेत्रों के प्रकाश के कारण हैं जो उस विरह के अंधकार को कुछ दूर करने में समर्थ होते हैं। रोने पर विरह का दुःख हल्का हो जाता है। वियोगिनी का एकमात्र सहारा आँसू ही है। पथिक को जब कोई थोड़ा-सा भी सहारा मिल जाता है तो वह अपने लक्ष्य के, स्वप्न बनाने लगता है। उसी प्रकार श्रद्धा के प्राण भी आँसुओं का सहारा पाकर, कल्पना के लोक की रचना करने लगे। रोते-रोते श्रद्धा मिलन की कल्पनाएँ किया करती थी।

अरुण　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　हरे हरे।

शब्दार्थ—अरुण जलज=लाल कमल। शोण कोण=लाल कोने। तुषार=ओस। मुकुर चूर्ण=शीशे का चूरा। प्रतिच्छवि=प्रतिबिम्ब। तम=अंधकार। कुहू=अमावस्या।

भावार्थ—लाल कमल के लाल कोने ओस की बूँदों से भरे थे। श्रद्धा के लाल नयनों के लाल कोने आँसुओं से भर थे, कमलों के कोनों पर बिखरी

ओस की बूँदों में आस पास की प्रकृति का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, इसलिए वे टूटे हुए दर्पण के समान दिखाई दे रहे थे। श्रद्धा की आँखों के आँसुओं में भी अतीत के कितने ही मिलन दृश्य प्रतिबिम्बित थे।

लाल कमलों की पंक्ति में प्रेम, हँसी और दुलार के दर्शन होते हैं। किन्तु अंधकार घिर आने पर कमलों की यह पंक्ति संपुटित हो रही थी रात आने पर श्रद्धा भी अपनी आँखें बन्द कर के सोने का उपक्रम कर रही थी। जिस प्रकार वर्षा भरी अमावस में इधर-उधर जुगनू कुछ डरे-डरे से उड़ते दिखाई देते हैं उसी प्रकार रोती हुई श्रद्धा के सामने स्मृति के चित्र चमकने लगे।

सूने ... जलती'

शब्दार्थ—गिरि-पथ=पर्वत का मार्ग। झर्झनाद=झरने की ध्वनि। आकांक्षा लहरी=कामना की लहरों वाली। दुख-तटिनी=दुख की नदी। पुलिन=किनारा। अंक=गोद, हृदय। दीप नभ के=आकाश के तारे। अभिलाषा शलभ=इच्छा रूपी पतिंगे।

भावार्थ—रात के समय पर्वत का मार्ग बिलकुल सूना था। उसमें झरने की ध्वनि गूँज रही थी। पर्वत की गोदी में लहराती हुई नदी बहती जा रही थी। श्रद्धा के हृदय में दुख की नदी थी जिसमें कामना की लहरें उठ रही थीं। प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों का सामंजस्य है।

आकाश में तारों के दीपक जल उठे। जिस प्रकार दीपक के जलने पर पतिंगे उड़कर उस ओर जाने लगते हैं, उसी प्रकार तारों के निकलने पर श्रद्धा की इच्छायें जाग उठीं और तारों की ओर चल दीं। श्रद्धा तारों की ओर देखते देखते अपनी इच्छाओं में लीन रहती थी। श्रद्धा की आँखों में आँसू भरे रह गए किन्तु उसके हृदय में जो वियोग की ज्वाला जल रही थी, वह न बुझ सकी।

"माँ ... धूनी।

शब्दार्थ—किलक=हर्षध्वनि। दुरागत=दूर से आई। मेरे हृदय में=

वात्सल्य से भरे हुए हृदय में। उत्कंठा=उत्सुकता। छुटरी=उड़ती हुई। बाल=बाल। रज-धूसर=धूल से युक्त। निशा-तापसी=रात की तपस्विनी। धूनी=साधी के सामने जलती हुई आग।

भावार्थ—उसी समय दूर से श्रद्धा का बालक आया और वहीं से उसने माँ को पुकारा। दूर से आई हुई इस हर्षध्वनि से श्रद्धा की सूनी कुटिया गूँज उठी। जैसे ही श्रद्धा ने यह ध्वनि सुनी उसका हृदय वात्सल्य से भर गया और वह दुगनी उत्कंठा के साथ अपने पुत्र को गोद में लेने के लिए लपकी।

बालक के खुले बाल हवा में उड़ रहे थे। उसकी बाँहें धूल से भरी थीं। आते ही वह अपनी माँ से लिपट गया। रात की तपस्विनी की बुझती हुई धूनी फिर से जल उठी। तपस्वी लोग अपने सामने धूनी रमाए रहते हैं। श्रद्धा का जीवन भी तपस्विनी का जीवन है। उसके हृदय में निरंतर विरह की धूनी जलती रहती थी। अभी अभी उसका विरह कुछ शान्त हुआ था। किन्तु बालक की ध्वनि सुनते ही उसका विरह फिर उद्दीप्त हो गया उसे मनु की स्मृति आ गई। आगे के छन्द में वह अपने पुत्र के साथ साथ मनु का भी स्मरण करती है।

"कहाँ मना।"

शब्दार्थ—वनचर=वन में घूमने वाला। मृग=हरिण।

भावार्थ—श्रद्धा ने बालक से कहा कि अरे शैतान! मेरे भाग्य के समान ही तू अब तक कहाँ घूमता रहा। मेरा भाग्य भी बड़ा चंचल रहा है। उसने भी बड़ी ऊँच-नीच देखी है। तू तो अपने पिता का पूरा प्रतिनिधि है। जिस प्रकार तेरे पिता ने मुझे बहुत सुख भी दिया है और दुख भी उसी प्रकार तूने भी मुझे खूब सुख भी दिया है और दुखी भी।

तू बहुत चपल है। पता नहीं तू कहाँ-कहाँ हरिण के समान चौकड़ी भरता रहा। मैं तुझे मना करना चाहती थी किन्तु मुझे यह डर था कि कहीं तू भी अपने पिता के समान ही न रूठ जाए। इस डर से मैंने तुझे मना भी नहीं किया।

"मैं मरी रही।

शब्दार्थ—विषाद=दुख।

भावार्थ—बालक ने उत्तर दिया कि माँ! तू ने तो बहुत अच्छी बात कही है। मैं रूठ जाऊँ और तू मुझे मनाए तो कैसा आनन्द होगा। किन्तु आज अब मैं तुझ से नहीं बोलूँगा। अब तो मैं जा कर सोता हूँ। मैंने डटकर पके हुए फल खाए हैं। इसलिए अब मेरी नींद नहीं खुलेगी। यह सुनकर श्रद्धा ने उसका मुहँ चूम लिया। उस समय वह कुछ प्रसन्न भी थी और कुछ उदास भी। पुत्र के प्रेम के कारण श्रद्धा प्रसन्न थी किन्तु साथ ही मनु के वियोग से दुखी भी थी।

जल गल के।

शब्दार्थ—जल उठते हैं=याद आ जाते हैं। लघु=छोटा। हलके=धूमिल, बहुत पुराने। उर=हृदय। दिवा श्रांत=दिनभर के कार्य से थकी हुई। आलोक-रश्मियाँ=प्रकाश की किरणें। निल निलय=निलय घोंसला, अँधकार। संसृति=संसार।

भावार्थ—जीवन के बीते हुए सुखमय धूमिल खण्ड श्रद्धा के हृदय में फिर ताजे हो जाते हैं। बीते दिनों की सुखमय स्मृति भी दाहक बन जाती है। वे हृदय में छालों के समान पीड़ा देने लगते हैं। श्रद्धा उदास है इसलिए उसे आकाश भी दुखी दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है। मानो श्रद्धा के बीते जीवन के क्षण ही विराट और उदास नीले आकाश में तारों के रूप में चमक रहे हैं।

सूर्य की किरणें भी दिन भर के काय से थक गई हैं। और अब वे अन्धकार के घोंसले में कहीं छिप गई हैं। 'निलय' शब्द से यह व्यजना भी निकलती है कि दिन भर के परिश्रम से थके हुए पक्षी घोंसलों में जा छिपे हैं। बालक क आने से उस वातावरण में हर्ष छा गया था। किन्तु उसक सो जाने पर अब फिर वही करुणा का भाव सर्वत्र बिखर गया।

यह जाता है जल के—से अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जल आदि द्रव सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार दुख का स्वर भी सर्वत्र बिखर गया है।

प्रणय   खाता।

शब्दार्थ—प्रणय किरण=प्रेम की किरण। मुक्ति बना=श्रद्धा के लिए प्रेम का कोमल बंधन ही मुक्ति बन गया था। प्रतिपल=प्रतिक्षण। तंद्रा=निद्रा। मूर्छित=बेहोश, शान्त। मानस=हृदय। अभिन्न=निरंतर साथ रहने वाला। प्रेमास्पद=प्रिया।

भावार्थ—श्रद्धा के लिए प्रेम की कोमल किरणों का बन्धन बन गया था, अब उसे प्रेम के बंधन में ही मुक्ति का आनन्द आने लगा था। इस लिए उसका स्नेह बन्धन और भी दृढ़ होता जा रहा था। मनु उससे बहुत दूर था। किन्तु फिर भी वह हृदय के बहुत समीप आता जा रहा था।

चाँद निकल आया था। रात काफी बीत गई थी। जिस प्रकार चाँदनी शान्त तालाब पर फैल जाती है और उसे ढक लेती है, उसी प्रकार श्रद्धा के शान्त मन पर निद्रा बिखर गई। निद्रा की अवस्था में श्रद्धा का प्रियतम आकर उसके हृदय में अपना चित्र अंकित कर जाता था। स्वप्न में श्रद्धा और मनु का मिलन होता था।

कामायनी   रेखा रही।

शब्दार्थ—सकल=संपूर्ण। सुख-स्वप्न=सुख की कल्पना, कामायनी ने जिस मानव सभ्यता की कल्पना की थी। विकल=दुखी। प्रतारित=ठगी हुई, वंचित। लेखा=रेखा। कोमल दल=मृदुल पत्ता। अंकित=चित्रित। नभ=आकाश।

भावार्थ—कामायनी ने स्वप्न में अपने कल्पित मानव समाज को बना हुआ देखा। जिस समाज की वह कल्पना किया करती थी वही उसे स्वप्न में मूर्त रूप में दिखाई दिया। यह कल्पना का चित्र वही है, जिसे श्रद्धा ने बहुत पहले फूल की पत्तियों के द्वारा पवन पर चित्रित किया था। भाव यह है कि श्रद्धा ने जो भावी मानवता का चित्र बनाया था, उसका स्वरूप तो फूलों की पखुड़ियों के समान रम्य और भव्य था किन्तु उस समय उसका कोई ठोस आधार नहीं था, वह केवल स्वप्न भर ही था।

श्रद्धा स्वयं युग-युग से संचित होकर और दुखी होकर एक रेखा के समान दुर्बल हो गई थी। किन्तु आज उसने अपने आपको उस पपीहे की पुकार के समान रेखा आ सारे आकाश में गूँज रही थी। यद्यपि पपीहा भी संचित और क्षुब्ध होता है किन्तु उसकी ध्वनि आकाश में गूँजती है। उसी प्रकार यद्यपि श्रद्धा दुखी और संचित थी किन्तु आज उसके आदर्शों की प्राप्ति में मानव सभ्यता लगी हुई थी।

इस छन्द में यथाक्रम अलंकार है। पहली और तीसरी पंक्तियाँ सम्बद्ध हैं और दूसरी और चौथी पंक्तियाँ सम्बन्धित हैं।

इड़ा भरी।

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित। विपद-नदी=विपत्ति रूपी नदी—रूपक अलंकार। तरी=नौका आरोहण=चढ़ना। शैल-शृंग=पर्वत की चोटी। भ्रांति=थकावट तीव्र प्रेरणा=सशक्त उत्तेजना।

भावार्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि इड़ा मनु के आगे-आगे आग की ज्वाला के समान हर्षित होकर चल रही है। जिस प्रकार मशाल से मार्ग प्रकाशित होता है उसी प्रकार इड़ा भी मनु का मार्ग प्रकाशित कर रही है, यही उन्हें मार्ग दिखा रही है। इड़ा मनु के लिए विपत्ति रूपी नदी को पार करने की नौका के समान है। जिस प्रकार नाव के सहारे मनुष्य नदी को पार कर जाता है, उसी प्रकार इड़ा की सहायता से मनु भी सारी विघ्न-बाधाओं को पार करते चले जा रहे हैं।

मनु निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ते जा रहे हैं। उनकी महत्ता पर्वत की चोटियों के समान ऊँची है। और यह महान कार्य करते हुए भी मनु तनिक भी थकावट का अनुभव नहीं करते। इड़ा यहाँ सशक्त उत्तेजना की धारा के समान थी। इड़ा की प्रेरणा से ही निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं।

यह उपहार दिये।

शब्दार्थ—आलोक किरन-सी=सूर्य की किरण के समान। हृदय-मेदिनी=मन की बात जानने वाली। खुल जाते हैं तुमने जो पथ बन्द किए=अन्धकार ने जो रास्ते रोक दिए थे, वे खुल जाते थे, बन्द मार्ग भी खुल गए। सतत=

निरन्तर। विजयिनी तारा=विजय प्रदान करने वाला नक्षत्र। निज श्रम=अपना परिश्रम। उपहार=भेंट।

भावार्थ—इड़ा की दृष्टि हृदय के गूढ़ भावों को भी जान लेने की क्षमता रखती है। वह सूर्य की सुन्दर किरण के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें अन्धकार को दूर कर सभी मार्गों को प्रकाशित कर देती हैं, उसी प्रकार इड़ा जिस ओर दृष्टि डालती है, उधर के सब रास्ते साफ हो जाते हैं, सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

मनु प्रत्येक कार्य में निरन्तर सफलता प्राप्त करते जाते थे। उनकी सफलता के लिए इड़ा उदित विजय के नक्षत्र के समान थी। जब किसी व्यक्ति का कोई शुभ नक्षत्र उदित होता है, तो उसे प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त होती है। सारस्वत प्रदेश के ध्वस्त हो जाने पर जनता निराश्रय होकर इधर-उधर बिखर गई थी। अब वह आश्रय पाने को लालायित थी। जब उन्हें इड़ा और मनु का सहारा प्राप्त हुआ तो जनता उनके लिए परिश्रम करने के लिए तैयार हो गई।

मनु सन।

शब्दार्थ—दृढ़=सशक्त। प्राचीर=दीवार। घने=बहुत से। सम्पन्न हुए=तैयार हुए। प्रमुदित=हर्षित। श्रम-स्वेद सने=पसीने से भीगे हुए।

भावार्थ—श्रद्धा ने स्वप्न में देखा कि मनु का सुन्दर नगर बस गया है। सभी व्यक्ति एक दूसरे की सहायता करते हैं। नगर के चारों ओर सशक्त दीवारें बनी हुई हैं। उसमें मकानों के बहुत से दरवाजे दिखाई दे रहे हैं।

वर्षा, धूप, और सर्दी से बचने के सभी साधन बन कर तैयार हो गए। खेतों में किसान हल चला रहे हैं। वे सब प्रसन्न हैं और पसीने से भीगे हुए हैं।

उधर थे।

शब्दार्थ—साहसी=शिकारी। मृगया=शिकार। पुष्प लाविनी=पुष्प चुनने वाली। अब पिकल्प=प्रापी लिखी। गंध-चूर्ण=मुख पर लगाने का चूर्ण, पाउडर। लाम-कुसुम-रज=एक विशेष प्रकार के पुष्पों का पराग। प्रसाधन=साधन।

भावार्थ—नगर में एक स्थान पर धातुएँ गलाई जा रहीं थीं। दूसरी ओर नए-नए वस्त्र और आभूषण बन रहे थे। कहीं पर शिकारी नए-नए शिकार की भेंट लेकर उपस्थित हैं।

मालिनें वन के फूलों की अध खिली कलियाँ चुन रहीं थीं। लोध्र के पराग से मुख पर लगाने का पाउडर बनाया गया था। ये सारे नए साधन प्राप्त हो गए थे।

घन निसरी।

शब्दार्थ—घन=हथौड़ा। घाघातों से=चोटों से। प्रचड ध्वनि=तेज ध्वनि। रमणी=स्त्री। हृदय मूर्च्छना=हृदय का संगीत। दरी=व्यक्त हुई, निकली। मिलिति=मिलकर। प्रयत्न प्रथा=परिश्रम की रीति। श्री=शोभा।

भावार्थ—हथौड़े की चोटों से अत्यन्त तेज ध्वनि हो रही थी। उस ध्वनि से क्रोध सा झलकता था। किन्तु दूसरी ओर स्त्रियों का संगीत हो रहा था और उनकी हृदय की भावनाएँ गाना बनकर फूट निकलती थीं।

सभी लोग अपने अपने वर्ग बनाकर परिश्रम करते थे। सभी मिल कर कार्य करते थे। मिलकर कार्य करने की प्रथा से शहर की शोभा उद्दीप्त हो उठी थी।

देश में हैं।

शब्दार्थ—लाघव करते=कम करते। संबल=प्राप्त सामग्री, साधन आदि जिसके भरोसे कुछ काम किया जाता है। व्यवसाय=उद्योग। वसुधा तल=धरती के भीतर।

भावार्थ—इस नगर के सारे व्यक्ति देश और काल को कम करने के प्रयास में तेजी से प्रयत्नशील हैं। वह ऐसे यन्त्र बनाने का प्रयास कर रहे हैं जिनके द्वारा वे कम से कम समय में अधिक से अधिक कार्य कर सकें और अधिक दूरी की यात्रा कर सकें। जो साधन उन्हें प्राप्त हैं वे उन की सहायता से सुख के साधन बना रहे हैं।

सब व्यक्तियों के सतत परिश्रम और शक्ति के द्वारा ज्ञान और उद्योग-धन्धों की वृद्धि होने लगी। सभी लोग इस प्रयत्न में थे कि हमारे परिश्रम

से धरती के भीतर की सभी वस्तुएँ निकाल ली जाएँ और उनका उपयोग किया जाय।

सृष्टि ... हरा।

शब्दार्थ—प्रफुल्लित=फूलों से युक्त। स्वचेतन=अपनी शक्ति से परिचित स्वावलम्ब=अपनी शक्ति का सहारा। धरणी=धरती।

भावार्थ—संसृति का बीज अंकुरित होकर फूल जैसे साधनों से युक्त होकर अब हरा भरा हो रहा था। सृष्टि का सम्पूर्ण विकास हो रहा था। प्रलय हो जाने पर भी संसृति का बीज मनु के जीवन में शेष बचा था। आज वही बीज उत्साह में भरकर पल्लवित हो रहा था, उस सभ्यता का निरन्तर विकास हो रहा था।

आज का व्यक्ति अपनी शक्ति को पहचानता है। उसने ऐसी कल्पनाएँ की हैं जो साध्य हैं। अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप में प्रस्तुत करके अपनी शक्ति के आसरे खड़ा था। आज वह भयभीत नहीं था।

श्रद्धा ... सकती;

शब्दार्थ—मलय-बालिका=वायु की बालिका। सिंह-द्वार=मुख्य द्वार। प्रहरियों को छलती=पहरेदारों को धोखा देती हुई। वलभी=छत के ऊपर का कमरा, अटारी। रम्य=सुन्दर। प्रासाद=महल। आलोक शिखा=अग्नि।

भावार्थ—श्रद्धा उस आश्चर्य पूर्ण नगर में वायु की बालिका के समान स्वच्छन्द होकर घूम रही थी। वह चलती हुई पहरेदारों की नजर बचाकर मुख्य द्वार के भीतर आ पहुँची।

अन्दर जाकर उसने देखा कि ऊँचे ऊँचे खम्भों के ऊपर सुन्दर महल बने हुए हैं। उनमें छत पर भी कमरे बने हैं। प्रत्येक घर में यज्ञ की अग्नि जल रही थी और वह आहुति के धुँए से सुगन्धित था।

स्वर्ण ... सने।

शब्दार्थ—स्वर्ण कलश=सोने के कलश। उद्यान=बगीचे। ऋजु=सीधा। प्रशस्त=प्रशंसनीय। दम्पति=पति-पत्नी। समुद=हर्षित होकर। विहरते=विहार करते। मधुप=भौंरे। रसीले=रसयुक्त। मदिरा=शराब। मोद=प्रसन्नता। पराग=सुगन्धि।

भावार्थ—यहाँ के भवन सोने के कलशों से सुशोभित हैं। इससे यहाँ के निवासियों की समृद्धि का परिचय मिलता है। प्रत्येक भवन में सुन्दर बगीचे बने थे। इससे जनता की मार्मिक रुचि का पता चलता है। उन बगीचों में सीधे और प्रशंसनीय मार्ग बने हुए हैं। यहीं पर लताओं के घने कुञ्ज भी हैं।

लताओं के घने कुञ्जों में पति-पत्नियाँ हर्ष विभोर होकर विहार कर रहे थे। उनके हृदय प्रेम से उल्लसित थे। वे एक दूसरे के गले में बाँहें डाले घूम रहे थे। यहाँ फूलों के ऊपर पुष्परस, हर्ष और सुगन्धि से भरे भँवरे गुञ्जार कर रहे थे।

देवदारु बहुरङ्ग।

शब्दार्थ—प्रलम्ब=लम्बे। भुज=बाँहें। मुखरित=ध्वनित। कलरव= मधुर ध्वनि। बाल विहँग=नन्हे पक्षी। नागकेसर=एक विशेष फूलदार पौधा। बहु रंग=अनेक रंग वाले।

भावार्थ—यहाँ कवि ने प्रकृति का जो वर्णन किया है, उसमें समासोक्ति अलंकार के द्वारा प्रिय और प्रेमिकाओं की क्रीड़ाओं का भी वर्णन है।

ऊँचे देवदारु के वृक्ष लम्बी-लम्बी भुजाओं के समान थे। उनमें वायु की लहरें उलझी हुई थीं। यहाँ नायिका का आलिंगन करते हुए नायक का भी वर्णन अप्रस्तुत है। प्रेमिकाओं के गहनों से मधुर ध्वनि निकलती थी। यहाँ नन्हे पक्षियों की गुञ्जार आभूषणों की ध्वनि के समान थी।

प्रेमिकाएँ मधुर गाने गाया करती थीं। उधर प्रकृति में वनों से आ संगीत की लहरें आ रही थीं उन्हें बाँसों ने आश्रय दिया था। बाँसों के छिद्रों से जब वायु की लहरें टकराती हैं, तब मधुर संगीत की ध्वनि उत्पन्न होती है। नाग केसर की क्यारी में विविध रंगों के अन्य फूल भी लगे थे।

नव कहाँ ?"

शब्दार्थ—मण्डप = शामयाना। मंच = तख्त। चम=चमड़ा। शैलेय= पर्वत का पहाड़ी।

भावार्थ—यहाँ एक नया शामयाना लगा था। यहाँ एक सिंहासन पड़ा था। सिंहासन के सामने बहुत से दूसरे तख्त भी रखे थे। उनके ऊपर चमड़ा मढ़ा हुआ है और वे बैठने में अत्यन्त सुखद हैं।

यहाँ चारों ओर पहाड़ी अगर की सुगन्धि फैली हुई है। यह सुगन्धि अत्यन्त मधुर है। श्रद्धा स्वप्न में ही यह सोचने लगी कि लो मैं कहाँ आ गई!

और जिये!

शब्दार्थ—निज=अपने। दृढ़=शक्तिशाली। कर=हाथ। चषक=प्याला। क्रतुमय=यज्ञ करने वाला।

भावार्थ—और जब श्रद्धा ने सामने की ओर देखा तो वहाँ उसे यज्ञ से प्रेम करने वाले मनु दिखाई दिए। उन्होंने अपने शक्तिशाली हाथ में प्याला पकड़ रखा था। उनका मुख वैसा ही था जैसा श्रद्धा ने पहले देखा था। उनके मुख पर संध्या जैसी लालिमा बिखरी थी।

श्रद्धा के सामने मस्त कर देने वाले एक सुन्दर चित्र के समान मनु बैठे थे। श्रद्धा मनु के दर्शन के लिए सौ बार भी मर कर फिर जन्म लेने को प्रस्तुत है।

इड़ा नहीं।

शब्दार्थ—आसव=मदिरा। तृषित=प्यासे। वैश्वानर=आग। वेदिका=वेदी। सौमनस्य=शान्ति। जड़ता=अज्ञान।

भावार्थ—इड़ा मनु के प्याले में वह मदिरा डाल रही थी जिसकी प्यास कभी नहीं बुझती। प्यासा कण्ठ शराब के प्याले पर प्याला पीता जाता है किन्तु उसे इससे सन्तोष नहीं होता। उस पर मनुष्य को विश्वास नहीं होता।

इड़ा आग की ज्वाला के समान मञ्च की वेदी पर बैठी थी। पहले कवि ने मनु को क्रतुमय कहा है अब इड़ा को यज्ञाग्नि की लपटों सा कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि मनु को जैसे यज्ञ से प्रेम है और यज्ञ के द्वारा वह अपनी सन्तुष्टि करते हैं वैसे ही वे इड़ा से भी अपनी तुष्टि चाहेंगे। इड़ा में अज्ञान की छाया तक भी नहीं थी। वह सर्वत्र सुखद शान्ति को बिखेर रही थी।

मनु यहाँ।

शब्दार्थ—सविशेष=विशेष रूप से। स्ववश=अपने अधिकार में। रिक्त=

खाली । मानस देश=हृदय ।

भावार्थ—मनु ने इड़ा से पूछा 'क्या अब यहाँ कुछ और भी करना है ?' इड़ा ने उत्तर दिया कि अभी से ही तुम्हारे प्रयास की विशेष सफलता कहाँ प्राप्त हुई है । कुछ सफलता तो मिली है, किन्तु अभी और भी बहुत कुछ करने को शेष है । क्या तुमने सारे साधनों पर अधिकार कर लिया है ।

मनु ने उत्तर दिया ' नहीं, सचमुच अभी मुझे सफलता प्राप्त नहीं हुई । अभी तो मेरा हृदय सूना है । मैंने देश को तो बसा लिया है किन्तु मेरा हृदय अभी भी उजड़ा हुआ है ।

सुन्दर किसकी हैं ?''

शब्दार्थ—आँखों की आशा=आँखों के स्वप्न । बाँकपन=निराला सौंदर्य । प्रतिपद शशि=पड़वा का चन्द्रमा । रिस=क्रोध । अनुरोध=आग्रह । मान मोचन का=मन तोड़ने का । चेतनते=चेतना शक्ति, स्फूर्ति प्रदान करने वाली ।

भावार्थ—मनु ने कहा कि तुम्हारा मुख सुन्दर है और तुम्हारी आँखों में अनेक अभिलाषाएँ संचित हैं, किन्तु सुन्दर मुख और आँखों की आशाओं पर कौन अधिकार कर पाया है । ये किसी के भी अधिकार को स्वीकार नहीं करते । तुम्हारे मुख पर पड़वा के चन्द्रमा सा निराला सौंदर्य होता है । साथ ही तुम्हारे मुख पर क्रोध के भाव भी भरे हैं ।

तुम्हारी आँखों में ऐसा संकेत भी मिल रहा है जो तुम्हारे मान को तोड़ने के लिए मुझे इङ्गित कर रहा है । तू ही मुझे उत्तेजित करने वाली मेरी चेतन शक्ति है । तू ही बता कि इस मुख का सौंदर्य आदि पर किसका अधिकार है और तू किसकी है !

' प्रजा हूँ मैं ।''

शब्दार्थ—प्रजापति=प्रजा का स्वामी । गुनती हूँ=समझती हूँ । मराली=हंसिनी । प्रणय=प्रेम ।

भावार्थ—इड़ा ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी प्रजा हूँ । मैं तो तुम्हें सब का प्रजापति मानती हूँ । फिर यह आज संशय से युक्त नया प्रश्न क्यों ?

मनु ने उत्तर दिया कि तुम प्रजा नहीं हो, तुम तो मेरी रानी हो । अब तुम अपने आप को प्रजा कहकर मुझे भ्रम में मत डालो । हे प्रिय हंसिनी !

तुम भी अब मेरे प्रेम को स्वीकार कर लो और कहा कि मैं भी प्रेम के मोती चुगने के लिए तैयार हूँ।

मेरा   रस में ?

शब्दार्थ—भाग्य-गगन=भाग्य रूपी आकाश। प्राची=पूर्व दिशा। पट=अचल। प्रभावपूर्ण=कान्तिमान। अतृप्त=प्यासा। आलोक भिखारी=प्रकाश की भिक्षुक। प्रकाश-बालिके=प्रकाश की बालिका, मेरे निराशा के अन्धकार को दूर करने वाली।

भावार्थ—मेरे भाग्य का आकाश बड़ा धुँधला था, मेरा भविष्य अंधकार मय था। जिस प्रकार प्रभात के समय प्राची दिशा में आलोक बिखर जाता है उसी प्रकार तुम भी मेरे भाग्य के धुँधले आकाश पर शोभा और यश की चमक से उद्दीप्त होकर अचानक ही खिल पड़ीं। मेरा सारा अन्धकार दूर हो गया।

मैं प्यासा हूँ, प्रकाश और आनन्द का भिखारी हूँ। हे प्रकाश की बालिका तू बता दे कि कब मेरी प्यास तुम्हारे होठों के रस में बुझेगी ? कब तुम मेरा प्रणय स्वीकार करोगी ?

'य   माया।

शब्दार्थ—रूपहली=चाँदी जैसी सफेद, चाँदनी। संगरित=गुंजन। नर पशु=मनुष्य रूपी पशु, मनुष्य की पाशविक भावनाएँ। घन-माया=घनघोर।

भावार्थ—मनु ने कहा कि अब तो सब सुख के साधन प्राप्त हैं। चाँदनी रातें अत्यन्त शीतल हैं। दिशाएँ स्वरों से गुंजित हैं। मन मस्ती से भरा है और सारा शरीर भी शिथिल हो रहा है।

ऐसे मधुर वातावरण में तुम प्रजा मत बनो, तुम तो मेरी रानी हो। उस समय मनु की पाशविक भावनाएँ भड़क उठीं। उधर आकाश में घनघोर घटा छाने लगी।

आलिंगन   शाप उठीं।

शब्दार्थ—क्रन्दन=चीख। वसुधा=धरती। अतिचारी=अत्याचारी। परि

त्राण-पथ=बचाव का रास्ता । नाप उठी=चल दी । अन्तरिक्ष=आकाश । रुद्र हुङ्कार=शिव का गर्जन । आत्मजा=पुत्री ।

भावार्थ—आवेग में आकर मनु ने इड़ा का आलिंगन किया । वह भय भीत होकर चिल्लाने लगी । उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, मानो धरती काँपने लगी हो । मनु अत्याचारी बन गए थे । इड़ा उनके समक्ष दुर्बल थी । वह रक्षा के लिए भागने लगी ।

उसी समय आकाश में शिव का भयङ्कर गर्जन हुआ । चारों ओर भयानक हलचल मच गई । प्रजा तो पुत्री के समान होती है और मनु ने पुत्री का आलिंगन किया, यह पाप था । यह पाप ही मनु के लिए शाप बन गया ।

उधर ... भरी ।

शब्दार्थ—गगन=आकाश । क्षुब्ध=क्रोधित । रुद्र-नयन=शिव का तीसरा नेत्र । शिव=कल्याणकारी । शिंजिनी=प्रत्यंचा । अजगव=शिव का धनुष । प्रतिशोध=बदला ।

भावार्थ—उधर आकाश में सभी देव-शक्तियाँ क्रोधित होकर उग्र हो उठीं । अचानक ही महादेव का तीसरा नेत्र खुल गया । सारी नागरी व्याकुल होकर काँप रही थी । सभी प्राणी व्याकुल थे ।

जब स्वयं प्रजापति ही अत्याचारी होरहा था तो फिर देवता कैसे कल्याण कारी होते ! इसीलिए महादेव ने बदला लेने के लिए अपने पिनाक पर प्रत्यंचा चढ़ा दी ।

प्रकृति ... कँपना ।

शब्दार्थ—त्रस्त=भयभीत । भूतनाथ=महादेव । नृत्य विकम्पित=नृत्य में काँपता हुआ । भूत-सृष्टि=भौतिक संसार । होने आती सपना=सपने के समान नश्वर होने लगी । कलुष=पाप । सदिग्ध=सन्देह भरे । वसुधा=धरती ।

भावार्थ—सारी प्रकृति भयभीत थी । उधर महादेव ने नृत्य से चंचल अपना पाँव उठाया और ताण्डव नृत्य करने को सन्नद्ध हुए । उस समय सारी भौतिक सृष्टि नष्ट होने ही वाली थी ।

सारे प्राणी आश्रय पाने के लिए आकुल थे । मनु स्वयं भी अपने पाप के कारण सन्देह कर रहे थे । उन्होंने सोचा कि अब फिर युद्ध उत्पात होने वाला

है। इसीलिए तो धरती थर थर काँप रही है।

काँप ... किन्तु।

शब्दार्थ —प्रलयमयी क्रीड़ा=प्रलय सा भयङ्कर खेल। आशंकित=भयभीत जन्तु=प्राणी। छिन्न=टूट गया। कोमल तन्तु=कोमल डोरी।

भावार्थ—प्रलय जैसे भयङ्कर खेल से भयभीत होकर सारे प्राणी काँप रहे थे। उस समय सभी को अपनी अपनी पड़ी थी। प्रेम की कोमल डोरी टूट गई थी। कोई अपने स्नेही बन्धुओं की चिन्ता नहीं कर रहा था।

सभी लोग यह सोच रहे थे कि आज वह शासन कहाँ है जिसने हमारी रक्षा का भार ले रखा था। किन्तु इड़ा क्रोध और लज्जा से भरकर बाहर चल दी थी। और सभी तो मनु का आश्रय लेने आ रहे थे किन्तु इड़ा बाहर जा रही थी।

देखा ... रही।

शब्दार्थ—रुद्ध रही=रुकी हुई। प्रहरी=पहरेदार। दल=समूह। विशुद्ध=पवित्र। नियमन=शासन। अविरुद्ध=अनुकूल।

भावार्थ—इड़ा ने देखा कि जनता दुखी होकर राज-द्वार पर रुकी हुई है। पहरेदारों के समूह भी उन्हीं में मिल गए हैं। आज उनका रुख भी बदला हुआ है।

कठोर शासन तो एक झुका हुआ दबाव है। किन्तु इस प्रकार का कठोर शासन देर तक नहीं चल सकता। या तो वह स्वयं ही टूट जाता है, या उसे उलट दिया जाता है। आज तक जो प्रजा मनु के अनुकूल थी, वह अब कुछ और ही सोच रही थी। वह विद्रोह करने को सन्नद्ध थी।

कोलाहल ... उधर परे।

शब्दार्थ—त्रस्त=भयभीत। आन्दोलन=तूफान। भीषण तम=अत्यन्त भयङ्कर। महानील-लोहित-ज्वाला=आकाश पर दिखाई देने वाली लाल आग, बिजलियाँ।

भावार्थ—मनु कुछ सोच विचार कर करते हुए उसको कोलाहल से गिर कर छिप गए। प्रजा ने जब द्वार बन्द देखा तो वह भयभीत हो गई। फिर प्रजा किस के सहारे धीरज धारण करती।

शक्ति की लहरों में तूफान था। शिव का क्रोध अत्यन्त भयङ्कर था। और इधर सब से दूर नीले आकाश पर लाल-लाल बिजली की लपटें नाच रही थीं।

यह   जुड़ने की।

शब्दार्थ विज्ञानमयी=विज्ञान के आधार वाली। सृष्टि=निर्माण।

भावार्थ—विज्ञान के आधार पर कभी जनता ने आकाश में पाँव लगा कर उड़ने की अभिलाषा की थी। उनके जीवन में इतनी अनन्त आशाएँ हैं जो कभी मिट नहीं सकती थीं।

इन्हीं के कारण अधिकारों का सृजन हुआ और धीरे धीरे अधिकारियों को उनसे प्रेम हो गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि वर्गों की खाई बन गई। अधिकारी अधिकृत-दो वर्ग बन गए। और वर्गों की खाई ऐसी थी जो कभी भी जोड़ी नहीं जा सकती थी।

असफल   जैसी।

शब्दार्थ—असफल=इड़ा की प्राप्ति में असफल। क्षुब्ध=क्रोधित। आकस्मिक=अचानक। परित्राण प्रार्थना = रक्षा की प्रार्थना। विकल=व्याकुल।

भावार्थ-मनु इड़ा की प्राप्ति में असफल होकर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने सोचा कि अचानक ही यह कैसी बाधा आगई है। उनकी समझ में कुछ भी न आया था कि क्या हो गया और प्रजा क्यों इस प्रकार आकर एकत्रित हो गई है।

देवताओं के क्रोध के कारण दुखी जनता की रक्षा की प्रार्थना विद्रोह बन गई। पहले तो जनता ने रक्षा की प्रार्थना की थी लेकिन फिर वह विद्रोह भावना से भर गई। इड़ा वहाँ उन्हीं के बीच खड़ी थी। मनु ने समझा कि यह जाल इड़ा का ही रचा हुआ है।

"द्वार   देना!

शब्दार्थ—प्रगट=प्रत्यक्ष। शयन-कक्ष=सोने का कमरा।

भावार्थ—मनु ने प्रहरियों को आज्ञा दी कि इन लोगों को अन्दर मत आने देना। आज प्रकृति में हलचल है। मैं तो अब सोना चाहता हूँ। इसलिए ध्यान रखना कि कोई मुझे जगाए नहीं।

मनु मन में तो भयभीत थे। किन्तु ऊपर-ऊपर से उन्होंने क्रोध में भर कर

यह कहा । यह कहकर जीवन के आदान-प्रदान के विषय में सोचते हुए सोने के कमरे में चले गए ।

श्रद्धा ‌ पक्षी ।

शब्दार्थ—स्वजन स्नेह = सम्बन्धी का प्रेम । व्याकुल रजनी = व्याकुल श्रद्धा की रात–विशेषण विपर्यय ।

भावार्थ—श्रद्धा स्वप्न में ही काँप उठी । और फिर अचानक ही उसकी आँख खुल गई । वह सोचने लगी कि मैंने यह कैसा स्वप्न देखा है ! मनु इतना दुखी कैसे हो गया है !

सम्बन्धी के प्रेम में न जाने कितनी ही आशंकाएँ होने लगती हैं । जब कोई अपने प्रिय सम्बन्धी के विषय में कोई बुरा स्वप्न देखता है, तो वह उसके विषय में अनेक प्रकार की चिन्ताएँ करने लगता है । श्रद्धा व्याकुल होकर यही सोचती रही कि अब क्या होगा ! इसी सोच में सारी रात व्यतीत हो गई ।

संघर्ष

श्रद्धा ने जो स्वप्न देखा था, वह सच्चा था। मनु ने सचमुच ही इड़ा पर अधिकार करना चाहा था और उधर प्रकृति में भी हलचल थी। इस कारण इड़ा संकुचित थी और जनता क्रोधित थी। प्रकृति के उत्पात से घबरा कर सारी प्रजा घबरा गई और अपनी रक्षा के लिए राजा की शरण में आई। किन्तु वहाँ उनका अपमान किया गया, उनके साथ बुरा व्यवहार किया गया सभी वहाँ दुखी थे और इस आकुलता के कारण क्रोधित हो उठे थे। जनता व्यग्र होकर इड़ा का पीला मुख देख रही थी। उधर प्रकृति का भयंकर उत्पात जारी था।

महल के बाहरी आँगन में जनता की भीड़ एकत्रित हो गई थी। पहरेदारों ने द्वार बन्द कर रखे थे। रात बड़ी अँधेरी थी और बादल घिर आए थे। मनु अकेले बिस्तर पर पड़े-पड़े चिंतित थे।

मनु सोच रहे थे कि मैं इस देश को बसा कर कितना प्रसन्न हुआ था। मैंने निरन्तर प्रयत्न से जनता को संगठित किया और उन्हें सुख के सारे साधन प्राप्त हुए। मैंने बुद्धि बल से इनका शासन किया इनकी व्यवस्था के लिए नियम बनाए। किन्तु क्या मैं भी इन नियमों के आधीन हूँ ! क्या मुझे थोड़ी सी भी स्वतन्त्रता नहीं है ! क्या मुझे अपनी प्रजा से डर कर ही रहना पड़ेगा।

मैंने श्रद्धा के प्रेम का प्रतिदान भी तो नहीं किया। इड़ा मुझे अब नियमों के आधीन करना चाहती है। उसने मेरी एक बात भी न मानी। सारा विश्व ही परिवर्तनशील है। पहले जहाँ कभी सागर था, आज वहीं मरुस्थल है। इस परिवर्तनशील संसार में कोई भी तो स्थिर नहीं रह सकता।

आज प्रजा के असंख्य नर-नारी व्याकुल हैं। सभी की आँखों में आँसू हैं और सभी रक्षा के लिए आए हैं। इस विनाश में भी संसार का विकास

दावा मा रहा है । सब व्यक्तियों के मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि सारा संसार एक नियम में बँधा है । इन्होंने नियमों को सुख का साधन मान लिया है । किन्तु मैंने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया कि नियम बनाने वाला भी नियमों के आधीन हो । मेरा तो यह दृढ़ मत है कि मैं सदैव बन्धनों से मुक्त रहकर अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता रहूँगा ।

एक क्षण भर के लिए मनु की विचार धारा रुक गई । उन्होंने मुड़कर देखा तो सामने इड़ा खड़ी थी । इड़ा ने कहा कि यदि नियामक स्वयं ही नियम न माने तो उसे समझ लेना चाहिए कि सभी कुछ नष्ट हो जाएगा ।

मनु ने उत्तर दिया कि आज फिर तुम यहाँ कैसे आ गई हो । क्या कोई नया उपद्रव करना चाहती हो । अभी तक जो कुछ हो चुका है, क्या इस से तुम्हारा सन्तोष नहीं हुआ ? क्या अभी कुछ कसर है ?

इड़ा ने कहा कि तुम तो यह चाहते हो कि सभी तुम्हारे शासन में रहें, किन्तु अपना सुख न चाहें । किन्तु ऐसा न तो कभी हुआ है और न ही ऐसा होगा । कोई भी अबाधित अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता ।

मनुष्य अपने आप में ही एक विश्व के समान है । सभी व्यक्ति भेद भाव को भुलाकर संगठित होना चाहिए और विश्व के कल्याण में अनुरक्त रहना चाहिए । मनुष्य में प्रेम के साथ-साथ द्वंद्व भी है । इसीलिए वह पर तप सा बना रहता है और बार-बार विपत्तियों से आक्रान्त होता है । यदि तुम जनता को सन्तुष्ट कर सको तो तुम राष्ट्र के हृदय में निवास करोगे । तुम्हें अपने स्वार्थ के घेरे से बाहर निकल कर जनता के साथ चलना चाहिए उसके और अपने सुख को भिन्न नहीं समझना चाहिये ।

मनु ने उत्तर दिया कि बस अब तुम्हें और अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं है । मैं तुम्हारी प्रेरणा शक्ति को अच्छी तरह समझ चुका हूँ । आज तुम यह कैसी बात कह रही हो ? क्या प्रजापति होने का अर्थ यह है कि मेरी इच्छाएँ सदैव अतृप्त रहें ? क्या मैं सब को सुख देकर भी स्वयं दुःखी रहूँ ? जो मैं चाहता हूँ यदि वही मुझे न मिले तो मैं व्यर्थ ही प्रजापति बना हूँ ।

इड़ा जिस वस्तु की मैं इच्छा करूँ, वही मुझे मिलनी चाहिए । मैं यह

चाहता हूँ कि मेरा तुम पर अधिकार हो। अब मैं तनिक भी अधिकार नहीं चाहता, मैं तो बस तुम्हें चाहता हूँ। प्रकृति की यह हलचल भी मेरे हृदय के आवेग के समक्ष क्षुद्र है। मैं विश्व में लीन नहीं होना चाहता। चाहे मैं रोता रहूँ, किन्तु तुम्हें प्राप्त कर लूँ, तो मैं सन्तुष्ट रहूँगा। चाहे फिर से भयङ्कर प्रलय हो जाए, किन्तु तुम मेरे पास रहो, तो मुझे उसकी भी कोई परवाह नहीं है।

इडा ने कहा कि तुम मेरी अच्छी बातें नहीं समझते। इस उत्तेजना के कारण ही तुम्हें वांछित वस्तु नहीं मिलती। प्रकृति शरण माँग रही है। प्रकृति उत्पात मचा रही है। किन्तु तुम्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं तुम्हारा हित चाहती हूँ। जो मुझे कहना था मैंने कह दिया, अब और कुछ नहीं कहना चाहती। अब मैं जाती हूँ।

मनु ने कहा कि तुम इस प्रकार मुझे छोड़कर नहीं जा सकती। तुम्हीं ने मुझे इस संघर्ष में डाला है। तुम्हीं ने मुझे यज्ञ में प्रवृत्त किया है। तुम्हारी प्रेरणा से ही मैंने परिश्रम किया जिसके फलस्वरूप चार वर्ण बन गए और यंत्र आदि बन गए। अब तुम नियमों की बाधा पास मत आने दो। तुम मेरे प्रणय को स्वीकार कर लो और इस दुःख भरे जीवन में कुछ सुख प्राप्त करने दो। और यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगी, तो यह सारस्वत नगर नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा।

इडा ने कहा कि जो कुछ तुम्हारे लिए किया है उसे इस प्रकार मत भुला दो। अपनी सफलता में इस प्रकार अभिमानी मत बन जाओ। मैंने तुम्हें प्रकृति के साथ संघर्ष करना सिखाया, तुम्हें सारी सत्ता का केन्द्र बनाया और तुम्हें इस सारी सम्पत्ति का स्वामी बना दिया है। देखो प्रभात हो रहा है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। तुम मेरी बात मान लो।

और तब मनु फिर उत्तेजना से भर गए। जैसे ही इडा आगे बढ़ी, मनु ने उसे अपनी भुजाओं में कस लिया और उससे बोले कि तुम इस सारस्वत देश की रानी हो तुमने मुझे अपना साधन बना लिया है और मनमानी करती हो। किन्तु अब तुम्हारा यह छल नहीं चलेगा। म अब तुम्हारे जाल से स्वतन्त्र हूँ। मैं सदैव स्वतन्त्र हूँ और शासक हूँ। तुम पर भी मेरा अधिकार है।

स्थान में। स्वर=श्रांमल। असंख्य चीत्कार=असंख्य व्यक्तियों का चिल्लाना।

भावार्थ—इस सूने अनन्त आकाश में करोड़ों नक्षत्र घूम रहे हैं। वे स्वयं भी घूमते हैं और सब नक्षत्र सम्मिलित होकर भी घूमते हैं। वे निराधार आकाश म लटके हुए हैं।

आज वायु के आंचल में असंख्य लहरें आ रही हैं। तीव्र और अनगिनत झोंके आ रहे हैं। और इस तूफान से ग्रस्त होकर असंख्य व्यक्ति चिल्ला रहे हैं। सभी कितने परवश हैं।

यह जीवन।

शब्दार्थ—नर्तन=नृत्य। उन्मुक्त=स्वच्छन्द। स्पन्दन=कंपन। द्रुततर=तीव्र। गतिमय=तेज। पुनरावर्तन=दोबारा होना।

भावार्थ—आज के इस तूफान में स्वच्छन्द संसार का अत्यन्त तीव्र कम्पन लक्षित हो रहा है। संसार बन्धन हीन है और आज अत्यन्त तेज हलचल मची हुई है। और यह हलचल अपनी ही लय में और भी भयानक होता जा रहा है।

कभी-कभी हम इस संसार में प्राचीन घटनाओं को दोबारा होता हुए देखते हैं। पहले भी मनु प्रलय देख चुके हैं और आज उन्हें फिर वैसा ही दृश्य मानते हैं जिससे जीवन का विकास होता है। जीवन का नाश करने वाली इस भयानक हलचल का नियम नहीं मानते।

रुदन हरा है।

शब्दार्थ—रुदन=रोना, विलाप। हास=हँसी। ललक रहे हैं=व्याकुल रहे। ताप=दुःख। सृष्टि-कुंज=विश्वरूपी कुंज।

भावार्थ—किन्तु आज लोगों की हँसी उनके आँखों में आँसू बन कर झलक रही है। सारे व्यक्ति जो कभी प्रसन्न थे, आज रो रहे हैं। आज सैकड़ों व्यक्ति भय से मुक्ति पाने के लिए व्याकुल हैं।

जीवन में शाप है और इस शाप में अनेक दुःख और विपत्तियाँ भरी हैं। यह उन्नतिशील संसार वास्तव इस विनाश की गोद में ही पल रहा है।

विश्व माना।

शब्दार्थ—दृढ़ प्रचार=बद्धमूल विश्वास। नियामक=नियम बनाने वाला।

भावार्थ—इन व्यक्तियों के मन में यह विश्वास बद्धमूल होगया है कि सारा संसार एक नियम में बंधा चल रहा है।

मैंने जो नियम बनाया, उन्होंने उसकी परीक्षा की और तब इन्हें ज्ञात हुआ कि इसे स्वीकार करने से इन्हें सुख मिलेगा। किन्तु मैंने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया कि नियम बनाने वाला भी नियमों के आधीन रहे। मैंने सदैव अपने को नियमों से ऊपर माना है।

मैं सपना।"

शब्दार्थ—चिर-बन्धन हीन=सदैव बंधनों से मुक्त। उल्लंघन करता= अतिक्रमण करता। सतत=निरन्तर। चेतनता=प्राण। तुष्टि=सन्तोष।

भावार्थ—मैंने यह पक्का निश्चय कर लिया है कि मैं सदैव बन्धनों से ऊपर रहूंगा और सदैव मृत्यु और जीवन की सीमाओं का अतिक्रमण करूँगा। न तो जीवन की पुकार और नहीं मृत्यु का भय मुझे किसी प्रकार भयभीत कर सकता है।

यह सारा विश्व नश्वर है। उसमें जो क्षण अपने अनुकूल हो उसी में प्राणों का आनन्द है। और इसके अतिरिक्त बाकी सब तो सपने के समान नश्वर है।

प्रगतिशील निश्चय जान।

शब्दार्थ—प्रगतिशील=चिन्तन में लीन। अविचल=शान्त। नियामक= बनाने वाला।

भावार्थ—मनु का चिन्तन में लीन मन एक क्षण भर के लिए विश्राम लेने के लिए शान्त हो गया। मनु ने जब करवट लेकर देखा तो सामने इड़ा खड़ी थी। वह अपना सब कुछ भी मनु को देकर वहाँ शान्त भाव से खड़ी थी।

और इड़ा यह कह रही थी कि यदि नियम बनाने वाला स्वयं ही नियम का उल्लंघन करने लगता है तो उसे निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि सब कुछ ही नष्ट हो जाएगा।

"ए कितना !"

शब्दार्थ—उपद्रव=उत्पात ।

भावार्थ—मनु ने आश्चर्य से इड़ा से कहा कि तुम आज फिर यहाँ कैसे आ गई हो । क्या तुम्हारे मन में किसी नए उत्पात का आरम्भ करने की इच्छा है ।

आज भी यह सब कुछ हुआ है क्या इससे तुम्हारा सन्तोष नहीं हुआ है ? अभी कितना और बाकी बचा है ।

"मनु भोगा !"

शब्दार्थ—स्वत्व=अधिकार । निर्वासित अधिकार=यह अधिकार जो दूसरा के घर-बार छीन ले, उन्हें उनके घर से निकाल दे ।

भावार्थ—इड़ा ने कहा—मनु ! तुम तो यह चाहते हो कि सारे व्यक्ति सदैव तुम्हारे शासन और अधिकार का चुपचाप पालन करें, और स्वयं एक क्षण भर के लिए भी हृदय का सन्तोष न प्राप्त करें ।

किन्तु मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि न तो आज तक कभी ऐसा हुआ है और नहीं ऐसा कभी होगा । दूसरों का सब कुछ छीन कर कोई भी अधिकार को नहीं भोग पाया है ।

यह बताव ।

शब्दार्थ—आकार=मूर्ति । आवरणों में=रहस्यों में । निर्मित=बना हुआ। चिति केन्द्र=हृदय । द्वयता=शत्रुता । विस्मृत=भूलकर । स्पर्धा=होड़ । संसृति= संसार ।

भावार्थ—यह मनुष्य चेतना की एक विकसित मूर्ति है । और यह अपने रहस्यों में ही एक संसार को छिपाए हुए है । इसके भीतर अनन्त विचारों और भावों का आवास है ।

हृदय और हृदय के बीच जो निरन्तर संघर्ष हुआ करता है और जो मन में शत्रुता और विरोध का भाव उत्पन्न करता है—

उसे आज मनुष्य ने भुला दिया है । सभी व्यक्ति अब एक दूसरे को

पहचान रहे हैं, सब एक दूसरे के समीप आरहे हैं। मनुष्य अनेक मनुष्यों का अपने में मिला रहा है।

आज के युग में जो व्यक्ति होड़ में दूसरों से बाजी लगाए, उस ही इस ससार में रुक जाना चाहिए। उसे अपने जीवन को संसार के कल्याण म लगाना चाहिए और जनता के लिए मङ्गलमय मार्गों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

इन दो छंदों में विकासवाद की छाप स्पष्ट है। इडा यौद्धिक शक्तियों की प्रतीक है। उसके लिए विकासवाद का उपदेश दना स्वाभाविक ही है। विका सवाद के अनुसार मनुष्य लघुतम चेतन जीवों से धीरे धीरे विकसित हुआ है। मनुष्य के विकास के पश्चात उसमें परस्पर पशुओं जैसा संघष चला था। किन्तु धीरे धोरे वह दूर हुआ और समाज के सारे व्यक्ति एक दूसरे के करीब आए। किन्तु समाज में जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपक्षा श्रेष्ठ होता है, वही संसार के कल्याण के लिए प्रयास कर सकता है। आज पश्चिमी देशों में भी विकासवाद को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जाता।

व्यक्ति .... जाता।

शब्दार्थ—राग पूर्ण=प्रेम युक्त। द्वेष पंक=ईर्ष्या का कीचड़। नियत = निश्चय। भांत=थक कर।

भावार्थ—व्यक्ति को दो कार्य करने होते हैं। प्रथम दूसरा की स्पर्धा में उसे अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करना हाता है, द्वितीय उसे विश्व का कल्याण करना होता है। इन दोनों बातों का उसके जीवन पर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। उसे विश्व का कल्याण करना है इसलिए व्यक्ति का जीवन पराधीन है, लोक कल्याण का अनुगामी है और उसमें अन्य व्यक्तियों के लिए प्रेम भी होता है। किन्तु साथ ही एक व्यक्ति की दूसरों से स्पर्धा होती है इसलिए वे वे दूसरों की ईर्ष्या क कीचड़ में सना सा है।

व्यक्ति अपने निश्चित मार्ग पर चला जा रहा है। किन्तु असन्तुलन के कारण उसे प्रति पग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं, असफलता का मुँह देखना पड़ता है। किन्तु इन असफलताओं के बावजूद भी व्यक्ति थक कर अपने लक्ष्य के समीप पहुँचता ही जाता है।

यह काया में ।

शब्दार्थ—बुद्धि-साधना=ज्ञान की प्राप्ति । आराधना=पूजा, प्राप्ति का साधन । प्राण सदृश=प्राणों के समान । काया=शरीर ।

भावार्थ—यही जीवन का वास्तविक उपयोग है, ज्ञान की प्राप्ति का भी एकमात्र उपाय यही है, इसी में अपना हित है और सुख की प्राप्ति का साधन भी यही है कि यदि सारी जनता तुम्हारे आश्रय में सन्तुष्ट रह । यदि जनता तुम से सन्तुष्ट होगी और तुम उनके मंगल के लिए काम करते रहोगे तो तुम इस सारे देश के शरीर में प्राणों के समान निवास करोगे । सारी जनता तुम्हारी महिमा का स्वीकार करेगी ।

दृश विस्मृति में ।

शब्दार्थ—देश-कल्पना=वस्तुओं का निर्माण । काल-परिधि=समय की सीमा । महा चेतना=संसार की मूल चेतन शक्ति । निज-क्षय=अपना नाश । अनन्त चेतन=परम सत्ता । उन्मद=मस्त होकर । पृथकता=भेद बुद्धि । विस्मृति में=भूल कर लीन होकर ।

भावार्थ—जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब समय की सीमा में नष्ट हो जाती हैं कल जो वस्तु बनी थी आज नष्ट हो जाती है और आज जो वस्तु बनी है वह कल नष्ट हो जाएगी और समय भी शाश्वत परम सत्ता नहीं है । उससे भी परे एक परम चेतन शक्ति है जिसमें काल का भी पर्यवसान हो जाता है । वह चेतन शक्ति देश और काल से परे है ।

और यह जो परम सत्ता है वह मस्त होकर नृत्य किया करता है । यह सारा विश्व विश्व नटराज का नृत्य ही तो है । यद्यपि तुम इस समय उस विराट चेतन शक्ति से भिन्न हो फिर भी तुम्हें लीन होकर नृत्य करना चाहिए । सदैव अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ना चाहिए । तुम्हें उससे भिन्न होते भी हुए अपनी भेद बुद्धि को भूलना पड़ेगा ।

क्षितिज इसमें ।"

शब्दार्थ—क्षितिज=वह सीमा जहाँ धरती और आकाश मिलते दिखाई देते हैं, बद्ध दृष्टि, स्वार्थ-भावना । पटी=आंचल । ब्रह्माण्ड-विवर=विश्व का बिल, मनुष्य मात्र । गुंजारित=गूँजता हुआ । घन नाद=मेघ-गर्जन । विश्व

कुहर=विश्व रूपी गुफा। ताल=संगीत की नियत गति, को ताल कहते हैं, यहाँ सब से मिल कर चलने का भाव है। विवादी स्वर=वह स्वर जो एक राग के स्वरों से भिन्न है और उसे विकृत कर देता है।

भावार्थ—किसी गुफा में प्रवेश करने के लिए उसके मुख पर पड़े पर्दे को हटाना पड़ता है। उसी प्रकार तुम भी अपने स्वार्थ के पर्दे को हटाकर सारा जनती के हृदय में प्रवेश करो, सारे विश्व में अपने व्यक्तित्व का प्रसाद देखो। इस संसार की गुफा में मेघ गर्जन के समान गम्भीर जनता की ध्वनि सुनो। अपनी प्रजा की बात पर ध्यान दो।

जिस प्रकार संगीत में गाने वाला और वाद्य बजानेवाला ताल पर चलता है तभी गम्भीर प्रभाव की सृष्टि होती है, उसी प्रकार तुम भी सारी जनता के साथ मिलकर चलो, सब की भावनाओं का आदर करो। यदि संगीत में लय टूट जाती है अथवा कोई भिन्न स्वर एक राग में बजा दिया जाता है, तो संगीत का स्वरूप विकृत हो जाता है। इसी प्रकार तुम भी कोई कार्य ऐसा मत करो जो जनता की भावनाओं के विपरीत हो।

"अच्छा समाई!

शब्दार्थ—प्रेरणामयी=स्फूर्ति देने वाली।

भावार्थ—मनु ने उत्तर दिया कि बस अब तुम्हें यह सब समझाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी स्फूर्तिदायक शक्ति को भली भाँति पहचान चुका हूँ।

किन्तु तुम आज अभी लौटकर कैसे आ गई हो? तुम्हारे मन में इतना साहस कहाँ से आ गया है?

आह पाप सहूँ क्या!

शब्दार्थ—वितरित=बाँटना। सतत=निरन्तर।

भावार्थ— क्या प्रजापति होने का मुझे यही अधिकार मिला है कि मेरी इच्छा सदैव प्यासी बनी रहे? क्या मुझे अपनी इच्छा पूर्ति का भी अधिकार नहीं है?

क्या मैं सदैव सब को सुख बाँटता ही रहूँगा ? क्या यदि मैं कुछ प्राप्त करना चाहूँ तो वह पाप होगा ? और क्या मुझे चुप रहकर वह पाप सहना पड़ेगा।

तुमने .... कही है।"

शब्दार्थ—प्रतिदान किया=बदला चुकाया।

भावार्थ—तुम ही बताओ तुमने मेरे उपकारों का क्या बदला चुकाया है ? तुम तो बस मुझे ज्ञान दे देकर ही जीवित रहना चाहती हो। मुझे अपना साधना बनाना चाहती हो।

मुझे जिस वस्तु की इच्छा है वह तो मुझे मिली ही नहीं। फिर तुम्हारी इन सब बातों का क्या लाभ ? अभी-अभी तुमने जो लोक कल्याण की बात की है, उसे वापिस ले लो। यदि मुझे प्यासा रहना है, तो उसका मेरे लिए क्या लाभ ?

"इड़े .... तनिक भय।

शब्दार्थ—वृथा=बेकार।

भावार्थ—हे इड़ा ! यही वस्तु चाहिए जिसकी मैं इच्छा करता हूँ। या तो मेरा तुम पर अधिकार हो, अन्यथा मेरा प्रजापति होना व्यर्थ ही है।

अब तो तुम्हें देखकर सारे नियमों के बन्धन टूट रहे हैं। अब मेरे मन में राज्य या अधिकार की तनिक भी इच्छा नहीं है।

देखो .... अबला ?

शब्दार्थ—दुर्जय=अजेय। क्षुब्ध=क्षुब्ध। स्पन्दन=कम्पन, हलचल। इस कठोर ने=कठोर मनु ने।

भावार्थ—देखो। आज अजय प्रकृति में कैसी हलचल है ? इधर मेरे हृदय में भी एक तूफान उठ रहा है। इस प्रकृति की हलचल मेरे हृदय के तूफान के सामने तुच्छ है।

इस कठोर मनु ने प्रलय के बीच में भी हँस-हँसकर समय व्यतीत किया है। किन्तु आज मैं अकेला होकर बिल्कुल कायर हो रहा हूँ, मेरी सारी

कोरता नष्ट हो गई है।

तुम पा लूँ।

शब्दार्थ—क्रन्दन = विलाप। रोदन = रोना। अट्टहास = हँसी का कहकहा।

भावार्थ—तुम मुझसे यह कह रही हो कि संसार एक लय के समान है, और मुझे उसमें लीन हो जाना चाहिए। किन्तु तुम ही बताओ कि इसमें क्या सुख है!

मैं तो यह चाहता हूँ कि मैं अपने विलाप का एक बिल्कुल अलग एक आकाश बना लूँ और यहाँ रोते हुए कहकहा बनकर तुम्हें पा लूँ। चाहे मैं अकेला रहकर दुखी रहूँ, किन्तु मैं तुम्हें ही पाना चाहता हूँ।

फिर तुम!"

शब्दार्थ—जलनिधि = सागर। झंझा = तूफान। वज्र-प्रगति = वज्र जैसी तीव्रता।

भावार्थ—चाहे फिर से सागर अपनी सीमाओं को तोड़ कर तरंगित हो उठे, चाहे फिर से वज्र की सी भयङ्कर तेजी के साथ चारों तरफ आँधियाँ चलने लगें।

चाहे फिर से मेरी नाव सागर में डगमगाने लगे और लहरें नाव के ऊपर उठने लगें, चाहे सूर्य, चन्द्रमा और तारे सभी तूफान से चौंक उठें,

किन्तु फिर भी तुम मेरे पास ही रहो। अब तुम पर मेरा अधिकार हो चुका है। अब मैंने तुम्हारा रहस्य जान लिया है। मैं खिलवाड़ नहीं हूँ जो तुम सदैव अपनी इच्छानुसार मेरे साथ खेलती रहो, मुझे अपना साधन बनाए रखो।

"आह पड़ी है।

शब्दार्थ—प्राप्य=लक्ष्य। क्षुब्ध=क्रोधित। आतङ्क=भय। विकम्पित = जोर से काँपना।

भावार्थ—इड़ा ने उत्तर दिया कि कितने दुःख की बात है कि तुम मरी

मैंने तुमको प्रकृति के साथ संघर्ष करना सिखाया, उस पर अधिकार पाने की प्रेरणा दी। तुम्हें मैंने शक्ति का केन्द्र बनाकर तुम्हारे साथ कोई बुराई तो नहीं की।

मैंने ... बड़ा है।

शब्दार्थ—विभूति=सम्पत्ति। सहज=सरलता से। अन्तर्यामी=सब कुछ जानने वाले, रहस्य का ज्ञान रखने वाले।

भावार्थ—मैंने तुम्हें सारस्वत प्रदेश के बिखरे वैभव का स्वामी बना दिया है। इसमें तुम्हारी पूरी-पूरी सहायता करके इस कार्य को बहुत सरल कर दिया था। और अब तुम इस सारस्वत प्रदेश के सभी रहस्यों से अभिज्ञ हो।

किन्तु आज तो तुम सब कुछ उपकार भूल गए और हमारे एक प्रस्ताव को ही सब से अलग करके एक मात्र सत्य मान लिया है। और यदि मैं तुम्हारी हाँ में हाँ नहीं मिलाती, तुम्हारी प्रत्येक बात का अनुमोदन नहीं करती, तो इसे तुम मेरा बड़ा भारी अपराध समझते हो।

मनु ... धरो सो।"

शब्दार्थ—भ्रांत निशा=भ्रान्त करने वाली रात, अज्ञान से भरी रात। तमस = अन्धकार।

भावार्थ—और हे मनु! देखो अब यह अंधेरी रात बीतने वाली है। पूर्व दिशा में नवीन उषा का आगमन हो रहा है और अँधेरा हट रहा है।

अब भी समय है। यदि तुम मुझ पर विश्वास करो और स्वयं धैर्य धारण करो तो सब कुछ ठीक हो सकता है।

और ... यह।

शब्दार्थ—प्रमाद=मोह, वासना।

भावार्थ—उसी समय मनु के हृदय में फिर पुरानी वासना जाग्रत हुई। इधर इड़ा ने अपने पाँव द्वारा की ओर बढ़ाया।

किन्तु मनु ने अपनी भुजाओं में भर कर उसे रोक लिया। वह व्याकुल होकर करुण दृष्टि से मनु को देखती रही।

"यह समझो।

शब्दार्थ—अस्त्र=हथियार, साधन। पंगु हुआ सा=लंगड़ा हुआ सा, व्यर्थ हुआ सा।

भावार्थ—मनु ने इड़ा से कहा कि वास्तव में तो यह सारस्वत प्रदेश तुम्हारा ही है। तुम ही इसका शासन करने वाली रानी हो। मुझे तुमने अपने उद्देश्यों की पूर्ति का साधन भर बना लिया है और जैसा चाहती हो, वैसा ही मेरा प्रयोग करती हो।

किन्तु अब समय बदल चुका है। अब तुम्हारा यह छल व्यर्थ हो गया है। और अब तुम्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि मैं भी तुम्हारे जाल से अब स्वतंत्र हो गया हूँ। अब तुम्हारी मुझपर एक भी न चलेगी।

शासन अतल म।

शब्दार्थ—प्रगति=विकास, उन्नति। सहज ही=सरलता से, अपने आप। चिर=शाश्वत। छिन्न भिन्न=नष्ट भ्रष्ट। अतल=अत्यंत गहराई में पाताल में।

भावार्थ—अब तो मुझ से तुम्हारे अनुशासन का पालन नहीं हो सकेगा। अब मैं तुम्हारा दास नहीं रहा हूँ। इसलिए तुम्हारे शासन और राज्य की उन्नति अपने आप ही रुक जाएगी। मेरे कारण ही तुम्हारा राज्य चल रहा था अब इसे नष्ट सा ही समझो।

मैंने तो स्वभाव से ही शासन करना सीखा है। मैं सदैव स्वतन्त्र रहा हूँ। और तुम पर भी मेरा अबाध अधिकार हो यही मेरी इच्छा है। और तुम पर अधिकार पाकर ही मेरा जीवन सफल होगा।

यदि तुमने अपने पर मेरा अधिकार स्वीकार नहीं किया, तो एक क्षण में ही यह सारी व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जाएगी और रसातल को चली जाएगी। यदि तुम आत्म समर्पण नहीं करोगी तो तुम्हारा सारा राज्य मिट जाएगा।

देख आहों में।

शब्दार्थ—वसुधा = धरती। निर्मम = कठोर। क्रन्दन = चिल्लाना, गर्जना

भावार्थ—मैं भयभीत धरती का काँपना देख रहा हूँ और साथ ही

आकाश में मेघों का भयंकर गर्जन भी सुन रहा हूँ।

किन्तु मुझे इनकी चिन्ता नहीं है क्योंकि आज तुम मेरी छाती में, मेरी बाहों में बंदिनी हो। इसके पश्चात कुछ सुनाई नहीं दिया और इड़ा की आहों में सब डूब गया।

सिंह रहे थे।

शब्दार्थ—सिंह द्वार=मुख्य द्वार अरराया=टूटा। चीत्कार=चिल्लाना। स्खलन=फिसलन। विकंपित—काँपते हुए।

भावार्थ—उधर जनता सिंह द्वार को तोड़ने का प्रयास कर रही थी। सिंह द्वार टूट गया और सारी जनता भीतर आ गई। भीतर आते ही वह ज़ोर ज़ोर से 'मेरी रानी' कहकर चिल्लाने लगी।

उस समय मनु अपनी दुर्बलता के कारण काँप रहे थे। इड़ा के साथ उन्होंने जो व्यभिचार किया था वह उनकी एक बड़ी भूल थी। उस समय भी उस भूल के कारण उनके पाँव काँप रहे थे।

सजग बनाया।

शब्दार्थ—सजग हुए=सावधान हुए। यज्ञ लांछित=यज्ञ के चिन्ह से युक्त। राज दंड=एक प्रकार का दंड जो राजा अपने हाथ में रखता है। इसका आकार गदा का सा होता है। तृप्तिकर=सन्तोष देने वाला। श्रम भाग=श्रम का विभाजन।

भावार्थ—तब मनु ने यज्ञ के चिन्ह से युक्त राज दंड हाथ में लिया और वे सावधान हुए। और उन्होंने पुकार कर जनता से कहा कि अब मैं जो तुमसे कह रहा हूँ सब सुनलो—

मैंने तुम्हें सन्तुष्ट करने वाले सारे साधन बताए। मैंने ही तुम्हारे लिए श्रम का विभाजन किया और तुम्हारे वर्ग बनाए।

अत्याचार हमारी!"

शब्दार्थ—प्रकृति-कृत = प्रकृति के द्वारा किए गए। प्रतिकार=उपाय। कानन चारी = वन में घूमने वाले। उपकृति=उपकार।

भावार्थ—प्रकृति के जो अत्याचार हम सहन करते हैं, आज हम उन्हें चुपचाप सहन नहीं करते। अब हम उनको दूर करने का कुछ उपाय करते हैं।

आज हम जानवर नहीं हैं। हम गूँगे और वन में घुमने वाले पशुओं के समान नहीं हैं। मैंने ही तुम्हें मानवीय जीवन प्रदान किया है। क्या तुम हमारे इस उपकार को भूल गए हो ?

वे   जाला।

शब्दार्थ—मानसिक=मन के। भीषण=अत्यन्त तीव्र। योग=अप्राप्य की प्राप्ति योग है। क्षेम=प्राप्त वस्तुओं की रक्षा क्षेम है।

भावार्थ—जनता मन के तीव्र दुख से कोधित होकर बोली कि देखा आज पाप अपने मन से स्वयं ही पुकार उठा है। मनु का पाप ही बोल रहा है।

तुमने हम लाभ की शिक्षा दी है जिससे हमने आवश्यक वस्तुओं से अधिक संचय करना आरम्भ कर दिया और अपनी वस्तुओं की बहुत अधिक रक्षा करनी आरम्भ कर दी। इसी कारण आज हम इस विपत्ति में पड़े हैं।

'विचार संकट' इसलिए कहा कि आज की सारी विपत्तियाँ बुद्धि की प्रधानता से ही उत्पन्न हुई हैं।

हम   भीनी।

शब्दार्थ—संवेदन शील=बौद्धिक। कृत्रिम=झूठा, नकली। शापयाकार=पीसकर। बर्बर=दुबल। झीनी=उथली।

भावार्थ—हमें तुम्हारे शासन में यही सुख मिला है कि हम बौद्धिक हो गए हैं। और अपने झूठे दुख बनाकर हो कष्ट समझने लगे। ये जितने भी दुख हैं सब हमारे अपने बनाए हैं और यथार्थ हैं।

तुमने यन्त्रों का निर्माण करके हमारी स्वाभाविक शक्ति छीन ली है। तुमने हमारा शापथ करके हमारे जीवन को दुबल और उथला बना दिया है।

ये विचार गांधी जी के विचारों से विशेष रूप से मिलते-जुलते हैं। महात्मा गाँधी यन्त्रों के विरुद्ध थे। व आवश्यकता से अधिक वस्तुओं के संचय का भी विरोध करते थे।

और   कहाँ है !'

शब्दार्थ—यायावर=घूमने वाला व्यक्ति।

भावार्थ—और आज तूने इड़ा पर भी कैसा निन्दनीय अत्याचार किया

है। क्या इसीलिए तू हमारी शक्ति के आधार पर यहाँ जीवित रहा है? क्या इसलिए हमने तुझे पाला है?

आज तू ने हमारी रानी इड़ा को बन्दिनी बनाकर यहाँ छोड़ रखा है? और मायावर! अब तेरी रक्षा असंभव है। आज तू हमसे बचकर नहीं जा सकता।

"तो ... दूर्षे।"

शब्दार्थ—भीषण=भयंकर। साहसिक=साहस का कार्य करने वाले। पावक=तेज।

भावार्थ—मनु ने उत्तर दिया कि यदि तुम लोगों का यही निश्चय है तो ठीक है। आज मैं जीवन के इस युद्ध में प्रकृति के उत्पात और मनुष्यों के भयंकर दल के बीच अकेला ही खड़ा हूँ। किन्तु मैं भयभीत नहीं हूँ।

आज आप मेरे साहस और तेज की अपने शरीर पर परीक्षा करेंगे। आज आप मेरे राजदंड को वज्र के समान भयंकर रूप ग्रहण करते हुए देखेंगे।

यों ... पील।

शब्दार्थ—देव आग=देवताओं का क्रोध। नाराच=तीर। तीक्ष्ण=तेज। धूमकेतु=पूँछदार सितारे।

भावार्थ—यह कहकर मनु ने अपना भयंकर अस्त्र संभाल लिया। उसी समय देवताओं का क्रोध भी भीषण हो उठा। देवता मनु पर क्रोधित हो उठे और उनसे बदला लेने के लिए सन्नद्ध हो गए।

मनु के धनुष से तेज और नुकीले बाण छूट रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश से नीले और पीले रंगों के पूँछदार सितारे गिर रहे हैं।

पुच्छल सितारे का उदित होना अशुभ माना जाता है। यहाँ कई पुच्छल सितारे गिर रहे हैं। इसलिए सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

अ घड़ ... प्राणों का।

शब्दार्थ—अ घड़=तूफान। रण-वर्षा=रण रूपी वर्षा-ऋतु। शंका! क्रूर=क्रूर। धारण करने=आकर। गहरा=अमघार। मन प्राण=मनुष्यों के प्राण।

भावार्थ—जनता के समूह का क्रोध बढ़ता जा रहा था। उसके समान ही तूफान भी प्रतिक्षण तेज होता जा रहा था। रण रूपी वर्षा में जनता शस्त्र रूपी बिजली चमका रही थी।

उधर तूफान था, इधर जनता का क्रोध, उधर वर्षा हो रही थी इधर युद्ध हो रहा था, उधर बिजली चमक रही थी इधर जनता के शस्त्र चमक रहे थे। इस प्रकार यहाँ प्रस्तुत अप्रस्तुत का सामंजस्य है। रूपक के अतिरिक्त उपमा अलंकार भी है।

किन्तु कठोर मनु जनता द्वारा चलाए गए शस्त्रों को रोक रहे थे। वे स्वयं अपने खड्ग से मनुष्यों को मारते हुए आगे बढ़े।

तांडव   *निर्मम में।*

शब्दार्थ—तांडव=शिव का एक विशेष नृत्य जिसे वे प्रलय के समय करते हैं—भयङ्कर तूफान और युद्ध। तीव्र प्रगति=भयङ्कर तेजी। नियति=भाग्य। विकर्षणमयी=आकर्षण से रहित, शत्रुतापूर्ण, क्रुद्ध। त्रास=भय। अलातचक्र=घूमती हुई, मशाल। अलात=जलती हुई लकड़ी। घन तम=घना अन्धकार। रुधिर उन्माद=खूनी पागलपन। कर=हाथ। निर्मम=निर्दय। यह—*निर्मम में=मनु के निर्दय हाथ में खूनी पागलपन नाच रहा था अर्थात मनु का* हाथ बड़ी तेजी से मनुष्यों को मार रहा था।

भावार्थ—वे भयङ्कर तूफान और युद्ध भयङ्कर वेग से तेज होते जा रहे थे। सारे परमाणु व्याकुल थे, सारी प्रकृति दुखी थी। आज भाग्य भी क्रुद्ध था। सारे प्राणी भय से दुखी हो रहे थे।

उस घने अन्धकार में मनु घूमती हुई मशाल के समान घूम रहे थे। जिस प्रकार मशाल अन्धकार को नष्ट करती है, उसी प्रकार मनु जनता का संहार कर रहे थे। उनके निर्दय हाथ पागलों के समान संहार करने में लीन था।

उठा   धनु न।

शब्दार्थ—तुमुल रणनाद=ऊँची युद्ध ध्वनि। विप्लव समूह=शत्रुओं के दल। पदमर्दित व्यवस्था=कानून को पाँव के नीचे कुचल दिया गया था, सर्वत्र अव्यवस्था थी। आहत=चोट खाकर। स्तम्भ=खम्भा। दुर्लक्ष्यी=भयङ्कर निशाना लगाने वाला।

भावार्थ—भयङ्कर युद्धध्वनि होने लगी। उस समय वहाँ की अवस्था बड़ी भयङ्कर थी। शत्रुओं का दल बढ़ता आ रहा था। व्यवस्था और शासन पाँव के नीचे कुचला जा रहा था और मूक था। सर्वत्र अव्यवस्था थी।

मनु को चोट लगी। चोट खाकर वे पीछे हटे। मनु ने खम्भे के सहारे टिककर साँस ली। फिर उन्होंने भयङ्कर निशाना लगाने वाले धनुष का टङ्कार किया।

मड़ते लना लना।"

शब्दार्थ—विकट=भीषण। विषम=कठिन। वात=पवन। मरण-पर्व = मृत्यु का उत्सव।

भावार्थ—उस समय भयङ्कर उन्चास पवन क्रोधित होकर चल रहे थे। यह मृत्यु का उत्सव था और आकुलि तथा किलात उस उत्सव के नेता थे।

आकुलि और किलात ने चिल्लाकर जनता से कहा कि अब मनु को जीवित बचकर मत जाने देना। किन्तु उसी समय मनु यह चिल्लाते हुए उनके समीप पहुँचे ' लेना, लेना।"

"कायर आकुलि।

शब्दार्थ—उत्पात मचाया=मुसीबत गिराई।

भावार्थ—मनु ने किलात और आकुलि से यह कहा कि तुम तो कायर हो। मैंने तो तुमको अपना सम्बन्धी समझकर अपनाया था किन्तु तुम दोनों ही मेरे लिए मुसीबत के कारण बने, तुम्हीं ने मुझे सब प्रथम हिंसापूर्ण यज्ञ में प्रवृत्त किया था।

आज जरा तुम भी देख लो कि बलि कैसे होती है। अरे किलात और आकुलि! अरे यज्ञ के पुरोहितों! यह यज्ञ नहीं है, यह तो युद्ध भूमि है युद्ध भूमि।

और आता हूँ।

शब्दार्थ—धराशायी थे = धरती पर गिर पड़े थे। भीषण = भयङ्कर। जन संहार=मनुष्यों का नाश।

भावार्थ—मनु ने बाण चलाए और उसी क्षण आकुलि और किलात

धरती पर गिर पड़े। इधर इड़ा अभी तक भी कह रही थी कि बस अब युद्ध रोक दो।

इड़ा ने मनु से कहा कि यह तो प्रकृति के तूफान के कारण ही जनता का नाश हो रहा है। तू क्यों पागलों के समान अपने जीवन को इस युद्ध में समाप्त कर देना चाहता है!

क्यों ... निराशा।

शब्दार्थ—आतङ्क=डर। धधकती वेदी ज्वाला=रणवेदी की ज्वाला तेजी से जल रही थी, युद्ध तभी से हो रहा था। सामूहिक बलि=एक साथ असंख्य व्यक्तियों की बलि। नया पन्थ=नया मार्ग।

भावार्थ—हे गर्वीले मनुष्य! तूने क्यों इतना त्रास फैला दिया है। तू सब को जीने दे और स्वयं भी सुखपूर्वक जीवित रहले।

किन्तु वहाँ युद्ध की ज्वाला भड़क रही थी। उस नाश के वातावरण में भला इड़ा की आवाज कौन सुनता। वहाँ तो अनेक मनुष्यों की एक साथ बलि देने का एक नया मार्ग निकाला गया था।

रक्तोन्मद ... पानी।

शब्दार्थ—रक्तोन्मद=खून बहाने में अनुरक्त। धर्षिता=कुचली हुई। प्रतिशोध अधीर=बदला लेने के लिए व्याकुल।

भावार्थ—जनता का संहार करने में अनुरक्त मनु का हाथ रुकता ही नहीं था। और उधर प्रजा का साहस भी कम नहीं होता था। प्रजा भी पूरे वेग से युद्ध कर रही थी।

पिसी हुई इड़ा रानी भी वहीं खड़ी थी। बदला लेने के लिए व्याकुल रक्त पानी के समान बह रहा था। प्रजा और मनु दोनों एक दूसरे से बदला लेना चाहते थे और युद्ध में तल्लीन थे। इस कारण रक्त पानी के समान बह रहा था।

धूमकेतु ... भर उठीं।

शब्दार्थ—धूमकेतु = पुच्छल सितारा। रुद्र = शिव का एक नाम, उग्र। नाराच=तीर।

भावार्थ—उसी समय पुच्छल सितारे के समान भयङ्कर एक उग्र बाण

चला। उसकी पूँछ में बड़ी भीषण आग बल रही थी।

उस समय विराट शक्ति आकाश में गरज उठी। और इधर सारी जनता के शस्त्रों की धारें अत्यन्त तेज सी हो उठीं।

और पर।

शब्दार्थ—मुमूर्षु=मरने वाला व्यक्ति।

भावार्थ—और वे तेज धारें एक साथ ही मनु पर गिरीं। मनु उसी क्षण मरणासन्न होकर गिर पड़े। उस धरती पर रक्त की नदी की बाढ़ सी आगई थी, चारों ओर खून ही खून दिखाई दे रहा था।

———

निर्वेद

जब मनु आहत होकर गिर पड़े तो युद्ध बन्द हो गया। इसके पश्चात सारा नगर दुख-ग्रस्त सा दिखाई देता था। उस दृश्य को देखकर सहसा मुख से यह निकल जाता था कि यह संसार बड़ा दारुण है।

रात का समय था। सरस्वती धीरे धीरे बह रही थी। घायल मनुष्य रह रहकर सिसक उठते थे। घरों में जो दीपक जल रहे थे उनका प्रकाश भी मलिन हो रहा था। वायु भी खेद भरी प्रतीत होती थी, मण्डप सूना था। केवल इड़ा उसकी सीढ़ी पर बैठी थी। मनु का घायल शरीर सूने राज महल में वहीं पड़ा हुआ था। यह महल समाधि के समान दिखाई दे रहा था।

उस समय इड़ा के हृदय में भीषण अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। मनु ने उसके साथ अत्याचार किया था इसलिए वह उनसे घृणा करती थी। किन्तु मनु की सहायता से ही वह अपने उजड़े नगर को बसा पाई थी और वे दोनों कितने समय तक साथ रहे थे इसलिए उसके हृदय में मनु के लिए प्रेम भी था। कभी तो वह सोचती कि मुझे मनु को क्षमा कर देना चाहिए और कभी उसके मन में बदला लेने की भावना उत्पन्न होती थी।

इड़ा सोच रही थी कि "मनु ने मेरे साथ स्नेह किया था। यह तो ठीक है कि उसका स्नेह अनन्य नहीं रहा किन्तु अनन्यता सभी को तो प्राप्त नहीं होती। जब उसके स्नेह ने सारी बाधाओं की सीमा को तोड़ दिया तो वह अपराध बन गया। हाँ उसने अपराध सा किया, किन्तु उसके एक अपराध का ही कितना भयङ्कर परिणाम हुआ। क्या मनु ने जो मेरा और प्रजा का उपकार किया था क्या उसका कोई महत्व ही नहीं है? क्या वह सब धोखा था?

"एक समय था जब यहाँ पर एक दुखी परदेशी आया था। वह निरसहाय था, उसके चारों ओर शून्य था। वही यहाँ के शासन का सूत्रधार बना किन्तु अपने निर्मित दण्ड विधान ने ही उसे दण्ड दिया। उसमें कितनी शक्ति

थी। वह पर्वतों का भी उल्लंघन कर जाता था, कोई बाधा उसकी असीम शक्ति के सामने देर तक नहीं रह सकती थी। किन्तु वह शक्ति सब स्वप्न हो गई। आज वह मरणासन्न होकर यहीं धरती पर पड़ा हुआ है। जिसे पहले सब लोगों ने प्रेम किया आज वही अकेला पड़ा हुआ है।

"मनु ने मेरा उपकार किया था। किन्तु फिर स्वयं उसी ने मेरे साथ अत्याचार भी किया। जिसने सब का हित किया था उसी ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। संसार में तो अच्छा और बुरा, पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं। मनुष्य को दोनों को स्वीकार कर लेना चाहिए। चाहे अपना दुख हो चाहे किसी और का जब यह बढ़ जाता है तो वही दुख बन जाता है। मनुष्य भविष्य की चिन्ताओं में इतना लीन रहता है कि वह आज के सुख की ओर चिन्ता ही नहीं करता। वह स्वयं ही अपने मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करता है।

इड़ा अन्त में स्वयं अपने व्यवहार के विषय में विचार करती है—मैं तो इतनी रातों से यहाँ बैठी हूँ, इसका क्या कारण है? क्या मैं इससे बदला लेने के लिए बैठी हूँ या इसकी रखवाली करती हूँ? अब भी मेरे मन में यह मधुर कल्पना उठ रही है कि इससे अभी कोई शुभ कार्य होगा।"

इड़ा यह सोच ही रही थी कि दूर से आती हुई एक आवाज़ का गुंजार व्याप्त उठी। उस नीरव रात्रि में कोई यह कहती हुई चली आ रही थी कि "कोई कृपा करके मुझे यह बता दे कि मेरा प्रवासी कहाँ है? उसी के लिए मैं व्याकुल होकर घूम रही हूँ। मैं उसे पूरी तरह से नहीं अपना पाई थी, इसीलिए तो वह मुझसे रूठ गया था। मैं उसे मना भी न पाई थी। कोई मुझे बताए कि मैं अपने प्रियतम को कैसे प्राप्त कर पाऊँगी?"

इड़ा ने उठकर राजपथ की ओर देखा। उसे एक धुँधली छाया आती हुई दिखाई दी। उसने देखा कि एक स्त्री आ रही है जिसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं और वह अत्यन्त थकी है। उसके साथ ही एक किशोर बालक चला आ रहा है। दोनों ही पथिक व्याकुल थे। ये श्रद्धा और उसका पुत्र थे जो मनु को खोज रहे थे। जब इड़ा ने उन्हें देखा तो वह भी दुखी हो उठी। उसने श्रद्धा से पूछा कि तुम्हें किसने भुला दिया है। तुम कहाँ भटकती आ रही हो।

आज मैं भी बहुत व्याकुल हूँ। तुम जरा अपना दुख सुनाओ तो सही। इस जीवन की लम्बी यात्रा में खोए हुए भी मिल ही जाते हैं।" यह सुनकर श्रद्धा रुक गई क्योंकि कुमार भी बहुत थक गया था।

श्रद्धा इड़ा के साथ-साथ उधर चली जिधर आग की ज्वाला जल रही थी। सहसा ज्वाला तीव्र हुई और श्रद्धा ने उसके प्रकाश में मनु को देखा। वह शीघ्रता से वहाँ पहुँची जहाँ मनु घायल पड़े हुए थे। उसके मुख से यह निकल गया 'क्या मेरा स्वप्न सच्चा निकला!" श्रद्धा मनु के पास बैठी और रोती हुई बोली कि "हे प्राणप्रिय यह क्या है? तुम क्यों ऐसे पड़े हो!' इड़ा चकित होकर श्रद्धा की ओर देखने लगी। श्रद्धा के स्पर्श में कुछ ऐसा जादू था कि मनु की मूर्छा दूर हुई। उन्होंने आँखें खोलीं। उनके नयनों में भी आँसू छलक आए। उधर कुमार ऊँचे मण्डप, वेदी और महल को देख देख कर यह सोच रहा था कि ये सब क्या है? इतने में श्रद्धा ने उसे पुकारा कि आकर अपने पिता से मिल लो। यह सुनते ही कुमार वहाँ आ पहुँचा। धीरे धीरे अँधेरा दूर हो गया था। मनु के नयन खुल गए। उन्हें फिर से श्रद्धा का सहारा मिल गया, उनका हृदय गद्‌गद् हो गया।

मनु अत्यन्त प्रेम से भर कर श्रद्धा से बोले कि "तू यहाँ कैसे आ गई! क्या मैं यहीं पड़ा था? और चारों ओर देख कर उनका हृदय घृणा से भर उठा। उन्होंने क्षोभ से अपनी आँखें बन्द कर लीं और श्रद्धा से बोले कि मुझे यहाँ से दूर ले चल। कहीं मैं तुझे फिर न खो दूँ? श्रद्धा ने मनु को थोड़ा जल पिलाया। मनु ने फिर यही कहा कि मुझे यहाँ से दूर ले चल। जो भी विपत्ति आएगी सब सह लेंगे। तब श्रद्धा ने कहा कि अभी कुछ दिन यहाँ रुक जाओ ताकि तुममें कुछ शक्ति आए। क्या इड़ा हमें कुछ दिन और न रहने देगी? इड़ा एक ओर चुपचाप खड़ी थी और ये बातें सुन रही थी।

श्रद्धा तो चुप हो गई, किन्तु मनु शान्त न रह सके। वे अपने अतीत जीवन का स्मरण करते हुए बोले "जब प्रलय नहीं हुई थी तब मेरा हृदय उल्लास से भरा था और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द था। किन्तु एक दिन प्रलयंकर दृश्य उपस्थित हुआ। मेरा सब कुछ नष्ट हो गया। किसी प्रकार जीवित रहकर मैं एकान्त में अपना दुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा। उसी

समय तुम मेरे जीवन में मुस्कराई थीं। और तुम्हारे सौंदर्य तथा प्रेम ने मेरे जीवन को फिर से आनन्द विभोर कर दिया। तुमने मेरे हृदय रूपी कमल को सुगन्धित कर दिया। तुमने ही मुझे जीवन का वास्तविक अर्थ समझाया। पहले मैं जिस विश्व को नश्वर और करुण समझा था, वही तुम्हारे सान्निध्य से सुन्दर दिखाई देने लगा। तुमने ही मुझे यह शिक्षा दी थी कि मुझे सबसे मिलकर चलना चाहिए। तुमने मेरे जीवन की अतृप्ति दूर कर दी। किन्तु मैं ऐसा नीच था कि तुम्हारे महत्त्व को समझ ही नहीं पाया था और आज भी मैं अपने सुख दुख के जाल में पड़ा हूँ।

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा सारा जीवन ही क्रोध और मोह से निर्मित है। मेरा जीवन शाप-दग्ध है, सारहीन है। मैं अपने लक्ष्य को पाकर भी नहीं पा पाया। प्रकृति के जाल में बँधा हुआ मैं खिचता चला जा रहा हूँ। मैं सब पर ही नहीं अपने पर भी क्रोध करता हूँ। तुमने मुझे जो कुछ देना चाहा वह मैं प्राप्त नहीं कर सका क्योंकि मुझ में उसे प्राप्त करने की शक्ति ही नहीं थी। और यह कुमार तो मेरे जीवन का उज्ज्वल अंश था किन्तु मैंने उसकी भी उपेक्षा की। बस अब बहुत हो चुका। मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम सब सुखी रहो और मुझ अपराधी को भूल जाओ। श्रद्धा पुनः मनु के आवेश पूर्ण वचनों को सुन रही थी।

दिन व्यतीत हो गया और रात आ गई। इड़ा कुमार के समीप ही जा रही थी श्रद्धा भी थक कर अपने हाथ का तकिया बनाए चुपचाप लेटी थी। मनु भी लेटे हुए थे किन्तु सोच रहे थे क्या इस जीवन में सुख है? नहीं-नहीं सारा जीवन दुखमय है। हे मनु! तू इस जंजाल को छोड़कर भाग जा। अब मैं श्रद्धा को अपना यह मुख कैसे दिखाऊँगा? और क्या मैं अपने इन उन शत्रुओं का विश्वास करूँ, इन से बदला न लूँ! श्रद्धा के रहते हुए मैं इनसे बदला नहीं ले पाऊँगा। अब तो वहीं मुझे शान्ति मिलेगी, वहीं जाऊँगा।

सब प्रातःकाल सब उठे तो उन्होंने देखा कि मनु वहाँ नहीं हैं। कुमार अशान्त होकर पिता को खोज रहा था। इड़ा आज अपने आप को सबका अपराधी समझ रही थी। कामायनी पुनः भग्न कुछ सोच रही थी।

वह मचल रहे !

शब्दार्थ—व्यग्र = व्यग्र । मलिन = दुखी । विगत कर्म = बीता हुआ कर्म, युद्ध । विष विषाद आवरण=जहरीला दुख का पर्दा । उल्का धारी प्रहरी से = मशाल वाले पहरेदारों के समान—उपमा अलङ्कार । वसुधा=धरती ।

भावार्थ—अब कवि सारस्वत की दशा का वर्णन करता है । वह नगर व्यग्र था, दुखी था और सर्वत्र शान्ति थी । नगर की व्यग्रता और दुःख से नगर में शेष बचे व्यक्तियों की व्यग्रता और दुःख का वर्णन है । बीते हुए भयङ्कर युद्ध का जहरीला दर्द भरा पर्दा उस नगर पर पड़ा था । उस युद्ध का ही यह प्रभाव था कि जनता दुखी और व्याकुल थी ।

मशाल वाले पहरेदारों के समान ही आकाश में तारे और नक्षत्र घूम रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था माना वे तारे यह देख रहे हैं कि धरती पर क्या हो रहा है, यहाँ के अणु अणु क्यों व्याकुल हैं !

जीवन सन्नाटे !

शब्दार्थ—सुषुप्ति=निद्रा, नाश । भव-रजनी=संसार रूपी रात्रि । भीमा= भयंकर । निशिचारी=रात में घूमने वाले । भीषण = भयंकर । पग भर रहे सर्राटे=रात के समय विचार धारा तीव्रता से गतिमान थी । खींच रही-सी सन्नाटे = मूकता फैला रही थी ।

भावार्थ—सारस्वत नगर की दशा देखकर यह विचार मन में आता था कि क्या जीवन में जागरण सत्य है या निद्रा ही एक मात्र सत्य है । जागरण निर्माण का प्रतीक है और निद्रा नाश का प्रतीक है । इसलिए अभिप्राय यह है कि जीवन में निर्माण सत्य है या नाश । उस वातावरण में से बार बार यह पुकार सी आ रही थी कि संसार रूपी रात्रि भयङ्कर है । रात में ही व्यक्ति सोता है । इसलिए इस आवाज से यह भी प्रकट होता है कि संसार में निद्रा या नाश ही सत्य है ।

होता था। किन्तु उसमें मनु के लिए घृणा की लपटें भी जाग उठतीं। घाड़वा नल की लपटों से सागर का रंग सोने जैसा हो जाता था। इड़ा के पक्ष में रक्त का अर्थ मोह से होगा। जब इड़ा के हृदय में मनु के लिए प्रेम और घृणा एक साथ उत्पन्न होते थे तब वह मोह में पड़ जाती थी, वह निश्चय करने में असमर्थ हो जाती थी कि उसे क्या करना चाहिए।

प्रेम और घृणा के उस उद्रेक में भी इड़ा के हृदय में मनु के प्रति क्षमा की भावना उत्पन्न हो जाती थी। क्षमा का विचार उसके हृदय को शीतल कर देता था। फिर उसके मन में मनु से बदला लेने की इच्छा होती और उसका हृदय क्षमा और प्रतिक्रिया के संघर्ष में उलझ जाता था।

"उसने पसे।

शब्दार्थ – अनन्य=आत्मीय। सहज लभ्य=आसानी से प्राप्त। अति *क्रमण कर=उल्लंघन कर। अबाध=स्वच्छंद। सीमा=मर्यादा।*

भावार्थ—इड़ा सोच रही है कि मनु ने मुझसे प्रेम किया था। यह भी ठीक है कि वह आत्मीय नहीं बन पाया किन्तु क्या सभी अनन्य हो सकते हैं। क्या अनन्यता कोई ऐसी चीज है जो जहाँ कहीं भी पड़ी रह सके।

प्रेम पाप नहीं है। किन्तु जो प्रेम सभी नियमों का उल्लंघन करके स्वच्छन्द हो जाता है, जो मर्यादा को तोड़ देता है, वही अपराध बन जाता है। मनु ने मुझ से प्रेम किया था किन्तु उसने मर्यादा का उल्लंघन किया। इसी लिए उसका प्रेम अपराध बन गया।

हाँ छाया।

शब्दार्थ—भीम=भीषण। मधुर=प्रसंग। सहृदयता=...।

भावार्थ—यह तो ठीक है कि मनु ने अपराध किया। किन्तु यह एक अपराध भी इतना भीषण हो गया कि जीवन के एक भाग से बढ़ कर उसने इतना नाश कर दिया। यह अपराध मनु ने गर्व साथ किया था किन्तु

उसके कारण मनु और जनता में युद्ध हुआ और उसका फल इतना व्यापक हुआ।

किन्तु इस अपराध के अतिरिक्त मनु ने मेरे साथ और जनता के साथ अवश्य उपकार भी किए थे। उसने हम सब के साथ प्रेम का बर्ताव भी किया था। क्या वह सब भ्रम था? क्या उसके मूल में धोखेबाजी थी?

"कितना ... बना।

शब्दार्थ—धरा=धरती, सहारा। शून्य चतुर्दिक् छाया था=उसके चारों ओर सूनापन था, उसके चारों ओर निराशा ही निराशा थी। सूत्रधार=नियामक। नियमन = शासन। निर्मित=बनाए हुए। नव विधान=नया कानून।

भावार्थ—उस दिन एक परदेसी कितना दुखी होकर यहाँ आया था। उसके पास कहीं भी ठहरने का स्थान नहीं था, उसका कोई सहारा न था। उसके चारों ओर निराशा और सूनापन था।

वही परदेसी सारस्वत नगर के शासन का नियामक बना। उसने ही यहाँ कि बिखरी शक्ति को संगठित कर यहाँ का शासन आरंभ किया। और अन्त में उसने जो नए कानून बनाए थे, स्वयं उन्हीं से दंडित किया गया। वह उन्हीं कानूनों के जाल में फंस गया।

"सागर ... अपना था।

शब्दार्थ—सागर की लहरों से उठकर=अनिश्चित एवं चंचल अवस्था से उठकर। शैल शृंग=पर्वत की चोटी, उन्नत अवस्था। अप्रतिहत गति= जिसके प्रयास को कोई रोक नहीं सकता था। संस्थान=निवास के स्थान, लक्ष्य। मुमूर्षु=मरणासन्न। खपना था=नष्ट हो गया था।

भावार्थ—पहले मनु की अवस्था सागर की लहरों के समान अनिश्चित और चंचल थी। किन्तु मनु ने अपनी उस अवस्था में संघर्ष किया और व पर्वत की चोटी के समान उच्च एवं दृढ़ अवस्था तक जा पहुँचे। और मनु में

इतनी शक्ति थी कि उन्नति करने में उन्हें कोई विशेष कठिनाई भी नहीं हुई थी। मनु का वेग किसी भी बाधा के सामने कुंठित नहीं होता था। वे सब बाधाओं को पार करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते गए। मनु सदैव निर्बाध स्थानों से आगे रहे, उन्होंने कभी थक कर विश्राम नहीं किया।

आज वही व्यक्ति मरणासन्न होकर पड़ा है। उसकी बीती हुई शक्ति और साहस की कहानी सब मिथ्या प्रतीत होती है। पहले जो सब व्यक्तियों का अपना सम्बन्धी था, आज वही सब का पराया हो गया, आज कोई भी व्यक्ति उसका अपना नहीं रहा।

"किन्तु करें।

शब्दार्थ—गुणकारी=हितकारी। सग अंकुर=संसार रूपी अंकुर—रूपक अलङ्कार। पल्लव=पत्ते। युगल=दोनों।

भावार्थ—मनु ने मेरे साथ बहुत बड़ा उपकार किया था। किंतु आगे चलकर वही मेरा अपराधी बना, उसने मेरे साथ अपराध किया। जो व्यक्ति सब का हितकारी था उसी से यह दोष हुआ था।

यह सोचते सोचते इड़ा सोचती है कि संसार रूपी अंकुर के अच्छे और बुरे दो पत्ते हैं यहाँ पाप भी है और पुण्य भी। और दोनों एक दूसरे की सीमा निर्धारित करते हैं। यदि पाप न होता तो पुण्य का निर्णय असंभव होता और यदि पुण्य न होता तो पाप की पहचान कैसे होती। तो हम क्यों न दोनों का स्वीकार करें। क्यों पाप से घृणा करें और पुण्य से प्रेम करें।

"अपना रोड़े।

शब्दार्थ—रोड़े=बाधाएँ।

भावार्थ—चाहे व्यक्ति का अपना सुख हो और चाहे किसी दूसरे का किन्तु जब वह सीमा से बढ़ जाता है तो वही दुख बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मनुष्य यह नहीं जानता कि उसे किस सीमा तक सुख प्राप्त करना चाहिए। और इस अज्ञान के कारण ही जब सुख सीमा से बढ़ जाता

है वह दुख बन जाता है।

मनुष्य अपने भविष्य की सुख चिन्ता में इतना लीन है कि वह वर्तमान के सुख का त्याग देता है। और इतना ही नहीं वह स्वयं अपने मार्ग में बाधाएँ खड़ी करता हुआ सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है।

"इसे ... देगा।"

शब्दार्थ—विकट = कठिन।

भावार्थ—इड़ा स्वयं अपने विषय में सोचती है—'मैं जो इतने दिनों से यहाँ बैठी हूँ, इसका क्या उद्देश्य क्या है ? क्या मैं इसे दण्ड देने के लिए बैठी हूँ या इसकी रखवाली के लिए ? यह तो बड़ी कठिन समस्या है, इसका उत्तर देना बड़ा कठिन है। मैं कितनी उलझन वाली हूँ जो स्वयं अपने कामों के विषय में भी कुछ निश्चित नहीं कर सकती।

अब मेरे मन में एक मधुर कल्पना उठ रही है। वह यह कि मनु से भविष्य में चलकर कुछ शुभ काम होंगे। और निश्चित रूप से मेरी यह कल्पना वास्तविकता से अच्छी है। और मेरा विश्वास है कि मनु को सत्य का वरदान प्राप्त होगा।

चौंक ... फेरा।

शब्दार्थ—दुरागत=दूर से आती हुई। निस्तब्ध निशा=मूक रात्रि। प्रवासी = जो विदेश चला गया है। डाल रही हूँ मैं फेर = मैं चक्कर काट रही हूँ।

भावार्थ—दूर से आती हुई एक आवाज को सुनकर इड़ा अपने विचारों से चौंक उठी। उसने सुना कि मूक रात्रि में कोई यह कहती हुई चली आ रही है—

अरे मुझ पर दया करके कोई तो मुझे यह पता दो कि मेरा प्रवासी कहाँ है ? उसी बावले से मिलने के लिए मैं इधर उधर चक्कर काट रही हूँ।

रूठ हे रे।

शब्दार्थ—अपने पन से=आत्मीयता से, प्रेम में। शूल-सदृश=काँटे के समान। साल रही=वेध रही।

भावार्थ—वह प्रेम में ही मुझ से रूठ गया था। मैं उसको फिर मना न सकी और वह मुझे छोड़कर चला आया। वह तो मेरा अपना ही था फिर मैं उसे मनाने का प्रश्न ही नहीं था।

किन्तु अब मैं समझती हूँ कि मुझ से भूल हो गई थी। और वह भूल आज तक मेरे हृदय को वेध रही थी। कोई तो मुझे आके यह बता दे कि मैं उसे कैसे पा सकती हूँ!

इड़ा कली।

शब्दार्थ—करुण वेदना=तीव्र पीड़ा। शिथिल=थका हुआ। वसन विशृंखल=वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। कबरी=चोटी। छिन्न पत्र=जिसके पत्ते गिर गए हों। मकरन्द लुटी सी=पुष्प रस हीन के समान—उपमा अलङ्कार।

भावार्थ—इड़ा ने जब यह आवाज सुनी तो वह उठी और उसने देखा कि राज पथ पर कोई धुँधली सी छाया चली आ रही है। उसकी वाणी में तीव्र पीड़ा है। उसकी पुकार तुम्ल में चलती सी प्रतीत होती है।

उसका शरीर थका हुआ है। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। उसकी चोटी अधिक खुल गई है जिससे उसकी अधीरता की सूचना मिलती है। वह ऐसी टूटे हुए पत्तों वाली तथा पुष्प रस हीन मुरझाई हुई कली के समान थी। उसके अङ्ग शिथिल थे, उसका सौंदर्य मलिन हो गया था और उसका यौवन मुरझा गया था।

नव करें।

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा। नव किशोर=किशोर अवस्था वाला।

बटोही=पथिक ।

भावार्थ— उसके साथ में किशोर अवस्था वाला एक मधुर सहारा भी था । उसका पुत्र चुपचाप और धैर्य की प्रतिमा के समान था । वह अपनी माता की उ गली पकड़े हुए उसके साथ-साथ आ रहा था ।

वे पथिक—दोनों माँ बेटे थके हुए थे । व सोए हुए मनु को खोज रहे थे । और मनु इधर घायल होकर लटे हुए थे ।

इड़ा खोलो सो ।

शब्दार्थ—द्रवित=दयार्द्र । व्यथा-गाँठ निज खोलो सो=अपने दुख का मुझे बताओ ।

भावार्थ—अब इड़ा ने दुखियों का दुख देखा था और उसे देखकर वह दया से द्रवित होगई । वह उनके पास पहुँची और फिर उसने पूछा कि तुम्हें किसने भुला दिया है ?

यह तो बताओ कि इस रात में कहाँ भटकती हुई आओगी । आज मैं भी बहुत व्याकुल हूँ । तुम यहीं बैठो और अपने दुख की कहानी सुनाओ ।

जीवन रही ।

शब्दार्थ—श्रान्त=थका हुआ । वह्नि शिखा=आग की ज्वाला ।

भावार्थ— जीवन के लम्बे सफर में खोए हुए व्यक्ति भी मिल जाते हैं । यदि जीवन बना हुआ है तो कभी न कभी मिलन भी हो ही जाएगा और दुःख की रातें व्यतीत हो जाएँगी ।

कुमार थका हुआ था । श्रद्धा ने सोचा कि यहाँ आराम मिलता है तो क्यों न रुक जाएँ । इसलिए वह रुक गई । पर इड़ा के साथ उधर जाने लगी जहाँ अग्नि की ज्वाला जल रही थी ।

सहसा   बहा !

शब्दार्थ—भभकी=भड़की । आलोकित=प्रकाशित । घुला हृदय=उसका हृदय द्रवित होगया ।

भावार्थ—अचानक ही वेदी की ज्वाला भड़क उठी । इसने मण्डप को प्रकाशित कर दिया । कामायनी ने इस प्रकाश में कुछ देखा और वह तेजी से उस ओर बढ़ी ।

और उसने देखा कि उसके मनु घायल पड़े हैं । श्रद्धा ने सोचा कि क्या मेरा सपना सच्चा हुआ । और वह फिर दुख से बोली कि हे प्राणप्रिय तुम्हें यह क्या हुआ है ! तुम इस प्रकार क्यों पड़े हो ! और फिर श्रद्धा का हृदय द्रवित होगया और आँसू बनकर आँखों से बहने लगा ।

इड़ा   छाये ।

शब्दार्थ—अनुलेपन = घाव पर लगाने का लेप । व्यथा=पीड़ा । नीरवता = मूकता । स्पन्दन=कम्पन । चार बिन्दु=चार आँसू की बूंदें ।

भावार्थ—इड़ा श्रद्धा के शब्द सुनकर चकित होगई । श्रद्धा मनु के पास बैठ गई और वह धीरे-धीरे मनु को सहलाने लगी । श्रद्धा का मधुर स्पर्श अनुलेपन के समान था । फिर भला मनु की पीड़ा कैसे रह जाती !

मनु पहले मूर्छित होकर चुपचाप पड़े थे । किन्तु श्रद्धा के स्पर्श से उनके शरीर में हल्का सा कम्पन हुआ । और फिर मनु ने आँखें खोल दीं और श्रद्धा की ओर देखा । मनु और श्रद्धा दोनों की आँखें आँसुओं से भर गई ।

उधर   हुए ।

भावार्थ—कुमार ने जीवन में पहली बार महल आदि देखे थे । इसलिए वह बड़े आश्चर्य के साथ ऊँचे महल, मण्डप और वेदी को देख रहा था । वह सोच रहा था कि यह सब नई नई आकर्षक वस्तुएँ क्या हैं ! ये मन को कैसे लगते हैं !

तब भद्दा ने कुमार से कहा कि 'अरे कुमार तू भी इधर आकर अपने पिता को देख ले। तेरे पिता यहाँ पड़े हुए हैं। कुमार ने रोमांचित होकर उत्तर दिया 'अरे पिता यहाँ हैं! लो मैं आ गया।"

"माँ   बना।

शब्दार्थ--आत्मीयता=अपनापन।

भावार्थ—कुमार ने भद्दा से कहा हे माँ पिताजी को कुछ जल दो, ये प्यासे होंगे। तू यहां बैठी-बैठी क्या कर रही है?" कुमार की ध्वनि से यह मण्डप गूँज उठा। उससे पहले यहाँ ऐसी सजीवता कहाँ थी।

उस घर में अपनापन और प्रेम बिखर गया। यहाँ एक छोटा सा मधुर परिवार बन गया। भद्दा का सङ्गीत उस पर एक मधुर स्वर के समान छा गया। भद्दा गीत गाने लगी।

तुमुल   बात रे मन!

शब्दार्थ—तुमुल कोलाहल=घोर गर्जन, बहुत शोर। कलह=झगड़ा, युद्ध। हृदय की बात=विश्वास और प्रेम की बात। विकल=व्याकुल। मलय की बात=मलय पर्वत से चलने वाली शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु जो मनुष्य को शीघ्र ही सुला देती है।

भावार्थ—जब युद्ध की भीषण हलचल हो तो मैं उसमें प्रेम की बात के समान शान्ति स्थापित करती हूं।

जब मनुष्य की चेतना थक जाती है और रात के समय व्याकुल होकर सोने का प्रयत्न करती है, तब मैं शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु के समान उसे निद्रा का सुख प्रदान करती हूं।

चिर   बरसात रे मन!

शब्दार्थ—चिर-विषाद विलीन=स्थायी दुःख में डूबा हुआ। तिमिर वन=

अन्धकार का वन । ज्योति रेखा=प्रकाश की किरण । कुसुम विकसित प्रात= फूलों से युक्त प्रात काल ।

मरुज्वाला=रेगिस्तान की गर्मी । धधकती=भड़कती । कन=जल की बूंद । जीवन घाटियाँ=जीवन की गहराइयाँ ।

भावार्थ—मैं स्थायी दुख में लीन मन के लिए उषा की सुनहली और आह्लादमयी किरण के समान हूँ । जिस प्रकार उषा की पहली किरण तम का विखेर देती है उसी प्रकार मैं दुखी मनुष्यों के दुख को हर लेती हूं । मैं पीड़ा के अंधकारमय वन के लिए मधुर फूलों से युक्त प्रात:काल हूं । जिस प्रकार प्रातः काल होते ही जंगल में फूल खिल उठते हैं और अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी दुखी व्यक्तियों की निराशा को दूर करके उनके जीवन में खुशी के फूल खिला देती हूं ।

जिन जीवन की घाटियों में रेगिस्तान की अग्नि जैसी अतृप्ति और असंतोष है, जहाँ इच्छा रूपी चातकी जल की एक-एक बूंद के लिए तरसती है, मैं उनके लिए मधुर बरसात के समान हूँ । बरसात से रेगिस्तान की गर्मी भी दूर हो जाती है और चातकी भी तृप्त हो जाती है । उसी प्रकार मैं असन्तोष को दूर करके इच्छाओं को तृप्त करती हूँ ।

पवन जलजात रे मन !

शब्दार्थ—पवन की प्राचीर=वायु की दीवार, संसार के बन्धन । कुसुम ऋतु=बसन्त ऋतु ।

चिर निराशा नीरधर=स्थायी निराशा रूपी बादल । प्रतिच्छायित= ढका हुआ । अश्रु-सर आँसुओं का तालाब । मधुप मुखर=भौंरों की गुंजार से युक्त । मरंद पुलकित=पुष्प रस से सिक्त । जलजात = कमल ।

भावार्थ—यह संसार गर्मी में झुलसते हुए दिन के समान है । गर्मी के दिन में सारे प्राणी लू से झुलस जाते हैं, आकुल हो उठते हैं । उसी प्रकार इस संसार में भी सभी व्यक्ति परिस्थितियों और सांसारिक बन्धनों के निर्मम में दबे हुए से जी रहे हैं जिस प्रकार बसन्त की रात गर्मी से झुलसे हुए व्यक्तियों को शीतल कर देती है, उसी प्रकार मैं भी संसार के तापों से दग्ध जीवन को मधुर शीतलता प्रदान करती हूं ।

स्वामी निराशा रूपी बादलों से आच्छादित आँसू के तालाब में एक ऐसे सरस कमल के समान हूँ जिस पर भँवरे गुंजार कर रहे हैं और जो पुष्प रस से सिक्त है। जिस प्रकार कमल तालाब की शोभा बढ़ाता है उसी प्रकार मैं दुखी व्यक्तियों को भी प्रेम और आनन्द से भर देती हूँ।

विशेष—यदि इस गीत की भाषा की तुलना इस सर्ग के पहले छन्दों से की जाए, तो प्रसाद जी के अबाध भाषाधिकार का सहज ही ज्ञान हो जाता है। प्रसाद भी सरल, सीधी भाषा में भी शक्तिशाली कविता कर सकते हैं, और लाक्षणिक भाषा में भी मनोहर गीतों की सृष्टि कर सकते हैं। जो आलोचक प्रसाद जी की भाषा की एक रस दुरूहता की आलोचना करते हैं, उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए।

दूसरी बात जो यहाँ ज्ञात होती है, वह है विषयानुरूप भाषा में परिवर्तन। प्रसाद जी ने सर्वत्र ही विषयानुरूप शब्द योजना की है। सभी महान कवियों की कृतियों में यह गुण मिलता है।

उस भरे।

शब्दार्थ—स्वर-लहरी = सगीत। संजीवन रस=जीवन प्रदान करने वाला रस। प्राची=पूर्व दिशा। मुद्रित=बन्द। अवलम्ब=सहारा। कृतज्ञता = आभार।

भावार्थ—श्रद्धा के उस गीत के स्वर जीवन प्रदान करने वाले रस के समान सर्वत्र व्याप्त हो गए। उधर पूर्व दिशा में प्रातःकाल हुआ और इधर मनु के बन्द नयन खुल गए। यहाँ प्रकृति तथा विषय का सामरस्य है।

मनु को एक बार फिर श्रद्धा का सहारा मिला। श्रद्धा के आभार से भरा हुआ हृदय लेकर मनु बैठ और गद्‌गद् होकर प्रेममय वचन बोले।

"श्रद्धा तुमको।

शब्दार्थ—स्तम्भ=थम्भा। क्षोभ=व्याकुलता। भयावने=भयङ्कर।

भावार्थ— अरे श्रद्धा' तू आ गई। पर यह तो बता कि क्या मैं यहीं पड़ा था। अरे यह तो वही महल है वही खम्भे हैं और वही वेदी है। यहाँ चारों ओर घृणा बिखरी हुई है।

फिर मनु ने व्याकुलता से आँखें बन्द कर लीं और फिर वे श्रद्धा से बोले कि तू मुझे यहाँ से दूर बहुत दूर ले चल। कहीं ऐसा न हो कि इस भयङ्कर अन्धकार में मैं तुझ फिर खो दूँ।

हाय हरे!"

शब्दार्थ—हृदय का कुसुम=मन का फूल। नीरव=चुपचाप। वृथा= व्यर्थ।

भावार्थ—श्रद्धा! तू मेरा हाथ पकड़ ले। यदि मुझे तेरा सहारा मिल जाए तो मैं सहज भाव से चल सकता हूँ। अरे यह कौन है? इड़ा! तू यहाँ से दूर हो जा। श्रद्धा! तू मेरे पास आ जा जिससे मेरा हृदय हर्ष से फूल के के समान खिल उठे।

श्रद्धा चुपचाप बैठी हुई मनु का सिर सहला रही थी। श्रद्धा की आँखों में विश्वास भरा था। वह अपनी आँखों से ही मानो कह रही थी कि तुम तो मेरे हो, अब क्यों व्यर्थ ही डरते हो!"

जल लेंगे!"

भावार्थ—पानी पीकर मनु कुछ स्वस्थ हुए और फिर वह बहुत धीरे धीरे श्रद्धा से कहने लगे—"तू मुझे यहाँ मत रहने दे। मुझे अब इस वातावरण से दूर ले चल।

इस स्वतन्त्र नीले आकाश के नीचे हम कहीं भी किसी गुफा में अपना निवास बना लेंगे। अरे मैंने तो जीवन भर दुख ही झेला है। जो दुख आएगा सब सह लेंगे।"

"ठहरो रुकी।

शब्दार्थ—अविचल=शान्त।

भावार्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया कि "कुछ दिन यहाँ ठहर जाओ। वैसे ही तुममें कुछ बल आएगा मैं तुम्हें साथ ले चलूँगी। क्या इड़ा हमें कुछ देर तक और यहाँ न रहने देंगी?"

इड़ा लज्जित होकर एक किनारे खड़ी थी। वह श्रद्धा से अपना अधिकार न ले सकी, उसे कोई उत्तर न दे सकी। श्रद्धा शान्त थी। किन्तु अब मनु से न रहा गया और वे बोले—

"अब था!

शब्दार्थ—साध=कामना। उच्छृङ्खल=अबाध। अनुरोध=आग्रह। अपने बोध भरा=निजत्व का ज्ञान था, अहम था। मलयानिल=मलय पवन। उल्लासों की माया थी=आनन्द की मोहिनी थी।

भावार्थ—मनु अपने पुराने जीवन का स्मरण करते हुए कहते हैं—

"एक समय था जब मेरे जीवन में कामना भरी थी। हृदय में अबाध आग्रह था। मैं रमणियों से निरन्तर प्रणयानुरोध किया करता था। मेरे हृदय में अनेक इच्छाएँ लहराया करती थीं। और मुझे उस समय अहम् था, मुझे अपने पर अभिमान था।

उस समय मैं होता था और फूलों की वह घनी और सुनहली छाया होती थी। मलयपवन की लहरें चला करती थीं और मेरे जीवन में आनन्द की मोहिनी घिर रही थी।

मनु प्रलय से पूर्व प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में देवांगनाओं के साथ विहार करते थे। इस छन्द में प्रकृति का मनोरम वर्णन है। अगले छन्द में व्यञ्जना द्वारा प्रणय-क्रीड़ाओं का वर्णन है।

ऊषा घुँघराली।

शब्दार्थ—अरुण प्याला=लाल प्याला, लाल सूर्य, मदिरा का प्याला। सुरभित=सुगन्धित। मकरन्द=पुष्प रस। शरद प्रात=शरद ऋतु का प्रभात। शेफाली=हरसिंगार। अलकें घुँघराली=घुँघराले बाल, प्रेमिका के बाल।

भावार्थ—जब मैं प्रातःकाल सुगन्धित छाया के नीचे उठता था तो उषा का लाल सूर्य उदित होता था। व्यंजना के द्वारा यह अर्थ भी निकलता है कि प्रातःकाल होते ही उषा सी रमणीय और कोमल प्रेमिका मुझे मदिरा का प्याला देती थी। मैं आलस्य भरी अपनी आँखें मस्ती में बन्द किए हुए सुख पूर्वक उस मदिरा का पान करता था।

शरद ऋतु में प्रातःकाल हरसिंगार में नया ही पुष्परस व्याप्त हो जाता था। संध्या के सुन्दर और घुँघराले बाल भी मेरे जीवन में नवीन सुख का संचार करते थे।

व्यंजना के द्वारा यह अर्थ निकलता है कि शरद ऋतु में प्रातःकाल मुझे नवीन आनन्द का अनुभव होता था और सन्ध्या के समय प्रेमिका की सुन्दर घुँघराली अलकें मेरा स्पर्श कर मुझे नया ही आनन्द प्रदान करती थीं। भाव यह है कि मैं दिन-रात अपनी प्रेमिका के साथ प्रकृति के मनोरम वातावरण में आनन्द का उपभोग करता था।

इसके पश्चात मनु प्रलय का वर्णन करते हैं।

सहसा अभी।

शब्दार्थ—क्षितिज = आकाश। विक्षुब्ध = अशान्त। उद्वेलित=बेचैन, व्याकुल। मानस लहरी=मानसरोवर की लहरें, हृदय के भाव। छाया पथ सा=आकाश गंगा के समान—उपमा अलंकार—आकाश गंगा में अनन्त नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार मनु के हृदय के सारे भाव मिल पड़े। मङ्गलमयी=कल्याणमयी। स्मिति=हँसी।

भावार्थ—अचानक ही एक दिन आकाश से अन्धकारमय आँधी तेजी से

उठी। उस भयङ्कर तूफान के कारण सारा संसार काँप रहा था, व्याकुल था और मानसरोवर में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। हृदय में भी हलचल मची हुई थी।

मैं उस समय निराशा में विलीन था। किन्तु हे रुचि! जब तुमने मेरे जीवन में कल्याणमयी मधुर मुस्कराहट की तो मेरे हृदय में छायापथ के असंख्य नक्षत्रों के समान ही अनगिनत भाव उठने लगे।

दिव्य महिमा।

शब्दार्थ—दिव्य=अलौकिक। अमिट छवि=अक्षय शोभा। लगी खेलने रंग रली=क्रीड़ाएँ करने लगी, तुम्हारी शोभा मेरा मन हरने लगी। नवल= नई। हेमलेखा=सोने की रेखा। हृदय निकष=हृदय रूपी कसौटी—उपमा और रूपक अलंकार। अरुणाचल=उदयाचल। मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा=मोहित करने वाली सरस नई मूर्ति—श्रद्धा से अभिप्राय है। मृदु=कोमल।

भावार्थ—तुम्हारी अलौकिक और अक्षय शोभा अपनी क्रीड़ाओं ने द्वारा मुझे लुभाने लगी और तुम्हारी सुषमा मेरे हृदय की कसौटी पर नई सोने की रेखा के समान खिंच गई। कसौटी पर सोने की रेखा बहुत सुन्दर प्रतीत होती है उसी प्रकार श्रद्धा के सौन्दर्य ने मनु के हृदय को भी सुशोभित कर दिया।

तुम उदयाचल के समान मेरे मन रूपी मन्दिर की आकर्षक और सरस नई मूर्ति के समान प्रतिष्ठित हो गई। और तुम प्रेम के साथ मुझे सौन्दर्य की मधुर महिमा सिखाने लगी।

'मन—मन्दिर' को अरुणाचल कहा क्योंकि उदयाचल पर सूर्य उदित होता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी मनु के हृदय में नवीन सूर्य के समान प्रकट हुई। यहाँ से मनु का नवीन जीवन प्रारम्भ होता है। श्रद्धा ने ही मनु को यह सिखाया था कि सौंदर्य केवल मनोरंजन के लिए या अपनी तृप्ति के लिए नहीं है। उसका महत्व इससे कहीं अधिक है।

की पूर्णिमा। पारिजात-कानन=कमल का वन, असंख्य भाव। मरन्द-मन्थर मलयज=मकरन्द के भार से लद होने के कारण धीरे धीरे बहने वाला मलयानिल।

भावार्थ—मेरे जीवन की सारी जिज्ञासा और आशाएँ तुम्हारे चरणों से उलझ गईं। तुमने मेरे जीवन के सारे प्रश्नों को सुलझा दिया और मेरी सारी आशाएँ तुमने पूरी कर दीं। वह जीवन की अत्यन्त भाग्यवान घड़ी थी जब कि मेरे सारे भाव फूलों के समान खिलकर मुझे आनन्दित कर रहे थे।

तुम्हारी हँसी में बसन्त की पूर्णिमा की रात की सी शीतलता और मधुरिमा थी। तुम्हारे श्वासों से ही कमलों के वन खिल उठते थे—मेरे भाव लहरा रहे थे। तुम्हारी गति मकरंद के भार से लदी मलयानिल के समान थी। बाँसुरी के स्वर भी तुम्हारे स्वरों की समता नहीं कर सकते थे। उपमा और व्यतिरेक अलङ्कार।

श्वास ... ... थे।

शब्दार्थ—श्वास-पवन=साँस रूपी वायु। दूरागत=दूर से गई हुई। वंशी-रव-सी=बाँसुरी के सङ्गीत के समान-उपमा अलङ्कार। विश्व-कुहर=संसार रूपी गुफा=रूपक। दिव्य=स्वर्गीय। अभिनव=नवीन। जीवन-जलनिधि=जीवन रूपी सागर—रूपक अलङ्कार। मुक्ता=मोती, पवित्र भाव। जग-मंगल=विश्व के लिए कल्याणकारी।

भावार्थ—दूर से आई हुई बाँसुरी की स्वर लहरी वायु के सहारे गुफाओं में और गगन में सर्वत्र व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार तुम भी मेरी प्रत्येक साँस में समाकर मेरे संसार में मुखर हो उठी। तुम्हारा सौंदर्य स्वर्गीय और अभूतपूर्व था।

जीवन रूपी सागर में जो पावन भाव मोतियों के समान छिपे हुए थे, वे तुम्हारे संसर्ग से उभर आए। मेरे हृदय में पवित्र भावनाएँ जाग उठीं। मेरा प्रत्येक रोम खड़ा होकर विश्व का कल्याण करने वाले तुम्हारे सङ्गीत का गान करता थे।

आशा हरी।

शब्दार्थ—आलोक-किरन=प्रकाश फैलाने वाली किरण। मानस=हृदय रूपी मान सरोवर। लघु जलधर=छोटा सा बादल, प्रेम का बादल। शशि लेखा=चन्द्रमा की किरण। प्रभा भरी=कांतिमान। जलद=बादल। मन वन स्थली=मन रूपी वन।

भावार्थ = जब सूर्य की किरणें सागर पर पड़ती हैं, तो भाप बनती है जो सघन होकर बादल का रूप ले लेती है। मनु कहते हैं कि उसी प्रकार आशा की सुनहली किरणों और मेरे हृदय रूपी मान सरोवर के संयोग से प्रेम के एक बादल का निर्माण हुआ था। इस बादल को सुम रूपी चन्द्रमा की किरणों ने घेर रखा था।

तुम उसके प्रेम के बादल पर कांतिमान बिजली की माला के समान खिल पड़ी। फिर वह रिमझिम रिमझिम बरसने लगा जिससे मन की सारी भावनाएँ लहलहा उठीं।

यहाँ बादल के निर्माण और उसके बरसने का कलात्मक वर्णन है।

सुमन दिया।

शब्दार्थ—विभ्रम=स्त्रियों का एक भाव जिसमें वे अपने प्रियतम के आने पर हर्षातिरेक से उल्टे-सीधे वस्त्राभूषण पहन लेती हैं, शोभा।

भावार्थ—तुमने ही हँस-हँस कर मुझे यह सिखाया कि संसार तो एक खेल के समान है और प्रत्येक अवस्था में समान भाव से इस में अनुरक्त रहो। तुमने ही मुझसे मिलकर यह बताया कि मुझे संसार में सब के साथ प्रेम बर्ताव करना चाहिए।

और इसके साथ ही तुमने अपनी बिजली की सी उज्ज्वल शोभा से यह संकेत किया था कि जब भी चाहो अपना मन दूसरे का दान दे दिया, दूसरे के लिए अपने आपको बलिदान कर दिया।

ध्यान देने की बात यह है कि श्रद्धा ने मनु को इन सब बातों का उपदेश

नहीं दिया, वरन् ये सब बातें करके दिखलाई। मनु ने भी इस ओर संकेत किया है—'मिलकर' आदि।

तुम हुआ।

शब्दार्थ—अबल=निरतर। सुहाग=सौभाग्य। मधु रजनी=वसन्त की रात। सचेतनमय=सहानुभूति पूर्ण।

भावार्थ—तुम सौभाग्य की निरन्तर होने वाली वर्षा के समान हो। जब तुमने मेरे जीवन में प्रवेश किया मेरा जीवन सुखमय होगया। तुम वसन्त की सुखमय रात्रि के समान आनन्द देने वाली हो। यदि मेरा जीवन सदैव से एक सनातन प्यास थी, तो तुम उसमें सन्तोष बन गई। तुमने मेरे सारी आशाओं को सन्तुष्ट कर दिया।

तुमने मुझ पर अनन्त उपकार किया। मेरा प्रेम भी तुम्हारा आश्रित हुआ, तुमने मेरे प्रेम का स्वीकार किया। मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ। तुम्हारे संयोग से ही मेरा हृदय इतना सहानुभूति पूर्ण हुआ था।

किन्तु छुआ।

शब्दार्थ—अधम=नीच। उपादान=उपकरण, साधन। गठित हुआ = निर्मित हुआ। किरण=ज्ञान।

भावार्थ——किन्तु मैं तो नीच था। इसलिए तुम्हारे उस कल्याणमय रूप का रहस्य नहीं समझ पाया। और आज भी मेरी वही दशा है। मैं अपने निजी सुख-दुख की छाया से ऊपर नहीं उठ पाया हूँ। मुझे अपना भी तो सच्चा सुख प्राप्त नहीं हुआ उसकी भी छाया भर भी प्राप्त हुई।

मेरा तो सारा जीवन ही क्रोध और मोह के उपकरणों से बना है। मुझे तो यही अनुभव होता है कि मैं अब तक ज्ञान का स्पर्श भी प्राप्त नहीं कर पाया।

शापित रहा।

शब्दार्थ—जीवन का ले कंकाल = जीवन का ढाँचा, साररहित जीवन। अघ-तमस=घोर घोर अन्धकार, तमागुण।

भावार्थ—मैं शापित व्यक्ति के समान अपने इस सारहीन जीवन को लिए हुए भटक रहा हूँ। मैं तो मानो अपने जीवन के खोखलेपन में ही कुछ खोजता हुआ थक रहा हूँ।

किन्तु मैं घोर अन्धकार में घिरा हुआ हूँ। मुझे प्रकृति का आकर्षण अपने में उलझा रहा है। और मैं अपने समेत सब पर क्रोधित हो रहा हूँ।

नहीं सका।

शब्दार्थ—क्षुद्र पात्र=छोटा बर्तन। मधु धारा=प्रेम की धारा। स्वगत= आत्म सात। छिद्र=छेद।

भावार्थ—तुम जो कुछ मुझे बना चाह रही हो, वह मैं प्राप्त नहीं कर पाया हूँ। मैं तो एक छोटे से बर्तन के समान हूँ और तुम उसमें पावन प्रेम की धारा बहा रही हो।

किन्तु मेरे हृदय का पात्र छोटा है। इसलिए सब प्रेम बाहर बिखरता जा रहा है। मैं उसे आत्मसात नहीं कर पाया। इसके अतिरिक्त मेरे हृदय में में भी बौद्धिक तर्क ने छेद कर दिये थे जिसके कारण सारा प्रेम उसमें से निकल गया। मैं तुम्हारे आदर्शों को अपनी ही क्षुद्रता के कारण न स्वीकार कर सका।

यह थी।

शब्दार्थ—कल्याण-कला=कल्याण करने वाला। प्रलोभ=काम्य। आँधी= हलचल।

भावार्थ—यह कुमार मेरे जीवन का अच्छा अंश था, मेरे लिए कल्याण का विधान करने वाला था। यह मेरी कितनी बड़ी कामना का प्रतीक है। यह मेरे हृदय के स्नेह का प्रतीक है।

किन्तु मैंने इससे द्वेष किया। बस! मैं तो यह कामना करता हूँ कि सभी सुखी रहें और मुझ अपराधी को हमेशा के लिए त्याग दें।" श्रद्धा चुपचाप मनु के हृदय में उठती हलचल को देख रही थी। वह कुछ भी नहीं बोली।

दिन पिय—

शब्दार्थ—तन्द्रा = आलस्य। मन की दबी उमंग = दमित भावना। उपधान=तकिया।

भावार्थ—इसी प्रकार की बातों में दिन व्यतीत हो गया और रात आ गई। उसने सब में आलस्य और निद्रा को भर दिया। इड़ा अपनी दमित भावनाओं को लिए हुए कुमार के समीप लेटी थी।

श्रद्धा भी कुछ उदास और थकी हुई थी। वह हाथों का तकिया बनाए लेटी थी और मन ही मन कुछ सोच रही थी। मनु सब बातों को हृदय में दबाए चुपचाप यह सोच रहे थे—

सोच काया।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल=माया जाल। स्वर्ण किरन=सुनहली किरण। कलुषित=दूषित।

भावार्थ—मनु सोच रहे थे—क्या जीवन सुखमय है? नहीं, नहीं यह तो एक विषम समस्या है। अरे मनु! तूने कितना दुःख सहन किया है, अब यहाँ क्यों पड़ा है? तुझे तो तुरन्त इस माया जाल से भाग जाना चाहिए।

श्रद्धा तो प्रभात की सुनहली किरण के समान उज्ज्वल और गतिशील है। मैं उसे अपना मुख या दूषित शरीर कैसे दिखा पाऊँगा?

और आऊँगा।"

शब्दार्थ—कृतघ्न = उपकार को भूला देने वाले। प्रतिहिंसा=बदला।

भावार्थ—और बाकी ये सब तो मेरे शत्रु हैं। इन्होंने मेरे उपकार भुला दिए हैं। अब मैं कैसे इनका विश्वास कर सकता हूँ। क्या मुझे मन ही मन में बदले की भावना को दबाकर मरना होगा?

श्रद्धा के होते हुए यह संभव ही नहीं है कि मैं इनसे अपना बदला ले पाऊँगा। तब ता फिर वहाँ भी मुझे शान्ति मिलेगी, मैं यहीं सोचता हुआ चला जाऊँगा।

जग रही।

शब्दार्थ—अपने में ही उलझ रही=अपने विचारों में लीन है।

भावार्थ—जब सब प्रात काल उठे तो उन्होंने देखा कि मनु यहाँ नहीं हैं। पिता को न पाकर कुमार बड़ा अशान्त हुआ और वह उन्हें खोजने लगा कि मेरे पिता कहाँ गए हैं।

इड़ा आज अपने आप को सब का अपराधी समझ रही है। उधर कामायनी बैठी अपने विचारों में लीन है।

दर्शन

कृष्ण पक्ष की रात्रि थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। उनका प्रतिबिम्ब नदी में पड़ा रहा था। वायु बहुत धीरे धीरे चल रही थी। वृक्षों की पंक्ति शान्त थी।

ऐसे समय में कुमार ने श्रद्धा से कहा कि हे माँ! तू इतनी दूर कहाँ आ गई है! सन्ध्या व्यतीत हो गई। इस एकान्त स्थान में तुम किस सुन्दर वस्तु का देख रही थी। बस अब जल्दी घर चलो। श्रद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया केवल उसका मुख चूम लिया। कुमार ने फिर पूछा कि 'हे माँ तू क्यों इतनी उदास है! क्या मैं तेरे पास नहीं हूँ। तू क्यों इतने दिनों से चुप रहती है। तू क्यों दुखी है! तेरी साँसें भी लम्बी चल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम निराश होती जा रही हो।"

श्रद्धा ने उत्तर दिया कि यह आकाश कितना विशाल है। उसमें बादल हैं, तारे चमक रहे हैं वायु की लहरें आ-जा रही हैं। यह संसार कितना उदार है। यही मेरा घर है। इस संसार में दुख और सुख दोनों हैं उत्थान भी है और पतन भी। यहाँ शान्ति भी है और ताप भी। यह परिवर्तनशील है किन्तु मङ्गलमय भी है। यह मधुर संसार ही मेरा घर है।

उसी समय श्रद्धा ने यह वचन सुने हे माता! फिर तुम मुझसे विरक्त क्यों हो! तुमने मुझे अपने प्रेम का दान क्यों नहीं किया?" श्रद्धा ने पीछे देखा तो उसे इड़ा दिखाई दी। उसका स्वरूप मलिन था और वह दुःख के भार से दबी हुई थी।

श्रद्धा ने उत्तर दिया कि 'मुझे तुम से क्यों विराग होता! किन्तु तुमने बिना सोचे समझे जीवन में आगे बढ़ने का प्रयास किया। तुमने मुझसे बिछड़े हुए मनु को सहारा देकर रक्खा। तुम्हींने मनु को आशाओं के जाल में बाँध दिया था, उसमें मादकता भर दी थी। तुमने ही उसे उत्तेजित किया था और

तुमने ही उसके मस्तिष्क में अतृप्ति का संचार किया।

मेरे पास तुम्हें देने के लिए है ही क्या ? मेरे पास तो कोमल हृदय है और मीठी वाणी है। मैंने तो जीवन में सुख और दुख दोनों का ही सहन किया है। मैं तो एक व्यक्ति से लेकर दूसरे को दे देती हूँ। मैंने अपने प्रति किए गए सब अपकारों को भुला दिया है। तुम्हारे इस कांतिमान मुख को देखकर ही मनु एक बार मदहोश हो गए थे। स्त्री में ही क्षमा करने की शक्ति है। और मुझे यह विश्वास है कि तुम मनु को क्षमा कर दोगी।"

इड़ा ने उत्तर दिया "अब मैं चुप नहीं रह सकती। यहाँ कौन ऐसा है जो अपराधी नहीं है ? क्या मनु अपराधी नहीं है ? सभी व्यक्ति सुख दुख सहन करते हैं किन्तु वे सुख को ही अपनाते हैं। कोई भी मर्यादा में रहने को तैयार नहीं होता। उन्हें फिर कौन रोक सकता है। वे तो सबको अपना शत्रु समझते हैं।

इस प्रदेश में अब संघर्ष बढ़ चला है। श्रम के आधार पर यहाँ वर्ग बन गए हैं। प्रत्येक वर्ग को अपनी सत्ता पर गर्व है। वे नियमों की सृष्टि करते हैं, वे ही विपत्तियों की वर्षा करते हैं। सब लोग कामना की ज्वाला में जल रहे हैं। अब मेरा साहस छूट रहा है। पहले तो मुझे जनपदों के लिए मंगलमय माना जाता है। किन्तु अब मैं ही इनकी अवनति का कारण बनी हूँ। मैंने भी सुन्दर विभाजन किए थे, वे टूटते जा रहे हैं। अब तो विरोध की ज्वाला इतनी तीव्र हो गई है कि वह प्रति क्षण बलिदान की कामना करती है।

"संघर्ष और कर्म का गौरव व्यर्थ सिद्ध हुआ। सारे प्राणी निरन्तर विनाश के मुख में प्रवेश करते जा रहे हैं। सारे यश भी व्यर्थ हैं। मैंने ही अनुशासन को दुखद कृत्या का विस्तार किया है। मैंने यह सब गोप तो किए ही और इन सब से बड़ा अपराध मैंने यह किया कि मैंने तुम्हारा सुहाग छीन लिया। मैं आज अपने आपको दरिद्र समझती हूँ। तुम मुझ से विरक्ति मत मत करो मुझे क्षमा कर दो जिससे मेरा सोया हुआ हृदय जाग उठे।"

श्रद्धा ने उत्तर दिया कि "अभी तक रुद्र क्रोधित हैं। तू ने बुद्धि का ही सहारा लिया और हृदय की पूर्ण उपेक्षा की। जीवन की धारा का प्रवाह

बहुत सुन्दर है किन्तु तू तो उसकी ऊपरी लहरों को ही गिन रही है। किन्तु यह अवस्था अज्ञान की अवस्था है। तूने अपने राज्य में भौतिकता के आधार पर मनुष्यों का विभाग कर दिया है जो अनुचित है। यह संसार तो विराट सत्ता का स्वरूप है जो नित्य परिवर्तनशील है। सर्वत्र आनन्द की ही अभिव्यक्ति हो रही है।

मैं इस संसार की ज्वाला में तपस्या करती हूँ और प्रसन्नता के साथ बलिदान कर देती हूँ। तेरे मन में किसी की प्राप्ति की इच्छा है, तू मुझसे कुछ प्राप्त करना चाहती है। तो जो निधि मेरे पास बची है तू उसे ले ले। हे कुमार! तू अब यहीं रह और इड़ा के साथ कर्मों का आदान प्रदान कर। तुम दोनों ही इस प्रदेश के शासक बनो। भय का प्रचार मत करना। मैं तो अपने मनु को खोजने के लिए जा रही हूँ। कहीं न कहीं वह मुझे मिल ही जाएगा।"

कुमार ने उत्तर दिया "हे माँ! तू इस प्रकार मुझसे अपनी ममता मत तोड़। मैं तो यह चाहता हूँ कि मैं सदैव तेरी आज्ञा का पालन करूँ और सदैव तेरे पास रहूँ। यदि तू मुझे छोड़कर ही जाना चाहती है तो मेरी इच्छा है कि एक बार फिर मुझे तेरी गोद प्राप्त हो।"

श्रद्धा ने उत्तर दिया कि "इड़ा का पवित्र प्रेम तेरे दुःख को दूर कर देगा। यह तर्कमयी है और तू श्रद्धा मय है। तुम दोनों मिलकर उद्यम करो जिससे मानवता का दुःख दूर हो। तू इस संसार में सामरस्य का प्रचार कर।"

इड़ा ने उत्तर दिया कि "मैं इन मधुर वचनों का सदैव स्मरण रखूँगी तुम्हारा यह पावन प्रेम ही हमारे भय का कारण बने और संसार में प्रेम का संचार करे। जिससे सारे दुःख दूर हो जाएँ।" यह कह कर इड़ा ने श्रद्धा के चरणों की धूल ली और उसने कुमार का हाथ पकड़ लिया।

एक क्षण तक तीनों शान्त रहे और अपने आप को भी भूले रहे। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि हम कौन हैं और कहाँ हैं। उनके हृदय परस्पर मिल रहे थे। इसके पश्चात् इड़ा और कुमार नगर की ओर लौट चले। जब वे दूर हो गए तो वे मिलकर एक हो गए।

उनके जाने के पश्चात् वहाँ फिर नीरवता छा गई। नदी के किनारे पर

और आकाश में सर्वत्र अन्धकार ही बिखर रहा था। आकाश में असंख्य तारे खिले थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो फूलों का गुलदस्ता हो। सरिता के एकान्त किनारे पर वायु चल रही थी। तब श्रद्धा ने एक लम्बी साँस लेकर आस पास देखा। उसे दो खुले हुए चमकते नेत्र दिखाई दिए। उसे कुछ सनसनाहट सुनाई दी। उसने सोचा कि यह कैसी ध्वनि है? क्या धारा के प्रवाह की ध्वनि है? फिर उसे ज्ञात हुआ कि लताओं से घिरी गुफा में कोई व्यक्ति साँस ले रहा है।

ये मनु जी थे जो उस रात सबको छोड़कर चले आए थे। नदी का यह एकान्त किनारा बहुत सुन्दर था। यहाँ पर ऊँची पर्वत की चोटियाँ दिखाई दे रहीं थीं। किन्तु श्रद्धा उनसे भी महान थी। मनु ने देखा कि श्रद्धा की मूर्ति कितनी आश्चर्य जनक है। वह संसार की मित्र थी और माता के समान पवित्र हृदय वाली थी।

मनु ने कहा "श्रद्धे! तुम केवल रमणी ही नहीं हो। तुमने अपना सब कुछ खोकर जिसे प्राप्त किया था, तुम उसे भी उन व्यक्तियों को दे आई जिन से मैं प्राण बचाकर भागा था। तुमने कुमार को भी मेरे शत्रुओं को हवाले कर दिया। क्या कुमार को देते समय तुम्हारा मन कराह नहीं उठा था? ये लोग जंगली जानवरों के समान हैं और कुमार कितना कोमल है। उसने तो अभी तक प्रेम की वाणी ही सुनी थी, वह उनके साथ कैसे रह पाएगा। तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है। इड़ा ने फिर तुम्हें धोखा दिया। अब हाथ से तीर छूट चुका है किन्तु तुम फिर भी चोर बनी हो।"

श्रद्धा ने उत्तर दिया—'हे प्रिय! कोई भी व्यक्ति बलिदान करने से भिखारी नहीं बन जाता। तुम अभी तक क्यों इतने सशंक हो? कुमार को देकर मैंने तुम्हारे अपराध को धो दिया है। अब तो तुम अपने बाँधवों को छोड़ चुके हो। अब तुम्हें निस्संकोच होकर आदान प्रदान करना चाहिए।"

मनु ने कहा—"हे देवि! तुम कितनी उदार हो। तुम सब का कल्याण करती हो। तुम महान हो। तुमने सब व्यक्तियों के दुख अपने पर सहन किए हैं। तुम सब को ही क्षमा करने की शक्ति रखती हो। मैं तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाया। मैं तो भूला रहकर विपत्तियाँ सहता हुआ, तीव्र

पाशु का सदन करता हुआ इस किनारे पर पहुँचा हूँ। मैं अपने मार्गों के संघर्ष में निरन्तर चलता ही आया हूँ।

श्रद्धा ने कहा— हे प्रियतम ! यह शान्त रजनी किसी बीती बात का स्मरण कराती है। क्या मैं उस रात को भुला सकती हूँ जब मैंने आत्म सम पर्ण करके अपने जीवन को तुम्हारे चरणों में उत्सर्ग कर दिया था ! मैं तो सदैव तुम्हारी हूँ ' चलो मैं तुम्हें शान्ति के वातावरण में ले चलती हूँ। मानव इस देव संघर्ष का प्रतीक है यह सब भूलों को सुधार लेगा। जो अनुचित है, वह नष्ट हो जाएगा और नए मार्गों का निर्माण होगा।

उस मनोहर और कमनीय वातावरण में श्रद्धा और मनु का मिलन हुआ था। उस समय मनु के आँखों के सामने से एक परदा हटने लगा और उन्हें मूल सत्ता के—नर्तितनटेश के दर्शन हुए। उन्हें चाँदी के समान उज्ज्वल और मंगलमय पुरुष के दर्शन हुए। उन्हें सर्वत्र प्रकाश ही बिखरा दिखाई दिया। अन्धकार शिव के केश बन गए। स्वयं नटराज नृत्य कर रहे थे। सारा अन्तरिक्ष आनन्द विभोर था। वहाँ स्वर लीन होकर ताल दे रहे थे और दिशा और काल का ज्ञान भी मिट रहा था। शिव आनन्द में ताण्डव नृत्य में लीन थे। उनके पसीने की बूँदें ही तारों का और सूर्य तथा चन्द्र का रूप ले लेती थीं। उनके दोनों पाँव नाश और निर्माण के प्रतीक थे। जिधर भी नटराज अपनी दृष्टि डालते थे उधर ही सृष्टि का निर्माण हो जाता था। अनन्त चेतन परमाणुओं का निर्माण तथा क्षय हो रहा था। नटराज के शरीर के प्रकाश ने सारे पापों को और दुखों को भस्म कर दिया। उनके नृत्य में लौ प्रवृत्ति गल कर नवीन रूप धारण कर रही थी।

मनु ने जब नर्तित नटेश के दर्शन किए तो प्रमुदित होकर पुकार उठे— 'श्रद्धे ! बस तू मुझे अपना सहारा देकर इन चरणों तक ले चल। इन चरणों में सारे पाप और पुण्य नष्ट हो जाते हैं। जहाँ सर्वत्र सामरस्य की अनुभूति होती है।

इस सर्ग में श्रद्धा तथा इड़ा के चरित्रों का—पात्रों के रूप में भी और प्रतीकों के रूप में भी बहुत सुन्दर उद्घाटन किया गया है। श्रद्धा के वचनों में कवि का सामाजिक चिन्तन भी मुखर हो उठता है। नर्तित नटेश का चित्र

कला तथा चिन्तन दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नटराज के चरणों में ही मनु का संशय शान्त होता है।

यह बात।

शब्दार्थ—जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात=जिसमें प्रात काल छिपा था। तारक=तारे। वक्षस्थल=छाती पाट। पवन-पटल=वायु का पर्दा। निजी=मन की, गोपनीय।

भावार्थ—यह कृष्ण पक्ष की रात थी, जिसमें चाँद नहीं निकला था। उज्ज्वल प्रात काल उसमें छिपा था।

ज्योतित तारे टिमटिमा रहे थे। ये नदी के भीतर प्रतिबिम्बित थे। नदी की धारा तो बह जाती थी, किन्तु बिम्ब-तारे अविचल थे। इससे व्यंजना द्वारा दार्शनिक सत्य की उद्भावना की गई है। ऊपर से संसार परिवर्तनशील दिखाई देता है किन्तु मूल सत्ता अविचल रहती है। धीरे-धीरे वायु चल रही थी।

वृक्षों की पंक्ति शान्त थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे कोई गोपनीय बात सुन रहे हों।

धूमिल घूम।

शब्दार्थ—धूमिल छायाएँ=अन्धकार के कारण श्रद्धा और कुमार के शरीर धुंधली छाया के समान दिखाई देते हैं। निर्जन=एकांत। गंध-धूम=यज्ञों का सुगन्धित धुँआ।

भावार्थ—उस अन्धकार में धुंधली छायाएँ नदी के किनारे किनारे घूम रही थीं। लहरें उनके पैरों को चूम रही थीं।

कुमार ने श्रद्धा से कहा—' हे माँ! तू इतनी दूर कहाँ आ गई है! संध्या को व्यतीत हुए बहुत समय हो गया है, रात घिर आई है। इस एकान्त में तुझे क्या सौन्दर्य दिखाई देता है जो तू यहाँ घूम रही है। बस अब तो घर चल।

घर में यज्ञ का सुगन्धित धुँआ उठ रहा है।'' यह सुनकर श्रद्धा ने कुमार

का मुख चूम लिया।

"माँ ... हताश।"

शब्दार्थ—दुसह=असहनीय। देता दह=जला रहा है। ढीली सी=शिथिल सी। भरी=दद भरी। हताश=निराश।

भावार्थ—कुमार ने फिर कहा—"हे माँ! तू क्यों इतनी उदास है। क्या मैं तेरे पास नहीं हूँ। मुझे देखकर भी तू प्रसन्न नहीं होती।

तू इतने दिनों से चुपचाप रहती है और पता नहीं क्या-क्या सोचा करती है। आखिर, कुछ तो कहो। तेरा दुख असहनीय है जो तेरे हृदय और शरीर को जलाए द रहा है।

तू दद भरी शिथिल साँसें लेती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो तू निराश होती जाती है।

यह ... द्वार।

शब्दार्थ—अवनत=झुका हुआ। घन सजलभार=सजल बादलों का भार है। दिशि=दिशा। शिशु सा=बालक के समान—उपमा अलंकार। अविरल=स्थायी। उन्मुक्त द्वार=खुला द्वार।

भावार्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया कि नीला आकाश बड़ा विराट है। उसमें जल भर मेघों का भार घिर आता है। यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जीवन बहुत बड़ा है और उसमें चिन्ताएँ घिर आती हैं।

दिशाओं के बिखरते हुए साथ ही जीवन के आने जाने सुख और दुख हैं। वायु बालकों के समान खेलती हुई आती है। आकाश में तारों का समूह चमक रहा है। ये रात के आकाश के स्थायी जुगनू हैं।

देखो तो सही यह संसार कितना उदार है। यही मेरा घर है जिसका द्वार सदैव खुला है।

यह ... गर्व।

शब्दार्थ—लोचन-गोचर=नेत्रों को दिखाई देने वाला। संसृति=संसार।

मार्कोदधि=भाव रूपी सागर। किरनो के मग=किरणों के मार्ग से। उत्थान= उन्नति। पतन=अवनति। सतत=निरन्तर। आलिंगत नग=पर्वत से आलिंगत

भावार्थ—इस दृश्य संसार में मनुष्यों के कल्पित सुख और दुख भरे हुए हैं।

सूर्य की किरणों के कारण सागर मेघ का रूप धारण करता है और फिर स्वाँति नक्षत्र में बरस कर सीपी में मोती, कदले में कपूर और सर्प में विष बन जाता है। उसी प्रकार सांसरिक सुख-दुख भी भावना के सागर से कर्मों के माध्यम से बरसने वाले स्वांति की बूँदें हैं जो कि संसार को भर देते हैं। सारे सुख दुख मनुष्य की भावनाओं द्वारा निर्मित होते हैं। पर्वतों में विविध झरने उतार चढ़ाव के साथ निरन्तर तीव्रता से बहते चले जारहे हैं। उसी प्रकार यह जीवन भी कभी उन्नति करता हुआ कभी अवनति करता हुआ बढ़ता जा रहा है।

जीवन में बीच-बाच में उलझनें पैदा हो जाती हैं जिसके कारण मनुष्य जीवन का विकास रुक जाता है। इस रोक में भी माधुर्य होता है। यह सब चेतन शक्ति के ही विविध खेल हैं।

जग विशाल

शब्दार्थ—आँखें किए लाल=जब मनुष्य जगता है तो उसकी आँखें लाल होती हैं। तम=अन्धकार। सुरधनु सा=इन्द्र धनुष के समान—उपमा अलंकार मृति=मृत्यु, नाश। संसृति=सृष्टि। नति=पतन। सुषमा=सौन्दर्य। झलमल= चमकना। उडु-दल=तारों का समूह। अवकाश सरोवर=अन्तरिक्ष रूपी तालाब। मराल=हंस।

भावार्थ—संसार के सारे मनुष्य जब प्रात काल उठते हैं तो उनकी आँखें लाल होती हैं। रात के समय मनुष्य जब अन्धकार और निद्रा की जाली ओढ़कर सो जाते हैं। इसी प्रकार जागते सोते हुए मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

जिस प्रकार इन्द्र धनुष बड़ी शीघ्रता से अपना रंग बदलता है उसी प्रकार

यह संसार भी तेजी के साथ परिवर्तन कर लेता है। कभी यहाँ नाश का दृश्य दिखाई देता है और कभी सृष्टि का, कभी संसार की उन्नति होती है और कभी अवनति।

यह संसार अपने सौंदर्य के कारण बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। इसके ऊपर आकाश में तारों का समूह प्रकट होता है और फिर लीन हो जाता है।

यह संसार अन्तरिक्ष रूपी तालाब का हंस है। हंस तालाब में तैरा करता है। उसी प्रकार यह पृथ्वी भी अन्तरिक्ष में नित्य ही घूमा करती है। यह विश्व कितना सुन्दर है और कितना विराट है।

इसके शान्ति।

शब्दार्थ—स्तर-स्तर पर = प्रत्येक तह पर। अगाध=बहुत अधिक। ताप भ्रान्ति=दुख और मोह। अन्तस्तल=हृदय। नीड़=घोंसला।

भावार्थ—इस संसार की प्रत्येक तह में मौन है और शान्ति है। यह संसार बहुत सन्तोष प्रदान करने वाला है। साथ ही इसमें दुख भी है और मोह भी। यहाँ अच्छे और बुरे सभी प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं।

यह संसार परिवर्तनशील है, नित्य ही इसमें नवीनता का क्रम होता रहता है। उसमें सम्पूर्ण भाव लहराया करते हैं, कोमल भाव भी हैं और कठोर भाव भी।

इस संसार में हर्ष के कारण कोलाहल मचा रहता है। इसका हृदय आनन्द से पूरित सा दिखाई देता है।

यही संसार मेरा घर है। यहाँ की शोभा अत्यन्त रमणीय है। यह एक घोंसले के समान सुन्दर और शान्त है।

अम्बे जाग।

शब्दार्थ—अम्ब = हे माता। विराग=विरक्ति उदासीनता। सानुराग= प्रेम पूर्वक। मलिन छवि की रेखा=वा मुरझाई हुई रेखा के समान है। शशि लेखा=चन्द्रमा। विषाद = दुख। विष-रेखा=जहरीली रेखा।

भावार्थ—इतने में श्रद्धा ने ये शब्द सुने—यदि ऐसा है तो हे माता ! तुम मुझ से उदासीन क्यों हो। तुमने मेरे प्रति प्रेम क्यों नहीं दिखाया ?

श्रद्धा ने जब पीछे मुड़ कर देखा, तो उसे इड़ा दिखाई दी। यह रेखा के समान दुर्बल दिखाई दे रही थी और उसकी शोभा क्षीण हो गई थी।

इड़ा देखने में ऐसी प्रतीत होती थी मानो राहु से ग्रस्त आधा चन्द्रमा हो और उसके ऊपर दुख के बहर की रेखा छाई हो। वैसे तो ग्रहण पूर्णिमा के दिन होता है किन्तु यहाँ कवि ने 'शशि लेखा' कहा है इसका कारण यह है कि उन्हें इड़ा की कृशता दिखानी है। उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कार।

इड़ा इस समय बड़ी दीन थी और ऐसा प्रतीत होता था मानो उसने अपने अधिकार और अहकार को त्याग दिया है। किन्तु इस त्याग में भी कुछ पाने की इच्छा स्पष्ट झलक रही थी। इड़ा का भाग्य जाग कर भी सो गया था। मनु की सहायता से उसने अपना राज्य फिर बसा लिया था। किन्तु अब फिर छिन्न भिन्न हो गया है।

बोली शक्ति।

शब्दार्थ—विरक्ति = उदासीनता। अन्धानुरक्ति = बिना सोचे समझे प्रेम करना। अवलम्बन = सहारा। मादकता की अवनत घन=झुका हुआ नशे का बादल। अतृप्ति = प्यास। उत्तेजित चंचल शक्ति = उत्तेजित करने वाली चंचल शक्ति—विशेषण विपर्यय।

भावार्थ—श्रद्धा ने कहा-तुम से मैं क्यों उदासीन रहूँगी ? तुम तो जीवन के साथ बिना सोचे समझे ही प्रेम करना सिखाती हो। तुम सभी को जीवन में लीन कर देने वाली हो।

तुमने मुझसे बिछड़े हुए मनु को सहारा देकर उनके जीवन की रक्षा की। तुमने इस प्रकार मुझ पर भारी उपकार किया है।

तुम मनुष्यों को आशाओं में बाँध देती हो। तुममें सनातन आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा तुम सभी को अपनी ओर आकृष्ट करती रहती हो। तुम नशा

झुपे बादल के समान हो। तुम व्यक्ति को अधिकार और अहंकार के नशे में डुबा देती हो।

तुम्हीं ने मनु के मस्तिष्क में न मिटने वाली अधिकारों की प्यास को जन्म दिया। तुम चंचल शक्ति हो जो सभी को उत्तेजित किया करती है। उपमा अलङ्कार।

विशेष—यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इड़ा के विशेषणों द्वारा उसके प्रतीक रूप का भी वर्णन है। बुद्धि भी मनुष्य को जीवन में अनुरक्त करती है, इस आशाओं में उलझा लेती है और उसे मोह में डाल कर अतृप्त बना देती है।

मैं

डोल।

शब्दार्थ—मधुर घोल = मीठा लेप। चिर विस्मृत सी = बीती घटनाओं को भुला कर।

भावार्थ—मैं तुम्हें दे ही क्या सकती हूँ। मेरे पास है ही क्या? यह हृदय और दो मीठे वचन।

मेरा जीवन तो बड़ा सरल है। मैंने जीवन में आनन्द भी पाया और दुख भी। मैंने बहुत कुछ प्राप्त भी किया और उसे खो भी दिया। मेरे जीवन में तो सुख और दुख हो मँडराते रहे हैं।

और मैंने जो वस्तु किसी से प्राप्त की, वह मैं दूसरे को दे देती हूँ। मैंने कभी भी अपने पास कुछ नहीं रखा। मैं तो अपने दुख को भी सुख ही बना लेती हूँ।

मैं प्रेम से भरे हुए मधुर लेप के समान हूँ। जिस प्रकार मधुर लेप सारी विपत्तियों को दूर कर देता है उसी प्रकार मैं भी सब की विपत्तियाँ दूर करती हूँ। मैं तो सारी पुरानी बातों को भुलाकर ही यहाँ घूम रही हूँ। मैं कभी पुरानी दुखपूर्ण या द्वेषजनक घटनाओं का स्मरण ही नहीं करती।

यह माधिकार।"

शब्दार्थ—प्रभापूर्ण=कांतियुक्त। हत-चेतन=मूढ़। निश्छल=पावन।

भावार्थ—तुम्हारे इस कांतियुक्त मुख को देखकर मनु मोहित हो गए थे और वे अपराध कर बैठे थे।

स्त्री न तो प्रेम और ममता की ही शक्ति होती है। उसमें अपार शक्ति है और फिर भी वह छाया के समान सुखद होनी चाहिए।

फिर स्त्री को छोड़कर ऐसा कौन होगा जो हृदय से अपराधियों को क्षमा कर दे और जिस क्षमा से यह धरती समृद्ध हो उठे? केवल स्त्री में ही दूसरों को क्षमा करने की शक्ति है।

मैं समझती हूँ कि तुम भी मनु को उनके अपराध के लिए क्षमा कर दोगी। मैं तुम पर अपना अधिकार समझती हूँ इसलिए यह विचार नहीं त्याग सकती।

"अब हो न!"

शब्दार्थ—पावस निर्झर=वर्षा ऋतु का झरना।

भावार्थ—इड़ा ने कहा—"अब मैं चुप नहीं रह सकती। यहाँ कौन ऐसा है जिसने अपराध नहीं किया? क्या सारा दोष मेरा ही है? मनु ने भी तो अपराध किया है।

सभी व्यक्ति सुखों और दुःखों को सहन करते हैं किन्तु वे केवल सुख को ही अपनाते हैं, अपना सम्बन्ध केवल सुख से ही बनाए रखते हैं।

सुख से इस मोह के कारण ही वे न तो किसी के अधिकार में रहते हैं, न ही मर्यादा का पालन करते हैं। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में झरने तेजी से बहने लगते हैं और किसी भी प्रकार रोके नहीं जा सकते, उसी प्रकार सारे मनुष्य सीमाओं को तोड़कर उच्छृङ्खल हो जाते हैं।

फिर भला ऐसे व्यक्तियों को कौन रोक सकता है? वे तो सभी को अपना शत्रु समझते हैं, किसी पर भी विश्वास नहीं करते।

अमसर छूट ।

शब्दार्थ—अमसर हो रही=बढ़ रही । सीमाएँ कृत्रिम=अस्वाभाविक नियम । श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें=जिनके लिए श्रम का विभाजन ही वर्ग बन गया है, एक काम करने वाले सभी व्यक्तियों का एक वर्ग बन गया है । विप्लव=क्रान्ति । वृष्टि=वर्षा । मत्त=नशा । लालसा=कामना ।

भावार्थ—अब तो यहाँ पर फूट बढ़ती ही जा रही है और जो नियमों के अस्वाभाविक बन्धन थे वे अब टूट रहे हैं । जनता उच्छृङ्खल होती जा रही है ।

आज श्रम के विभाजन के आधार पर ही वर्ग बन गए हैं । एक काम करने वाले सारे व्यक्तियों ने अपना एक वर्ग बना लिया है । उन वर्गों को अपनी अपनी शक्ति का बहुत घमण्ड हो गया है ।

जो लोग नियमों का निर्माण करते हैं, वे ही क्रान्ति की वर्षा करते हैं । जब नियम बनाने वाला स्वयं नियमों का पालन नहीं करेगा, तो जनता में क्रान्ति का होना स्वाभाविक ही है ।

विशेष—यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इस छन्द में आधुनिक युग का रूप भी प्रतिबिम्बित है । 'प्रसाद और अप्रसादयुग' में मैंने अतीत चिन्तन और वर्तमान चेतना का विवेचन करते हुए अतीत और वर्तमान के सम्बन्ध पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालने का प्रयास किया है । प्रतिभा सम्पन्न कवि प्राचीन कथानकों को विकृत न करते हुए भी वर्तमान-युग-चेतना का मुखर कर सकते हैं । आज भी विविध काम करने वाले व्यक्तियों की अलग अलग "यूनियन" बनी हैं जो कि नित्य उपद्रव किया करती हैं ।

मैं समृद्ध ।

शब्दार्थ—जनपद-कल्याणी=राज्य का कल्याण करने वाली । अवनति कारण=पतन का कारण । निषिद्ध=वर्जित, उपेक्षित । विषम=भयङ्कर । जलधर सम = बादलों के समान—उपमा अलङ्कार । उपलापन = पत्थरों के समान । समिद्ध=प्रज्वलित । समृद्ध=धनी ।

भावार्थ—पहले तो मैं राष्ट्रों के लिए मङ्गलमय समझी जाती थी। मेरे विषय में यह प्रसिद्ध था कि मैं राष्ट्रों का उत्थान करने वाली हूँ। किन्तु अब सब लोग मुझे पतन का कारण समझते हैं और मेरी उपेक्षा करते हैं।

मैंने जो जनता के हित के लिए सुखद विभाजन किए हैं, अब वे ही दुख दायक हो गए हैं और धीरे धीरे टूटते जा रहे हैं। जनता उनके कारण पीड़ित है। और नित्य ही नए-नए नियम बन रहे हैं।

जिस प्रकार विविध स्थानों पर मेघ घिर कर बरसते हैं उसी प्रकार इन विभाजनों और नियमों ने भी विविध स्थानों पर बनकर और टूटकर पत्थरों की वर्षा की है। ये जनता के लिए विपत्तियों का कारण बने हैं।
अब तो विद्रोह और विरोध की यह अग्नि इतनी तेज हो गई है कि उसका बुझना कठिन प्रतीत होता है। अब तो यह ज्वाला घनीआहुति माँग रही है।

तो अशान्त।

शब्दार्थ—भ्रम=भूल। नितान्त=पूरी तरह से। संहार=नाश, युद्ध। वध्य =मारी जाने योग्य। असहाय=बसहारा। दांत=वशीभूत, पराधीन। अविरल= निरन्तर। मिथ्या=भूठा। शक्ति चिह्न = बल के निशान। विफल = बेकार। प्रणति भ्रान्त=भटककर झुक जाना। अनुशासन=नियमन।

भावार्थ—तो क्या मैं अब तक बिल्कुल अन्धकार में थी? क्या म युद्ध में मारी जाने योग्य थी, बेसहारा और पराधीन थी?

सारे प्राणी शक्तिहीन होकर चुपचाप मृत्यु के मुख में निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। सारे मनुष्य बिखरे थे और शक्तिहीन थे। धीरे धीरे नाश की ओर बढ़ते जा रह थे।

मैंने मनु की सहायता से उन्हें सङ्गठित किया था और उन्हें संघर्ष करना सिखाया था। किन्तु संघर्ष और परिश्रम की यह शक्ति व्यर्थ थी। शक्ति और जागरण के प्रतीक ये यश भी बेकार थे।

अब मैं समझ पाई हूँ कि उस समय सभी भय की उपासना कर रहे थे, भय का प्रचार कर रहे थे और उसी का महत्त्व बढ़ रहा था। अज्ञान में पड़ कर ही ये मनुष्य झुक रहे थे, राजा की आज्ञा का पालन करते थे। हमारे

नियमन क प्रभाव से ही जनता में अशान्ति छा गई।

तिस आग।"

शब्दार्थ—दिव्य राग=स्वर्गीय प्रेम। अकिंचन=दरिद्र। सुहाती हूँ=अच्छी लगती हूँ। विराग=उदासीनता।

भावार्थ—मैंने इतने अपराध किए किन्तु इस पर भी मैंने तुम्हारा सुहाग छीना, तुम्हारे मनु को भी अपने में उलझा लिया। हे देवी! मैंने तुम्हारे स्वर्गीय प्रेम को भी छीन लेने का उपक्रम किया।

आज मैं अपने आप को बिल्कुल दरिद्र समझती हूँ। मैं स्वयं अपने को अच्छी नहीं लगती। और तो और, मैं स्वयं जो कुछ कहती हूँ, उसे भी नहीं सुन पा रही हूँ।

हे देवी! तुम मुझसे उदासीन मत बनो। तुम मुझे क्षमा कर दो जिससे मेरा सोया हुआ हृदय जाग उठे।

"ह भ्रान्त।

शब्दार्थ—रुद्र रोष=शिव का क्रोध। विषम=भयङ्कर। ध्वान्त=अन्धकार, निराशा। विकल=व्याकुल। अभिनय=नाटक। अपनापन=ममत्व। आलोक=प्रकाश, ज्ञान। भ्रान्त=थककर। भ्रान्त=भ्रमपूर्ण।

भावार्थ—तब श्रद्धा ने उत्तर दिया—अभी तक शिव का क्रोध भयङ्कर निराशा के अन्धकार के रूप में व्यक्त हो रहा है। जनता के हृदय में जो निराशा है यह भी शिव के क्रोध का ही चिह्न है।

तू सदैव बुद्धि का सहारा लेकर चलती रही। तूने हृदय की विभूतियों को कभी भी प्राप्त नहीं किया। इसीलिए आज तू व्याकुल है और इस प्रकार दुःख का नाटक दिखा रही है। अभिप्राय यह है कि इडा का जो दुःख है, जो पश्चाताप है यह भी हृदय-जन्य नहीं है।

हृदय का जो मधुर ममत्व का भाव है, वह तूने खो दिया है। इसीलिए तुझ में ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ, तू जीवन के वास्तविक मार्ग को न पहचान सकी।

सारे व्यक्ति थककर अपने अपने मार्गों पर चले जा रहे हैं, अपने ढङ्ग से जीवन निर्वाह कर रहे हैं। और तुमने जो विभाजन किए थे, वे सभी मिथ्या और भ्रामक सिद्ध हुए।

जीवन राह।

शब्दार्थ—सत=पावन। सतत=अनन्त। तर्कमयी=तर्क को लेकर चलने वाली। प्रतिबिम्बत तारा=जीवन की नदी में पड़े तारों का प्रतिबिम्ब, मिथ्या सुख। आठ पहर=दिन और रात। मधुमय=आकर्षक।

भावार्थ—जीवन की धारा का प्रवाह तो बहुत सुन्दर है। यह सत्य है, अनन्त है, इसमें अनन्त ज्ञान है और अपार सुख है। व्यञ्जना द्वारा कवि जीवन को उस नदी के समान वर्णित करता है जो सुन्दर है निरन्तर बहती रहती है और अथाह है।

यदि कोई व्यक्ति समग्र नदी का महत्व न समझकर केवल उसकी लहरों को गिनता रहे, उसमें प्रतिबिम्बित तारों को पकड़ने का प्रयास करे, वह मूर्ख ही कहलाएगा। तू बुद्धि प्रधान है, और तू जीवन रूपी धारा की भीतरी सतहों तक नहीं पहुंची, केवल ऊपरी सुख-दुख को ही गिनती रही है। तूने जीवन में उन इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास किया जो सारहीन हैं, जो सदैव अतृप्त रहती हैं।

तू दिन और रात ठहरकर इस जीवन रूपी धारा को देखती रही। तूने उसके साथ ही आगे बढ़ने का ध्यान नहीं किया। तू भूल मतकर, यह अवस्था तो अज्ञान की अवस्था है। इसे त्याग दो।

जीवन में तो सुख और दुख दोनों की ही मधुर धूप-छाया है। धूप और छाया दोनों ही संसार में होते हैं उसी प्रकार सुख और दुख दोनों भी संसार में अनिवार्यत होते हैं। किन्तु तूने उस सीधे मार्ग को छोड़ दिया और विपरीत मार्ग पर चलने लगी।

चेतनता ' आग।'

शब्दार्थ—चेतनता का भौतिक विभाग=भौतिक वस्तुओं के आधार पर

मनुष्य का वर्गीकरण । विराग=द्वेष । निति=चेतना । नित्य=शाश्वत । शत शत=सैकड़ों । नृत्य निरत=नृत्य में लीन । झंकृत=ध्वनित ।

भावार्थ—तुमने भौतिक वस्तुओं और कर्मों के आधार पर जनता का वर्गीकरण करके जनता में विद्वेष का वितरण कर दिया है । इस वर्गीकरण के कारण ही जनता का संघर्ष उद्दीप्त हो गया ।

यह शाश्वत संसार तो विराट चेतनशक्ति का ही रूप है । यह विविध प्रकार से अपना रूप बदलता रहता है—नित्य परिवर्तनशील है ।

इसमें वियोग के दुख और मिलन के सुख से युक्त कण सदैव नृत्य किया करते हैं । इसके दो अभिप्राय हैं । प्रथम यह कि ये कण कभी मिल जाते हैं और कभी वियुक्त हो जाते हैं जिसके कारण इसमें परिवर्तन होता रहता है । द्वितीय यह, कि इस संसार में वियोग का दुख भी है और मिलन का सुख भी है । इसमें सदैव उत्सव और आनन्द मुखरित होता रहता है ।

यह तो तन्मय कर देने वाले पूर्ण राग के समान मधुर है । इसमें केवल एक ही ध्वनि मुखरित है जो व्यक्ति को प्रबुद्ध होने का सन्देश देती है ।

मैं ... कान्त ।

शब्दार्थ—लोक अग्नि=संसार का दुख । नितान्त=पूरी तरह से । आहुति बलिदान । दाह = ज्वाला । निधि = खजाना । सौम्य = मधुर स्वभाव वाला । विनिमय=प्रतिदान । कान्त=सुन्दर ।

भावार्थ—मैं तो सांसारिक दुखों की ज्वाला में पूरी तरह से तप चुकी हूँ और अब प्रसन्न होकर शान्त मन के साथ उसमें सब कुछ बलिदान करने को प्रस्तुत हूँ ।

तूने मनु को क्षमा नहीं किया है वरन तू कुछ प्राप्ति की इच्छा प्रकट कर रही है । तू कुछ लेना चाहती है । अभी तक तेरे उत्तेजित हृदय में कामना की ज्वाला शेष है ।

यदि तेरी यही इच्छा है तो जो धन मेरे पास रह गया है, तू उसे भी ले ले । मुझे तो अब अपनी राह जाना है और वही मेरा एकमात्र उद्देश्य है ।

यह कहकर श्रद्धा ने कुमार से कहा— 'हे सौम्य ! तू यहीं रह । मैं

आशीर्वाद देती हूँ कि तेरे लिए यह देश सुखद हो। तू मधुर कर्म कर और इस प्रकार इड़ा के आभार का प्रतिदान कर दो।

तुम   गीति।"

शब्दार्थ—भीति = भय। मरु = रेगिस्तान। नग = पर्वत। सुयश गीति= यश का गाना।

भावार्थ—तुम दोनों मिलकर देश की राजनीति को सँभालो। किन्तु शासक बनकर तुम भय का प्रचार मत करना। भय के द्वारा शासन मत चलाना।

मैं तो अब नदियों, रेगिस्तानों, पहाड़ों, कुञ्जों और गलियों में अपने मनु को खोजने के लिए जा रही हूँ।

मनु इतने छली नहीं हैं। वे तो बहुत सरल हैं। मैं सदैव उनके प्रेम के आधार पर ही जीवन काटती रही हूँ। अब भी इसी आधार को लेकर कहीं न कहीं उन्हें खोज ही लूँगी।

अब मैं यह देखना चाहती हूँ कि तुम दोनों का कार्य कैसे चलता है। हे मानव! मैं आशीर्वाद देती हूँ कि सदैव तुम्हारे यश का गान होता रहे।

बोला   क्रोड़।"

शब्दार्थ—जननी=माता। लालन=पालन। क्रोड़=गोद।

भावार्थ—बालक ने कहा—"हे माँ! तू इस प्रकार अपने वात्सल्य को मत तोड़। इस प्रकार मुझसे अपना मुख न मोड़।

मेरा तो यह प्रण है कि मैं सदैव तेरी आज्ञा का पालन करता रहूँ। तेरा वात्सल्य सदैव मेरा पालन किया करता है।

चाहे मैं जीवित रहूँ चाहे मर जाऊँ, पर तेरा यह प्रण नहीं टूट सकता। और तुम्हारी आज्ञा का पालन करके ही मेरा जीवन वरदान बनेगा।

और यदि तू मुझे इस प्रकार छोड़कर जा रही है तो मेरी अभिलाषा है कि एक बार फिर मुझे तेरी वही गोद प्राप्त हो।

'हे पुकार।"

शब्दार्थ—शुचि=पवित्र। व्यथा भार=दुख का बोझ। मननशील=चिन्तन शील। अभय=भय रहित होकर। सन्ताप निचय=दुखों की राशि। समरसता=समत्व।

भावार्थ—श्रद्धा ने पुत्र से कहा—"हे सौम्य! इड़ा का पावन प्रेम तेरे सारे दुख के बोझ को दूर कर देगा।

इड़ा में तर्क अथवा बुद्धि की प्रधानता है और तुझ में मेरा अंश है हृदय की प्रधानता है। इसलिए तुम दोनों का मिलन विश्व के कल्याण में सहायक होगा। तू निर्भय होकर सोच विचारकर कर्म कर। तू इड़ा के सारे दुखों को दूर कर दे और तेरी साधना से मानव का भाग्य चमक उठे।

हे मेरे पुत्र! तू अपनी माँ की पुकार सुन और सबके समत्व का प्रचार कर।

"अति फूल।

शब्दार्थ—विश्वास-मूल=विश्वास को जन्म देने वाले। अचल=गम्भीर। दिव्य=स्वर्गीय। श्रेय उद्गम=कल्याण को जन्म देने वाला। अविरल=निरंतर आकर्षण=प्रेम। वितर=बाँट। निर्वासित हों=दूर हो जाएँ। सन्ताप सकल=सारे दुख। प्रणत=झुककर। मृदुल=कोमल।

भावार्थ—इड़ा ने कहा—"तुम्हारे ये शब्द अत्यन्त मधुर हैं और विश्वास को जन्म देने वाले हैं। मैं इन शब्दों को कभी नहीं भूलूँगी।

हे देवी! तुम्हारा गम्भीर प्रेम निरन्तर अलौकिक कल्याण को फैलाता रहे। तुम्हारे प्रेम को स्वीकार कर ही संसार का कल्याण सम्भव है। जिस प्रकार मेघ जल बरसाकर गर्मी के सारे दुखों को दूर कर देता है उसी प्रकार तुम्हारा प्रेम भी परस्पर ममत्व का प्रचार करे जिससे जनता के सारे दुख दूर हो जाएँ।

यह कहकर इड़ा ने झुककर श्रद्धा के चरणों की रज उठा ली। और फिर उसने कोमल फूल के समान सुन्दर कुमार का हाथ पकड़ा।

वे   दो न

शब्दार्थ—विस्मृत = भूले । विच्छेद = भेद । बाह्य = बाहरी । आहत = दुखी । परिणत जीवन=बदला हुआ-जल रूपी जीवन । पुर=नगर ।

भावार्थ—वे तीनों ही एक क्षण भर के लिए शान्त रहे । वे उसमें ये भूल गए थे कि हम कौन हैं और कहाँ हैं ।

उन तीनों में बाहरी भेद तो था लेकिन उनके हृदय परस्पर मिल रहे थे । हृदयों का यह मिलन अत्यन्त रसीला था ।

जल की बूंदें चोट खाकर बिखर कर फिर मिल जाते हैं । उसी प्रकार ये तीनों भी मिलकर एक ही रहे थे । जिस प्रकार अलग अलग लहरें मिल कर सागर बनाती हैं उसी प्रकार इन तीनों के संयोग से जीवन की मूल अखंडता का प्रकाश हो रहा था ।

इड़ा और कुमार तो मग्न होकर नगर की ओर लौट चले और श्रद्धा वहीं रह गई । जब वे दूर चले गए तो मिल कर एक होगए । दो व्यक्ति भी दूरी से देखने पर एक के समान दिखाई देते हैं । और यहाँ दूसरा अभिप्राय यह है कि दोनों प्रणय के सूत्र में बंधकर एक होगए ।

निस्तब्ध   ध्वान्त ।

शब्दार्थ—निस्तब्ध=शांत । असीम = अनन्त शक्ति । कान्त = रमणीय । बिन्दु=बूँदें । व्यथिता=दुखिता । श्रम-सीकर=पसीन की बूंदें । मलिन छाया= अन्धकार । सरिता-तट = नदी का किनारा । तरु=वृक्ष । क्षितिज = आकाश और धरती की मिलन रेखा । ध्वान्त = अन्धकार ।

भावार्थ—उस समय आकाश शान्त था । दिशाएँ भी मूक थीं । यह आकाश उस अनन्त शक्ति के मधुर चित्र के समान दिखाई दे रहा था ।

थकी हुई रात के हृदय रूपी आकाश पर सूने बिन्दुओं के समान पसीने की बूंदें झलक रही थीं । तारे थकी हुई रात पर दिखाई देने वाली पसीने की बूंदें हैं । ये पसीने की बूंदें बहुत दूर से दिखाई दे रही हैं, किन्तु अभी तक

गिरी नहीं है। तारे अभी तक छिपे नहीं। धरती पर घना अन्धकार छाया हुआ था।

नदी और वृक्षों से युक्त क्षितिज रेखा का भाग केवल अन्धकार ही बिखेर रहे थे। चारों ओर घना अन्धकार व्याप्त था।

रात सुरन्त।

शब्दार्थ—तारा-मंडित = तारों से युक्त। अनन्त = आकाश। स्तवक = गुलदस्ता। पूरितउर=हृदय भरा हुआ है। माया सरिता=आकाश गंगा। लोल लहर=सुन्दर लहर। सुरन्त = अनन्त

भावार्थ—विशाल आकाश असंख्य तारों से शुशोभित था। वह वसन्त ऋतु में खिले हुए फूलों के गुलदस्ते के समान दिखाई देता था।

ऊपर का सुन्दर संसार-आकाश हँस रहा था। उसके हृदय में तारों का हल्का प्रकाश भरा था।

ऊपर आकाश-गंगा दिखाई दे रही थी। तारों की किरणें उसमें उठती हुई सुन्दर लहरों के समान प्रतीत होती थीं।

धरती पर अनन्त छाया चुपके से प्रकट होती थी और फिर चुपचाप चली जाती थी। वायु के झोंकों के कारण छाया भी चंचल थी।

सरिता फूल।

शब्दार्थ—कूल=किनारा। पवन हिंडोले=वायु के झूले पर। विरल = अनन्त। दीप्ति तरल = लहरों की कांति। संसृति=संसार। विधुर=रहित। अम्लान = प्रफुल्ल।

भावार्थ—नदी का यह शान्त किनारा पवन के झूले पर झूलता दिखाई देता था। वायु के चलने से वृक्ष और लताएँ झूम रहे थे।

धीरे धीरे लहरों का समूह उठता था और किनारे से टकरा कर विलीन हो जाता था। उस समय छप-छप का अनन्त शब्द हो रहा था। लहरों में प्रतिबिम्बित कांति काँपती सी दिखाई देती थी।

उस समय संसार निद्रा में लीन होकर अपने आपको भूल रहा था। वह

उसमें जीवन की हलचल का अभाव था। इसलिए वह गन्ध हीन खिले फूल के समान दिखाई दे रहा था। खिला फूल इसलिए कहा कि उसमें अनन्त सौंदर्य है किन्तु उसमें जीवन की हलचल की सुगन्धि नहीं थी।

तब सॉंस !

शब्दार्थ—सरस्वती सा=सरस्वती के समान दीर्घ—उपमा अलङ्कार। शिलालग्न=शिला में लगे। निस्वन = शब्द। गुहा=गुफा। लतावृत=लताओं से घिरी।

भावार्थ—तब सरस्वती के समान एक लम्बी साँस लेकर श्रद्धा ने आस पास देखा।

उसने देखा कि दो खुले हुए नेत्र चमक रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे किसी शिला में लगे हुए अनगढ़ दो रत्न हों। श्रद्धा ने सोचा कि अन्धकार में यह क्या सनसन हो रहा है! क्या यह धारा का शब्द है!

फिर उसे ज्ञात हुआ कि पास ही लताओं से घिरी एक गुफा में कोई जीवित व्यक्ति साँस ले रहा है।

यह मित्र।

शब्दार्थ—निर्जन=एकान्त। उन्नत = ऊँचे। शैल शिखर=पर्वत की चोटियाँ। लोक अग्नि = संसार का दुख। स्वर्ण प्रतिमा=सोने की मूर्ति। मातृ मूर्ति=माता की मूर्ति।

भावार्थ—वह एकान्त किनारा एक बहुत सुन्दर और पवित्र चित्र के समान था।

वहाँ पर कुछ ऊँची-ऊँची पर्वत की चोटियाँ दिखाई दे रही थीं। किन्तु श्रद्धा का सर उनसे भी ऊँचा था वह उनसे भी महान थी।

श्रद्धा तो संसार के दुखों की ज्वाला में तप कर और गलकर एक शुद्ध सोने की मूर्ति के समान कांतिमान और गरिमामय थी। उपमा अलंकार।

मनु ने सोचा कि यह श्रद्धा कैसी अलौकिक है। यह माता की मूर्ति के समान थी जो सारे संसार का कल्याण चाहती थी, सभी से स्नेह करती थी।

बोले प्रवाह।

शब्दार्थ—वंचित=जिसका सब कुछ लूट लिया गया है। तन मन का प्रवाह=तेरे मन की गति।

भावार्थ—मनु ने कहा—' तुम केवल रमणी ही नहीं हो जिसके मन में अभिलाषा भरी हो। तुम रमणी से बहुत अधिक महान हो।

अपना सब कुछ खोकर भी और रो रो कर जिस कुमार को तुमने प्राप्त किया उसे भी तुमने उन लोगों के हवाले कर दिया जो मेरे प्राण लेना चाहते थे और जिनसे प्राण बचाकर मैं भागा था।

क्या ऐसा करते हुए भी तुम्हारे हृदय को दुख नहीं हुआ था? सचमुच तुम्हारे मन का चिन्तन विचित्र है।

य तीर।"

शब्दार्थ—श्वापद=खूनी जंगली जानवर। शावक=हरिण आदि पशुओं का बच्चा। तव हृत्तल=तुम्हारा हृदय।

भावार्थ—ये लोग तो खूनी जंगली जानवरों के समान भयंकर हैं और कुमार बच्चे के समान कोमल है। यह तो वीर तो है किन्तु बड़ा भोला भाला है।

वह तुम्हारे मधुर वचन सुना करता था। उसमें कितना अगाध प्रेम था और कितनी सरलता थी।

तुम्हारा हृदय कितना कठोर है जो उस बालक को उनके पास छोड़ आई हो। उस इड़ा ने तुमसे फिर धोखा किया है।

अब तो हाथ से तीर छूट चुका है। अब हम कुमार को फिर वापिस नहीं ले सकते। किन्तु तुम अभी तक धीर ही बनी हुई हो।

' प्रिय अंक।"

शब्दार्थ—सशंक=शंकायुक्त। रंक=भिखारी। विनिमय=आदान प्रदान। हृदयमन=गृहस्थी। निर्वासित=उन गृहस्थियों से वियुक्त। इङ्क=पीड़ा। अंक=हृदय।

भावार्थ—भद्रा ने कहा—"हे प्रिय ! तुम क्यों अभी तक इस प्रकार की शंकाओं में लीन हो। कोई भी व्यक्ति किसी को कुछ देकर भिखारी नहीं बन जाता।

इसे चाहे आदान प्रदान कहो चाहे परिवर्तन कहो किन्तु है यह सत्य। तुमने जो सारस्वत देश का अधिकार प्राप्त किया था वह एक प्रकार का ऋण था क्योंकि इन्द्र ने तुम्हें वह दिया था। किन्तु अब कुमार उसका स्वामी है, इसलिए वह अब तुम्हारा ऋण नहीं, तुम्हारा धन ही है।

तुमने ने अपराध किया था वह तुम्हारा बंधन बना हुआ था। किन्तु कुमार को देने से तुम अपने अपराध से मुक्त हो गए हो। अब तो तुम अपने सम्बन्धियों को छोड़कर स्वतन्त्र हो, जहाँ चाहो जाओ। अब इसमें दुखी होने की क्या बात है ! यह हृदय अब निर्मल हो गया है इसलिए प्रसन्नता के साथ अपना धन औरों को दो और उनका दान स्वीकार करो।

"तुम विचार।

शब्दार्थ--निर्विकार = पावन। सर्व मंगले=सब का कल्याण करने वाली। महती=महान। क्षमा निलय = क्षमा रूपी घर।

भावार्थ- मनु ने कहा—हे देवी ! तुम कितनी उदार हो ! तुम माता की मूर्ति के समान पावन हो। तुम सब पर माँ के समान प्रेम करती हो।

तुम सब का कल्याण करती हो। सचमुच तुम महान हो। तुम सबके दुखों को स्वयं सहन करती हो।

तुम्हारे वचनों में कल्याण की कामना है। तुम क्षमा के घर में रहती हो। तुम बड़े से बड़े अपराधियों को भी क्षमा कर देती हो।

मैंने तुम को स्त्री सा ही समझ कर भारी भूल की है। तुम्हें स्त्री समझना क्षुद्र विचार है। तुम बहुत महान हो।

मैं तीर।

शब्दार्थ—तीव्र समीर=तेज हवा। भाव चक्र=भावों का आघात, आवर्त इन्द्र। वसु=धरती। अनुशय=पुराना वैर।

सरिता = नदी । रजत-धार = चाँदी के समान श्वेत । उज्ज्वल = कांतिमान । आलोक पुरुष = प्रकाश का पुरुष । कल्लोल = खेल । लहर लास—चंचल लहर ।

भावार्थ—इस समय अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई सत्ता चेतन हो उठी । उस अन्धकार में संसार की मूल सत्ता शिव के दर्शन हुए । आवरण पटल से अज्ञान के पर्दे का नाश भी ध्वनित है ।

यहाँ मनु को चाँदी के समान सफेद, कांतिमान जीवन प्रकाशमय पुरुष और कल्याणकारी चेतन के दर्शन हुए । जिस प्रकार सागर के मन्थन से अमृत, लक्ष्मी आदि रत्न उत्पन्न हुए थे उसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता था मानो उस अन्धकार के सागर के मंथन से ही शिव का आविर्भाव हुआ हो । उस विराट पुरुष में चाँदनी की नदी का मिलन दिखाई देता था ।

अब यहाँ केवल प्रकाश की ही क्रीड़ा दिखाई दे रही थी । रमणीय किरणों की चंचल लहरें बिखर रही थीं ।

बन गया   दिशाकाश ।

शब्दार्थ—तमस=अन्धकार । अलक जाल बालों का समूह । सर्वांग= सारा शरीर । ज्योतिमय=ज्योतिपूर्ण । अंतर्निनाद ध्वनि=हृदय के भीतर गूँजने वाली ध्वनि, मूल शब्द । शून्य भेदनी=शून्य का नाश करने वाली । सत्ता चेतन सत्ता । नृत्य निरत=नृत्य में लीन । प्रहसित=हँसता हुआ । मुखरित= गुंजित ।

भावार्थ—यह विस्तृत अन्धकार ही नटराज शिव के केशों का समूह बन गया । उनका शरीर बड़ा विशाल और कांतिमय था ।

सारी दिशाओं में हृदय का संगीत गूँज रहा था । शून्य का नष्ट करने वाली चेतना शक्ति के दर्शन हो रहे थे । यह शक्ति आकाश में व्याप्त थी । नटराज भगवान शिव स्वयं नृत्य में लीन थे । सारा अंतरिक्ष हर्षित था और उसमें शिव के नृत्य की ध्वनि गूंज रही थी ।

अब कोई नृत्य करता है या उसका साथ ताल दी जाती है । भगवान शिव

के इस नृत्य में स्वर स्वयं ही लय में बँध कर ताल दे रहे थे। यहाँ दिशा और काल का ज्ञान लीन हो रहा था।

क्रीड़ा नाद।

शब्दार्थ—लीला=क्रीड़ा। स्पन्दित=कम्पित, गुम्फित। आह्लाद=उल्लास। प्रभा पुञ्ज=ज्योति की राशि। चितमय = चेतन। प्रसाद=हर्ष। ताण्डव=शिव का नृत्य विशेष। उज्ज्वल=चमकते हुए। श्रम सीकर=पसीने की बूंदें। हिम कर=चन्द्रमा। दिनकर=सूर्य। धूलि-कण=रेत का कण। भूधर=पर्वत। संहार= नाश। सृजन = निर्माण। युगल पाद=दोनों चरण।

भावार्थ—उस समय नटराज की क्रीड़ा का उल्लास लहरा रहा था। नटराज स्वयं कांति की राशि के और चेतना के हृदय को बिखेर रहे थे।

भगवान शिव रमणीय, आनन्दमय ताण्डव में लीन थे। नृत्य के परिश्रम के कारण शुभ्र पसीने की बूंदें बिखर रही थीं।

वह पसीने की बूंदें ही तारों सूर्य और चन्द्रमा का रूप ग्रहण कर रहे थे। भगवान शिव के चरणों की गति से उड़ते हुए रेत के कणों के समान ही पर्वत उड़ रहे थे।

भगवान शिव के दोनो चरण नाश और निर्माण दोनों ही उनकी नृत्य में सम्मिलित थे। उनके चरण नृत्य में गतिमान थे। उस समय अनाहत नाद हो रहा था।

बिखरे खोल।

शब्दार्थ—ब्रह्माण्ड=विश्व। तोल=तोल कर, नियमानुसार। विद्युत-कटाक्ष=बिजली सी दृष्टि। कम्पित=विकासशील। संसृति=सृष्टि। विलीन होते=नष्ट होते। महा दोल = विराट झूला। पट=पर्दा।

भावार्थ—शिव के ताण्डव से अनगिनत गोल ब्रह्माण्ड बन कर बिखर रहे थे। युग नियमानुसार उन ब्रह्माण्डों को त्याग रहा था और ग्रहण कर रहा था। जब समय व्यतीत हो जाता था तो ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता था और नए ब्रह्माण्ड का निर्माण होता था।

जिस ओर भगवान शिव की बिजली जैसी दृष्टि जाती थी उसी ओर मंचल सृष्टि का निर्माण हो रहा था। असंख्य चेतन परमाणु बिखर रहे थे। वे एक क्षण में बनते और दूसरे ही क्षण विलीन हो जाते थे।

एक विराट झूले में झूलता सा दिखाई देता था। धीरे धीरे परिवर्तन गति शील था।

उस हास।

शब्दार्थ—शक्ति शरीरी=शक्ति की मूर्ति। नर्तन=नृत्य। निरत=लीन। कांति सिन्धु=सौंदर्य का सागर। कमनीय=मधुर। भीषणता=भयङ्कर। हीरक गिरि=हीरे का पर्वत। विद्युत विलास=बिजली की चमक। उल्लसित=प्रफुल्ल। हिम धवल हास=बर्फ के समान शुभ्र हँसी।

भावार्थ—शक्ति की प्रतिमा भगवान शिव की ज्योति सब पापों और दुखों का विनाश कर नृत्य में लीन थी।

प्रकृति मिल कर और उस सौन्दर्य के सागर में घुल मिल कर मधुर रूप धारण कर रही थी। इस प्रकार भयङ्कर से भयङ्कर दृश्य भी अत्यन्त रमणीय बन गया था।

नटराज के मुख पर बर्फ के समान शुभ्र हँसी विद्यमान थी। ऐसा प्रतीत मानो हीरे के पर्वत के ऊपर बिजली चमक रही है। शिव का मुख हीरे के पर्वत के समान ज्योतित था और उनकी हँसी बिजली के समान थी।

देखा येश।

भावार्थ=—नर्तित=नाचते हुए। नटेश=नटराज शिव। रुद्र चेत=मनोरोग निज संबल=अपना सहारा। पावन=पवित्र। ज्ञान-लेश=ज्ञान के चिह्न।

भावार्थ—जब मनु ने नाचते हुए नटराज को देखा तो वह मनोरोग पुकार उठे—

हे श्रद्धा! यह क्या ही अपूर्व दृश्य है। अब तो तू मुझको अपना सहारा नटराज के चरणों तक ले चल जिसमें सार पाप और पुण्य जल कर पवित्र और उज्ज्वल हो जाते हैं।

जहाँ जाकर सम्पूर्ण तर्क भी मिथ्या के समान विलीन हो जाता है। जहाँ सारी सृष्टि समत्व से अनुप्राणित है और जहाँ केवल आनन्द ही आनन्द है।

विशेष—यहाँ प्रसाद के आनन्दवादी दर्शन की बड़ी सरस और स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। प्रसादजी के आनन्दवाद की उच्चतम अवस्था में पाप और पुण्य ज्ञान और तर्क आदि का कोई स्थान नहीं है।

रहस्य

जब नर्तित नटेश का दर्शन प्राप्त कर मनु श्रद्धा से उनके चरणों तक ले चलने की अभिलाषा प्रकट करते हैं, तो वह उन्हें हिमालय पर्वत के ऊपर ले चलती है, उस ऊँचे प्रदेश में सर्वत्र शान्ति व्याप्त है। चारों ओर बर्फ दिखाई देती है। श्रद्धा आगे आगे चली जा रही थी और मनु उसके पीछे चले जा रहे थे।

सामने से तेज वायु के झोंके आते थे। वे मानो पथिकों से यह कहते थे "तुम वापिस लौट जाओ। तुम क्यों अपने प्राणों को मृत्यु के मुँह में ले जा रहे हो?" पर्वत की ऊँचाई सीधी ऊपर चली गई थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह आकाश को छू लेना चाहती थी। भयंकर खड्ड और खाइयाँ दिखा- दिखाई देती थीं। नीचे बिजली भरे बादल उड़ रहे थे। सैकड़ों शीतल झरने बह रहे थे।

मनु ने श्रद्धा से कहा—"श्रद्धे! तू मुझे कहाँ लिए जा रही है? मैं अब बहुत थक गए हूँ। मेरा साहस छूट गया है और मेरी आशाएँ टूट गई हैं। अब वापिस नहीं चला। अब मैं इस भयंकर तूफान से नहीं लड़ सकता। जिनसे मैं रूठ कर चला आया हूँ वे मेरे ही हैं। मैं उन्हीं के पास जाना चाहता हूँ।"

यह सुनकर श्रद्धा के विश्वास पूर्ण मुख पर मधुर मुस्कराहट बिखर गई। उसके हाथ मनु की सेवा करने के लिए लपकने उठे। उसने व्याकुल मनु को सहारा दिया और उनसे मीठे स्वर में बोली—अब तो हम बहुत आगे बढ़ आए हैं। यह मजाक करने का अवसर नहीं है।

दिशाएँ काँप रही हैं। समय अनन्त है। बता तो सही क्या तुम ऐसा अनुभव करते हो कि पवन तुम्हारे पाँव के नीचे है। हम इस समय निराधार हैं। किन्तु आज हम दोनों को यहीं ठहरना है। आज हम थके हुए पथिकों

के बोझे के समान ही हमें यहीं सा रहना है। अब घबराओ मत। चढ़ाई समाप्त हो गई है। देखा हम समतल पर आ गए हैं। मनु ने जब आँख खोल कर देखी तो उन्हें कुछ शान्ति प्राप्त हुई।

सन्ध्या का समय था। तारा, नक्षत्र आदि सब अस्त थे। यहाँ सदैव ही एक सा वातावरण रहता है। धरती की रेखा छिप सी गई थी। उस प्रदेश में एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता था।

वहाँ मनु ने तीन अलग अलग आलोक बिन्दुओं को देखा। मनु ने श्रद्धा से पूछा—"ये नए ग्रह कौन से हैं? मैं कहाँ आ पहुँचा हूँ? यह सब क्या है?

श्रद्धा ने उत्तर दिया—"इस त्रिकोण के केन्द्र तुम ही हो। तुम यदि प्रत्येक को ध्यान से देखो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि ये इच्छा, ज्ञान और कर्म के लोक हैं। यह जो लाल रंग का सुन्दर सा दिखाई देता है, जो ऊषा के सूर्य के समान मनोहर है यह इच्छा का लोक है। उसमें शब्द, स्पर्श रस, रूप और गंध की पुतलियाँ तितलियों के समान नाचा करती हैं। इस वसन्त के वन में ये अपने में ही लीन हो जाया करती हैं। इस संगीत है कास है और मादकता है। ये पाँचों पुतलियाँ आलिंगन की मधुर प्रेरणा देती हैं। यह लोक जीवन की प्रधान भूमि है जो प्रेम के रस से सिंचित होती है। इसमें लालसा की लहरें उठा करती हैं। यहाँ मधुर चित्रों का वैभव है। इसी लोक की भावभूमि से पाप और पुण्य का जन्म होता है। यहाँ नियम और भावनाओं का संघर्ष चलता रहता है। यहाँ वसन्त और पतझड़ दोनों हैं। यहाँ अमृत भी है और विष भी है।

मनु ने कहा ये लोक तो सुन्दर है। पर यह तो बताओ कि यह श्याम लोक कौन सा लोक है? इसका क्या रहस्य है?"

श्रद्धा ने कहा—"यह धुँधला और अँधेरा सा कर्म का लोक है। यह एक पहेली सा उलझा है। यहाँ इच्छाओं में ही कर्मों का नवीन जन्म होता है। यहाँ लोगों के परिश्रम मय कोलाहल है पीड़ा है संघर्ष है और क्षणभर का भी विश्राम नहीं है। सभी लोग कर्म के दास हैं। इस लोक में माया के सारे सुख दुखों का रूप ले रहे हैं। सब लोग हिंसा और हार में भी गर्व का अनुभव करते हैं।

का रूप ले रहे हैं । सब लोग हिंसा और हारों में भी गर्व का अनुभव करते हैं ।

यहाँ के व्यक्ति भौतिकता में लीन रह कर भी सदैव जीवित रहना चाहते हैं । वे सन्तोष नहीं करते । भयभीत होकर प्रति क्षण कुछ न कुछ करते ही रहते हैं । नियति इस क्रम को चलाती है । यहाँ के लोग सभी सपने में लीन रहते हैं और व्यक्ति असफल होकर पीड़ित रहते हैं । यहाँ का शासन विभव का गमन करती है और भूखी जनता का सिर फिर चरणों पर गिरवाती है । सभी उन्नति के अभिलाषी हैं और पीड़ा को जन्म देते हैं । यहाँ का सारा वैभव मृग जल के समान मिथ्या है । यहाँ युद्ध का भयङ्कर गर्जन हो रहा है जिससे सृष्टि नष्ट भ्रष्ट होती रहती है ।

मनु ने कहा—बस अब इसके विषय में और कुछ मत कह । यह तो अत्यन्त भयङ्कर कर्म जगत है । यह चाँदी के समान उज्ज्वल तीसरा लोक कौन सा है ।

श्रद्धा ने प्रेमपूर्वक कहा—यह ज्ञान का लोक है । यहाँ के व्यक्ति सुख और दुख से उदासीन हैं । यहाँ का न्याय बड़ा कठोर है और बुद्धि किसी पर भी दया नहीं करती । ये लोग सूक्ष्म तर्क से अस्ति-नास्ति का भेद किया करते हैं । वैसे तो ये निस्संग बनते हैं पर किसी प्रकार मुक्ति से अपना नाता जोड़ लेते हैं । यहाँ पुण्य तो मिलता है किन्तु तृप्ति नहीं मिलती ।

यहाँ के लोग न्याय तप और ऐश्वर्य में लीन बहुत गरिमामय से लगते हैं । इस दुखपूर्ण संसार में झरनों के समान दिखाई करते हैं । ये घन से मरुभूमि नहीं किए जा सकते । अपना छोटा सा पात्र लेकर बूँद बूँद करके जीवन का रस माँग रहे हैं । ये तो कमल वाले तालाब के समान उत्तम हैं जिनके ऊपर मधु मक्खियाँ शब्द गुंजित करती हैं । ये स्वयं अपनी साधना का लाभ नहीं उठा सकते । यहाँ जीवन का आनन्द अछूता रहता है । ये सामंजस्य करने का प्रयास करते हैं किन्तु स्वयं ही विषमता फैलाने लगते हैं । ये वैसे तो शान्त बने रहते हैं किन्तु शासन की रक्षा में निश्चिंत हैं ।

जो तुमने देखा है, यही त्रिपुर है । ये तीन ज्योतिर्मय बिन्दु हैं किन्तु अपने आप में ही लीन हैं और एक दूसरे से भिन्न हैं । जब ज्ञान और क्रिया

में ही सामंजस्य नहीं है तो मन की इच्छा कैसे पूरी हो सकती है। जीवन की यही विडम्बना है कि इन तीनों की एक रसता स्थापित नहीं हो सकती।

उस समय श्रद्धा की मुस्कान ताम्र प्रकाश की किरण के समान उन में दौड़ गई और वे तीनों सम्बद्ध हो उठे। उनमें शक्ति की नई तरंग जाग उठी थी। सारे विश्व में शृंग और डमरू की ध्वनि गूँज उठी। स्वप्न, सुषुप्ति और जागरण मिट गए थे। इच्छा क्रिया और ज्ञान मिलकर लीन हो गए थे। श्रद्धा सहित मनु उस स्वर्गीय नन्द में लीन थे।

इस सर्ग में प्रसाद जी का जीवन सम्बन्धी चिन्तन मुखर हो उठा है। जीवन की विषमता का कारण है इच्छा, ज्ञान और क्रिया का भिन्न रहना। एक एक को अलग से अपना कर जीवन सुखी नहीं हो सकता।

शिव को त्रिपुरारि कहा जाता है क्योंकि उन्होंने त्रिपुर नाम के एक असुर का वध किया था। यहाँ प्रसादजी ने एक अन्य ही त्रिपुर की कल्पना की है। श्रद्धा की मुस्कराहट के द्वारा इस त्रिपुर का लय होता है। इसके द्वारा प्रसाद ने श्रद्धा को अलौकिक शक्ति के रूप में वर्णित किया है।

ऊर्ध्व   अभिमानी।

शब्दार्थ—ऊर्ध्व देश = ऊँचा प्रदेश। नील तमस = हल्का अंधकार। स्तब्ध=शान्त। अचल=जड़। हिमानी = बर्फ। चतुर्दिक=चारों दिशाओं में।

भावार्थ—उस ऊँचे प्रदेश में और हल्के अंधकार में जड़ बर्फ बिल्कुल शान्त थी। सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य था। यहाँ तो मार्ग भी थक कर छिप गया है। पर्वतों पर बहुत ऊँचे जाने पर पगडंडियाँ भी लीन हो जाती हैं। कवि यहाँ हेतूत्प्रेक्षा करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वत अपनी ऊँचाई के गर्व में भर चारों दिशाओं में देख रहा है।

दोनों   चढ़ते।

शब्दार्थ—पथिक=मुसाफिर—मनु और श्रद्धा।

भावार्थ—श्रद्धा और मनु को चलते-चलते बहुत देर हो गई थी। दोनों ऊँचाई पर चढ़ते ही जा रहे थे। श्रद्धा आगे चल रही थी और मनु उसके

पीछे रह जा रहे थे। दोनों साहस और उत्साही के समान बढ़ते थे। जिस प्रकार साहस ही उत्साही व्यक्ति को आगे बढ़ने को प्रेरित करती है उसी प्रकार श्रद्धा भी मनु को आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रही है। उपमा अलंकार। उपमेय स्थूल है और उपमान सूक्ष्म।

पवन निर्मोही ।'

शब्दार्थ—पवन-वेग = वायु की गति। प्रतिकूल=विरोधी, खिलाफ। बटोही=पथिक। भेद कर=चीर कर। निर्मोही=अनासक्त।

भावार्थ—वायु के झोंके विपरीत दिशा से बड़ी तेजी से आ रहे थे। वह पथिकों को आगे बढ़ने से रोकता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कह रहा हो—अरे पथिक! वापिस चला जा। तू मुझे चीर कर कहाँ चला जा रहा है! तू क्यों अपने प्राणों से उदासीन हो रहा है! ऊपर जाने से तेरे प्राणों का भय है।

छून छोंह ।

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश। मचली-सी=व्याकुल सी। सतत=निरन्तर। विवृत = कट फट खाई—गड्ढे से युक्त। प्रगट थे=दिखाई दे रहे थे। भीषण= भयंकर। भयकरी=भयभीत करने वाली।

भावार्थ—पर्वत की ऊँचाई निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह आकाश को छू लेने के लिए व्याकुल सी है। उसके अंग कटे फटे थे। उसमें भयंकर गड्ढे और भय उत्पन्न करने वाली खाइयाँ दिखाई दे रही थीं।

रविकर आता ।

शब्दार्थ—रविकर=सूर्य। हिमखंड=बर्फ की शिलाएँ। हिमकर=चन्द्रमा। द्रुततर = अत्यन्त तेज।

भावार्थ—सूर्य जब बर्फ की शिलाओं पर चमकता था तो उनमें कितने ही नए चन्द्रमा दिखाई देने लगते थे। वायु भी अत्यन्त तेजी से साथ चक्कर काट कर चली आ जाता था।

सूर्य के प्रतिबिम्ब चन्द्रमा के समान थे, इससे सूर्य की भी क्षीणता प्रकट होती है।

नीचे गहने ।

शब्दार्थ—जलधर=बादल । सुर धनु=इन्द्रधनुष । कुंजर=हाथी । कलभ= हाथी का बच्चा । सदृश = समान । चपला=बिजली ।

भावार्थ—नीचे इन्द्र धनुष की सुन्दर माला पहने हुए दौड़ रहे थे । जैसे कोई हाथी का बच्चा गले में माला पहने गहनों से सुशोभित होकर इठलाते हुए चलते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी बिजली के गहने चमकाते हुए चल रहे हैं ।

इस छन्द से तथा नीचे के छन्दों से ज्ञात होता है कि मनु और श्रद्धा बहुत ऊँचाई पर पहुँच गए हैं ।

प्रवहमान जैसे ।

शब्दार्थ—प्रवहमान थे=बह रहे थे । निम्न देश=नीचे का भाग । शत शत=सैकड़ों । निर्झर=झरने । श्वेत=सफेद । गजराज-गण्ड=विशाल हाथी का कपोल । मधु धाराएँ=मद की धाराएँ ।

भावार्थ—नीचे के भाग में सैकड़ों झरने बह रहे थे । वे विशाल हाथी के कपोल से बहती हुई मद के धारा के समान दिखाई देते हैं । उपमा अलङ्कार ।

हरियाली भगत ।

शब्दार्थ—उभरी=उठी हुई । समतल=सम भूमि । चित्रपटी=चित्र फलक । प्रतिकृतियों=आकृतियाँ । बाह्य रेख=बाहरी रेखाएँ । प्रतिपल=प्रतिक्षण ।

भावार्थ—ये समभूमियों के भाग जिनकी हरियाली उभरी हुई थी, व चित्र बनाने के फलक के समान दिखाई देती थीं । दूर से देखने पर पर्वत की हरियाली सुन्दर तख्ते के समान दिखाई देती है । उसमें प्रतिक्षण बहती हुई नदियाँ दिखाई देती थीं । किन्तु दूरी के कारण उनका प्रवाह दिखाई नहीं देता और वे स्थिर दिखाई देती हैं । ऐसा प्रतीत होता है वे मानो उस हरी चित्रपटी पर बनी हुई आकृतियों की बाहरी रेखाएँ हैं ।

लघुतम सवेरा ।

शब्दार्थ—लघुतम=अत्यन्त छोटा । वसुधा=धरती । महा शून्य=विराट आकाश । ऊँचे चढ़ने—रहा सवेरा=यहाँ ऊपर चढ़ने की रात का सवेरा हो

रहा था, चढ़ाई समाप्त हो रही थी।

भावार्थ—उस समय धरती के सब दृश्य अत्यन्त छोटे दिखाई देते थे। ऊपर विशाल आकाश फैला था। यहाँ आकर चढ़ाई रूपी रात का सवेरा हो रहा था, चढ़ाई समाप्त हो रही थी।

साधक जैसे जैसे साधना में आगे बढ़ता है, उसे सांसारिक वस्तुएँ क्षुद्र दिखाई देती हैं। ईश्वर के दर्शन से पूर्व उसे शून्य का सा अनुभव होता है।

"कहाँ पथिक हूँ।

शब्दार्थ—निरवलम्ब=बे सहारा। भग्ननाश=जिसकी आशाएँ टूट गई हों।

भावार्थ—मनु ने श्रद्धा से कहा— 'अब तुम मुझे कहाँ ले आ रही हो। मैं तो अब बहुत अधिक थक गया हूँ। मेरा साहस छूट गया है। मैं अब बे सहारा हूँ। मैं एक ऐसा पथिक हूँ जिसकी आशाएँ टूट गई हैं।

लौट सकूँगा।

शब्दार्थ—वात-चक्र=वायु का तूफान। श्वास=साँस। रुद्ध करने वाले=रोकने वाले। शीत=ठण्डी।

भावार्थ—हे श्रद्धा! अब मुझे वापिस ले चलो। मैं बहुत कमजोर हूँ और वायु के इस तूफान से अब मैं लड़ नहीं सकता। यह हवा बहुत ठण्डी है और इसमें तो मेरी साँस रुकी जाती है। अब मैं इस वायु को सहन नहीं कर सकता।

मेरे हूँ।"

शब्दार्थ—सुदूर=बहुत दूर।

भावार्थ—मैं जिनसे छूट कर यहाँ चला आया हूँ वे सब मेरे अपने सम्बन्धी थे। वे सब बहुत नीचे, बहुत दूर छूट गए हैं किन्तु मैं उन्हें भूल नहीं पाया हूँ। अब भी उनकी याद मुझे व्याकुल कर देती है।

विशेष—इन दोनों छन्दों में साधक के विघ्नों और उसके मन की स्थिति का वर्णन है। साधक साधना की कठिनाई से तो ऊब जाता है। तूफान

अन्य विघ्नों का प्रतीक है। साधक को आगे बढ़ते समय ममत्व भी सताता है। प्रतीकात्मक रूप से ये बातें भी वर्णित हैं।

वह थी।

शब्दार्थ—स्मिति=मुस्कान। निरकुंश=पवन। कर=हाथ। पल्लव=कोंपल। ललक उठी=ललचा उठी।

भावार्थ—यह सुनकर श्रद्धा विचलित नहीं हुई। उसके मुख पर विश्वास मय पावन मुस्कान बिखर गई। उसके कोंपल जैसे कोमल हाथ मनु की सेवा करने के लिए ललचा उठी।

श्रद्धा उसी प्रकार मनु को प्रेरित करती है जैसे कि गुरु अपने शिष्य को साधना में प्रवृत्त रखता है।

ये ठिठोली।

शब्दार्थ—अवलंब=सहारा। विकल=व्याकुल। ठिठोली=मजाक।

भावार्थ—कामायनी ने थके हुए मनु को सहारा दिया और मीठी वाणी में उनसे बोली—' अब तो हम लोग बहुत दूर बढ़ आए हैं। यह मजाक का अवसर नहीं है। इस समय वापिस लौटने की बात सोचना तो मजाक ही है।

दिशा है।

शब्दार्थ—विकम्पित=कॉंपती है। पल=क्षण, समय। असीम=अनन्त। पद तल=पाँव के नीचे। भूधर=पर्वत।

भावार्थ—सारी दिशाएँ चंचल सी दिखाई देती हैं। समय अनन्त है। ऊपर असीम के समान आकाश व्याप्त है। बताओ तो सही क्या तुम अपने पाँव के नीचे पर्वत का अनुभव करते हो।

निराधार है।

शब्दार्थ—निराधार=शून्य में। नियति=भाग्य।

भावार्थ—हम इस समय शून्य में चल रहे हैं। किन्तु आज हम दोनों का यहीं ठहरना है। चलो आज भाग्य का खेल देखें। जो कुछ होगा उसे सहन करें। अब इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

गए । भू-मंडल=धरती । विलीन-सी=छिपी सी । उदित=प्रकाशित । सचेतनता=स्फूर्ति ।

भावार्थ—यहाँ ऋतुओं की विभिन्नता नहीं थी । सदैव एक सी ही ऋतु रहती थी । यहाँ से धरती की रेखा छिप सी गई थी । उस निराधार विस्तृत प्रदेश में एक नई स्फूर्ति का अनुभव होता था ।

त्रिदिक ... थे ।

शब्दार्थ—त्रिदिक=तीन दिशाएँ । आलोक बिन्दु=प्रकाश के बिन्दु । त्रिभुवन=तीन लोक । अनमिल=भिन्न भिन्न । सजग=चेतन ।

भावार्थ—उस समय ससार सामने की तीनों दिशाओं में विस्तृत दिखाई दे रहा था । पर्वत की ऊँचाई के कारण पीछे की ओर कुछ भी दिखाई नहीं देता था । वहाँ मनु को तीन प्रकाश के बिन्दु अलग-अलग दिखाई पड़े । ऐसा प्रतीत होता था मानो वे तीनों लोकों के प्रतिनिधि थे ।

मनु ... बचाओ ।"

शब्दार्थ—इन्द्रजाल=माया ।

भावार्थ—मनु ने श्रद्धा से पूछा—"ये कौन से नए ग्रह हैं ? मुझे इनके विषय में बताओ । मैं कहाँ आ पहुँचा हूँ ? यह क्या माया जाल है ? तुम मुझको इस से बचाओ ।"

'इस ... थे ।

शब्दार्थ—त्रिकोण=तिकोन । मध्य बिंदु=केन्द्र विन्दु । विपुल=बहुत अधिक । क्षमता=सामर्थ्य ।

भावार्थ—श्रद्धा ने कहा—"तुम इस तिकोन के केन्द्रीय बिन्दु हो । ये अपार शक्ति और सामर्थ्य वाले हैं । एक-एक को ध्यान से देखो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि ये इच्छा ज्ञान और क्रिया के नक्षत्र हैं ।

प्रथम पंक्ति से इन तीनों लोकों का प्रतीकात्मक रूप भी स्पष्ट है ।

वह ... मदिर ।

शब्दार्थ—रागारुण=लाल रंग का, प्रेममय । उषा के कन्दुक-सा=प्रभात

के सूर्य बिम्ब के समान–उपमा अलंकार। छायामय=धूमिल। कमनीय= आकर्षक। कलेवर=शरीर। भावमयी प्रतिमा=भाव की मूर्ति।

भावार्थ—यह देखो जो प्रभात के सूर्य बिम्ब के समान लाल है और जो धुँधला सा और आकर्षक है, यह भावों की मूर्ति का मन्दिर है।

जीवन का पक्ष—इच्छा का संसार प्रेमपूर्ण है। प्रेम का रंग लाल माना जाता है इसलिए इच्छा लोक को लाल कहा जाता है। इच्छाएँ बहुत आकर्षक होती है और भावों को जन्म देने वाली होती हैं।

शब्द तितलियाँ।

शब्दार्थ—पारदर्शिनी=जिनके पार देखा जा सके, सूक्ष्म। सुघड़=सुन्दर। रूपवती=सुन्दर।

भावार्थ—इस लोक में शब्द, स्पर्श, रस रूप और गंध की सुन्दर और सूक्ष्म पुतलियाँ हैं। वे सुन्दर रंग बिरंगी तितलियों के समान यहाँ चारों ओर, नाचा करती हैं।

जीवन का पक्ष—इच्छा के संसार में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पाँचों विषय अत्यन्त रमणीय लगते हैं। ये ही मनुष्य को अनुरक्त करके उसके मन में इच्छाएँ उत्पन्न करते हैं।

इस में।

शब्दार्थ—कुसुमाकर=बसंत। कानन=वन। अरुण=लाल। पराग पटल= सुगन्धि का आँचल। माया = आकर्षण।

भावार्थ—ये लोक बसंत के प्रफुल्लवन के समान शीतल और रमणीय है। इसके सुगन्धि पूर्ण आँचल की लाल छाया में विषयों की ये पुतलियाँ सोया और जागा करती हैं। ये सदैव अपनी भावनामय मोहकता में ही लीन रहती हैं।

जीवन का पक्ष—इच्छाओं का संसार बसंत के खिले हुए सुगन्धि पूर्ण वन के समान है। मनुष्य की इच्छाएँ उसे बहुत मधुर लगती हैं। मनुष्य के हृदय में पाँचों विषय सदैव उदित और अस्त होते रहते हैं। ये अत्यन्त आकर्षक हैं।

यह ..... वृती।

शब्दार्थ—सगीतात्मक ध्वनि=मधुर गान। अँगड़ाई लेती है=मोहक रूप में मुखर है। मादकता=मस्ती। अंबर=आकाश, हृदय।

भावार्थ—इन विषयों की पुतलियों का मोहक सगीत अत्यन्त मधुर रूप में व्यक्त होता है। ये सगीत मस्ती की ऐसी लहर उठाती है जो उसके सारे आकाश में व्याप्त हो जाती है।

जीवन का पक्ष—ये विषय मनुष्य के जीवन म माधुर्य और सौंदर्य का सचार करते हैं। ये मनुष्य के हृदय को मस्ती से भर देते हैं।

आलिंगन ..... मूँदती।

शब्दार्थ—मधुर प्रेरणा=मीठी उत्तेजना। सिहरन=रोमाँच। अलम्बुषा=छुई मुई। व्रीडा=लज्जा।

भावार्थ—इस लोक में आलिंगन के समान मधुर लालसा व्यक्त होकर रामच बन जाती है। जिस प्रकार नवीन छुई-मुई खुल जाती है और फिर हाथ लगाने पर जैसे छुई मुई मुरझा जाती है, उसी प्रकार वह लालसा भी शान्त हो जाती है।

जीवन का पक्ष—मनुष्य के हृदय में आलिंगन के समान मधुर कामना जाग उठती है जिसके कारण शरीर रोमांचित हो जाता है। कभी कामना शान्त हो कर मुरझा जाती है और थोड़े समय के पश्चात फिर जाग उठती है।

यह ..... होती।

शब्दार्थ—मध्य भूमि=मुख्य भूमि। रस धारा=आनन्द की धारा। लालसा=कामना। प्रवाहिका=नदी। स्पन्दित=चचल।

भावार्थ—यह जीवन की मुख्य भूमि है। उसमें आनन्द की नदी बहती है। वह नदी कामना की लहरों से चचल होती रहती है।

जीवन का पक्ष—इच्छा का संसार ही जीवन का मध्य भाग है। मध्य भूमि से यौवन का भी आशय है क्योंकि यौवन काल में ही इच्छाओं का मधुर एव तीव्र जागरण होता है। यह आनन्द की धारा से परिपूर्ण है। यह

आनन्द की नदी कामना की रमणीय लहरों से तरंगित होती है। यौवन में विविध कामनाएँ उठा करती हैं जो आनन्द की प्राप्ति कराती हैं।

जिसके ... मतवाले।

शब्दार्थ—विद्युत-कण से=बिजली के कण के समान उपमा अलंकार। मनोहारिणी = मन को हरने वाली, मधुर। आकृति=रूप। छायामय=शीतल। सुषमा=सौन्दर्य। विह्वल=व्याकुल।

भावार्थ—इस आनन्द की नदी के किनारे बिजली के कण के समान कांतिमान और सुन्दर मतवाले व्यक्ति घूमा करते हैं। इन सबका रूप अत्यन्त आकर्षक है और ये सब के सब शीतल सौंदर्य के कारण व्याकुल बने रहते हैं।

जीवन का पक्ष—आनन्द रूपी नदी के किनारे पर सुन्दर मनुष्य घूमा करते हैं। सभी युवक इस भूमि के आनन्द को प्राप्त करने के लिए व्याकुल रहते हैं। बसन्त के सब शीतल सौंदय के प्रभाव से उद्दीप्त रहते हैं।

सुमन ... झीनी।

शब्दार्थ—सुमन=फूल। संकुलित=युक्त। भूमि रन्ध्र=धरती का छिद्र। रस भीनी=आनन्द से युक्त। वाष्प=भाप। अदृश्य=सूक्ष्म। झीनी=नन्हीं।

भावार्थ—इच्छा लोक की धरती फूलों से युक्त है। उस भूमि के छिद्रों से रसमय मधुर सुगन्धि उठती रहती है। फूलों से लदी हुई धरती में फूलों के बीच में छिद्र दिखाई देते हैं। उन्हीं छिद्रों को धरती के छिद्र कहा गया है। उन छिद्रों से सूक्ष्म भाप के फुहारे छूटा करती हैं जिनकी नन्हीं नन्हीं बूंदें रसीली होती हैं।

जीवन का पक्ष—मन की विविध इच्छाओं से हृदय में माधुर्य का संचार होता है। प्रेमियों के श्वास प्रेम की सुगन्धि से युक्त और रसमय होते हैं।

घूम ... माया।

शब्दार्थ— चतुर्दिक=चारों दिशाओं में। चल चित्रों सी=चंचल दृश्यों के समान-उपमा अलंकार। संसृति-छाया=निर्माण की छाया। आलोक-बिन्दु= प्रकाश का बिन्दु। माया=मोहिनी शक्ति।

भावार्थ—यहाँ चारों दिशाओं में चंचल दृश्यों का निर्माण होता रहता है। मोहिनी शक्ति इस प्रकाशमान ग्रह को घेर कर मुस्कराती हुई बैठी रहती

है। मोहिनी शक्ति ही इसकी स्वामिनी है।

जीवन का पक्ष—इच्छा से पूर्ण युवकों के जीवन में विविध कल्पनाएँ बनती मिटती रहती हैं वे नए-नए स्वप्न देखते रहते हैं। मोहिनी शक्ति ही युवकों को अपने जाल में उलझा कर मुस्कराती रहती है।

भाव चक्र   चूमती।

शब्दार्थ—भाव-चक्र=भावों का चक्र। रथ-नाभि=रथ के पहिए की धुरी। अराएँ=पहिए की तीलियाँ। अविरल निरन्तर। चक्र वाल=पहिए का गोल भाग।

भावार्थ—यह मोहिनी शक्ति ही भाव-चक्र को चला रही है। इस भाव के चक्र में इच्छा की धुरी है। उसमें नौ रसों की तीलियाँ लगी हैं जो पहिए के गोल भाग को चूमती रहती है। यह मोहिनी शक्ति इस भाव के चक्र को निरन्तर चलाती रहती है।

साधन का पक्ष—हृदय की मोहनी शक्ति ही मनुष्य के भावों को जन्म देती है। इच्छाएँ भावों के मूल हैं और उस इच्छा से नवों रसों का जन्म होता है।

यहाँ   फँसना।

शब्दार्थ—मनोमय=इंद्रियों और मन का संसार। वेदान्त के अनुसार पाँच कोष माने जाते हैं। शरीर अन्नमय कोष है। पंच प्राण प्राणमय कोष के अन्तर्गत आते हैं। मन और इन्द्रियाँ मनोमय कोष के भीतर आते हैं। बुद्धि विज्ञानमय कोष और आत्मा आनन्दमय कोष है। रागारुण=प्रेम से लाल। माया-राज्य=मोहिनी शक्ति का राज्य। परिपाटी=पद्धति। पास=जाला।

भावार्थ—यहाँ मनोमय संसार प्रेम से लाल चेतना की उपासना किया करता है। यहाँ तो मोहिनी शक्ति का राज्य है। इसका यही ढंग है कि यहाँ जाल बिछाकर जीव फँसाए जाते हैं।

इच्छाओं के वशीभूत होकर मनुष्य प्रेम की ही उपासना में तल्लीन रहता है। यहाँ आकर्षण का जाल बिछा रहता है जिसमें युवक और युवतियाँ फँस जाते हैं।

झूले ।

ये

शब्दार्थ—अशरीरी=सूक्ष्म । वर्ण=रंग । गन्ध=सुगन्धि ।

भावार्थ—इस इच्छा के लोक में सूक्ष्म सौन्दर्य फूल के समान केवल रंग और सुगन्धि में व्यक्त हो रहा है । सौंदर्य एक ऐसे फूल के समान है जिसमें केवल रंग और सुगन्धि ही है । यहाँ अप्सरियाँ झूलों पर चढ़कर सुन्दर गीत गाया करती हैं । यहाँ सूक्ष्म सौन्दर्य और संगीत का सर्वत्र प्रचार है ।

की ।

भाव

शब्दार्थ—भाव-भूमिका = सुख तथा दुःख आदि भावों की पृष्ठभूमि । जननी=जन्म देने वाली । प्रतिकृति=प्रतिमूर्ति ।

भावार्थ—इसी लोक के सुख दुःखमय भावों की पृष्ठभूमि में ही पाप और पुण्य का जन्म होता है । जिससे मन को शान्ति होती है वह पुण्य है और जिससे मन में ग्लानि होती है वह पाप है । सभी व्यक्ति मधुर दुःखों की आग में जलकर ही अपने स्वभाव की प्रतिमूर्ति बन जाते हैं । जीवन की मीठी आग में तपकर प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार ही रूप धारण करता है ।

खिलना ।

नियम मयी

शब्दार्थ—नियममयी=नियम की । उलझन=दुविधा । लतिका=लता । भाव विटप = भाव रूपी वृक्ष । नभ-कुसुम = आकाश का फूल, मिथ्या । सांग रूपक अलंकार ।

भावार्थ—जिस प्रकार लता वृक्ष से आकर लिपट जाती है और फिर छूट नहीं सकती उसी प्रकार यहाँ नियमों से उलझ दुविधा भावों से टकरा जाती है । जिस प्रकार लता और वृक्षों के उलझने से जगल दुर्गम हो जाता है, उसी प्रकार भाव और नियम की उलझन का संघर्ष जीवन की समस्या बन जाता है । मनुष्य का हृदय उसे एक ओर खींचता है और बुद्धि दूसरी ओर । ऐसी अवस्था में मनुष्य कुछ निश्चित नहीं कर पाता । मनुष्य की आशाएँ आकाश-फूलों के समान ही अपूर्ण रहती हैं । मनुष्य की आशाएँ कभी पूर्ण ही नहीं होतीं ।

हैं ।"

चिर

शब्दार्थ—चिर वसन्त=शाश्वत वसन्त, सौन्दर्य । उद्गम = जन्म स्थान ।

हलाहल=विष ।

भावार्थ—यह लोक ही शाश्वत बसंत के से सौंदर्य और ऐश्वर्य को जन्म देता है। यहाँ एक ओर पतझर भी है। इच्छाएँ सुख को जन्म भी देती हैं और दुख को भी। यहाँ अमृत और विष दोनों ही हैं, सुख और दुख दोनों ही एक डोरी में बँधे हैं। इच्छाओं के कारण जीवन में सुख भी होता है और दुख भी। इच्छा ही सुख और दुख को जीवन की एक डोरी में बाँधते हैं।

"सुन्दर   है ?

शब्दार्थ—श्याम=काला ।

भावार्थ—मनु ने कहा—"यह जो इच्छा का लोक तुमने दिखाया है, यह तो सुन्दर है। पर यह तो बताओ कि यह कालालोक कौन-सा है ? इसकी क्या रहस्यमय विशेषताएँ हैं ?"

"मनु   धूम धारसा ।

शब्दार्थ—श्यामल = काला । सघन=घना उलझन वाला । अविज्ञात = अज्ञात, जटिल । धूम धार=धुँए की धारा ।

भावार्थ—श्रद्धा ने मनु से कहा—"यह काले रंग वाला कर्मलोक है। यह कुछ-कुछ अंधकार के समान धुँधला है। यह बड़ा रहस्यमय और घना है। यह देश धुँए के समान मलिन है।

जीवन का पक्ष—मनुष्य के जीवन में असंख्य कर्म हैं। किन्तु यह उनके विषय में कोई निश्चित मत या सिद्धान्त नहीं बना पाता। कर्म की गति मनुष्यों के लिए अज्ञात है। कर्मों की समस्या एक जटिल समस्या है। कर्मों में फँसकर मनुष्य के हृदय की सहज सरलता नष्ट हो जाती है, इसलिए कर्म लोक को मलिन कहा गया है।

कर्म चक्र   एषणा ।

शब्दार्थ—गालक=गोला । नियति प्रेरणा=भाग्य की प्रेरणा । व्याकुल=

व्याकुल करने वाली—विशेषण विपर्यय। एषणा=इच्छा।

भावार्थ—यह सारा कर्म के चक्र के समान निरन्तर घूमता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह भाग्य की प्रेरणा से चक्कर काट रहा है। यहाँ के सब व्यक्तियों के पीछे कोई न कोई व्यग्र कर देने वाली नई इच्छा लगी रहती है।

जीवन का पक्ष—मनुष्य जीवन में भाग्य की प्रेरणा से असंख्य कर्मों में लीन रहता है। कभी उन्नति करता है और कभी अवनति करता है। इस प्रकार जीवन में कर्म का चक्र सा चलता रहता है जिसके मूल में भाग्य ही होता है। प्रत्येक कर्म के मूल में कोई न कोई नई इच्छा रहती है जो मनुष्य को कर्म करने के लिए व्याकुल किया करती है।

श्रम मय सत्य का।

शब्दार्थ—श्रममय=मेहनत से युक्त। कोलाहल=शोर। विकल=व्याकुल। प्रवर्तन=चलना। प्राण=मनुष्य। क्रिया तन्त्र=कर्म का शासन।

भावार्थ—इस लोक से कड़ी मेहनत से युक्त शोर सुनाई देता है। दुःख और विपत्तियों में बाँधने वाले महायन्त्र चल रहे हैं। यहाँ के मनुष्य का एक पल भर के लिए भी विश्राम नहीं है। सभी मनुष्य कर्म के शासन के अधीन हैं।

जीवन का पक्ष—जीवन में कर्म के कारण ही मनुष्य की मेहनत का शोर सुनाई देता है। जब मजदूर भारी काम करते हैं तो वे साथ में चिल्लाते भी जाते हैं। बड़े विशाल यन्त्र चल रहे हैं जिनके कारण दारुण जन्य पीड़ा और विपत्तियाँ सब को निराश कर देती हैं। सभी मनुष्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ करते रहते हैं। उन्हें एक क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं कर पाता।

भाव-राज्य रहे हैं।

शब्दार्थ—भाव-राज्य = भावों का राज्य। सकल=सम्पूर्ण। मानसिक= हृदय के। मर्मोन्माद=मर्मस्थल में अकड़े हुए।

भावार्थ—भाव के शासन के जितने भी हृदय के सुख हैं वे सब यहाँ दुःख बनते जा रहे हैं। मनुष्य की भावनाएँ सुख के स्थान पर दुःख की जन्म दे रही हैं। और इस लोक के प्राणी हिंसा में लीन होकर और पराजित होकर

भी घमण्ड में अकड़े हुए घूमते दिखाई देते हैं।

जीवन का पक्ष—जब मनुष्य कर्मों के भीतर बहुत अधिक लीन हो जाता है तो उसके सुखमय भाव भी दुखदायी हो जाते हैं। इच्छा लोक का जो सौंदर्य पहले कवि ने बताया है वह सब नष्ट हो जाता है। मनुष्य हिंसा करता है दूसरों से पराजित होता है किन्तु फिर भी गर्व में भरा घूमा करता है और नित्य नवीन कर्म आरम्भ करता है।

ये कराहते।

शब्दार्थ—भौतिक=पंच भूतों के मिश्रण से बना। सदेह=देह सहित। भाव-राष्ट्र=भावों का संसार।

भावार्थ— इस लोक के भौतिक अणु युद्ध करके अपनी देह सहित अमर हो जाना चाहते हैं। भावों के संसार के नियम ही यहाँ पर सब के लिए दण्ड बन गए हैं और सब उनसे पीड़ित होकर कराह रहे हैं।

जीवन का पक्ष—मनुष्य कर्म करके अपने शरीर सहित अमर हो जाना चाहते हैं। मनुष्य अपने शरीर को अमर बना लेना चाहता है। कर्म में डूबे हुए मनुष्य के लिए भावनाओं के नियम ही दण्ड बन जाते हैं। उसके भाव उसके कर्म के साथ संघर्ष करते हैं और उसे नित्य पीड़ित किया करते हैं।

करते स।

शब्दार्थ—कशाघात=कोड़े की चोट। भीति विवश=भय से मजबूर होकर। कंपित=काँपते हुए।

भावार्थ—यहाँ के मनुष्य कर्म तो करते हैं किन्तु उन्हें जीवन में कभी भी सन्तोष नहीं रहता। उन्हें जीवन का आनन्द कभी भी प्राप्त नहीं होता। घोड़ा जब थक जाता है तो कोचवान उसे चाबुक से मारता है। चाबुक की मार से डरकर हाँफता हुआ भी घोड़ा भागने लगता है। वैसी ही दशा इन मनुष्यों की भी है। ये भयभीत होकर काँपते हुए और मजबूर होकर कर्म करते ही रहते हैं। वे एक क्षणभर के लिए भी विश्राम नहीं ले पाते। ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्हें भी कोड़े से मार रहा है।

मनुष्य के लिए उसकी उभरती हुई इच्छाएँ और अतृप्ति ही कोड़े की मार की पीड़ा है जो उसे एक क्षणभर के लिए भी शान्त नहीं बैठने देती।

नियति उपासना।

शब्दार्थ– तृष्णा जनित=हृदय की प्यास से उत्पन्न। ममत्व=मोह। पाणि पादमय=पाँव और चरणों से युक्त। पंचभूत=क्षिति जल, पावक, गगन, समीर

भावार्थ—भाग्य ही इस कर्म के चक्र को चलाता है। मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार ही शुभ या अशुभ कर्मों में लीन रहता है। मनुष्यों के हृदय प्यासे हैं वे आनन्द और सुख प्राप्त करना चाहते हैं। आनन्द की इस प्यास के कारण ही मनुष्य के मन में मोह और कामना तरंगित होते हैं। यहाँ पर तो हाथ और पाँव से युक्त पंच भौतिक शरीर की ही उपासना हो रही है।

कर्म में डूबा हुआ मनुष्य सदैव अपने शरीर के सुखों को जुटाने में ही लगा रहता है।

यहाँ है।

शब्दार्थ—सतत = निरन्तर। अन्धकार = लक्ष्य-शून्यता। मतवाला = पागल।

भावार्थ—इस लोक में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। यहाँ के सभी व्यक्ति अपनी साधना में असफल होते हैं, चारों ओर हलचल मची रहती है। सभी व्यक्ति वास्तविक लक्ष्य से अनभिज्ञ होकर उद्यम करते जाते हैं। यहाँ तो सारा समाज ही पागल हो रहा है।

कर्मलीन मनुष्य निरन्तर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया करता है किन्तु उसे सफलता नहीं मिलती।

स्थूल गति है।

शब्दार्थ– स्थूल=मूर्त। भीषण=भयकर। परिणति=अन्त। आकांक्षा= लालसा। तीव्र पिपासा=तीव्र प्यास। ममता=प्रेम। निर्मम गति=निष्करुण अवस्था, कठोर रूप।

भावार्थ—यहाँ के लोग विविध वस्तुओं का निर्माण कर उनकी स्थूलता में ही लीन हैं। कोई भी जीवन के सूक्ष्म सत्य को समझने का प्रयास नहीं करता। दृश्य वस्तुओं की उपयोगिता से ही इनका एकमात्र सम्बन्ध है। इसी लिए इनके कर्मों का परिणाम भयंकर होता है। जीवन में समरसता तभी आ सकती है जबकि हम जीवन के रहस्यमय सूक्ष्म रूप का मर्म और उसका

अनुभव करें । यदि हम ऐसा नहीं करते तो निस्सन्देह हमारे कर्मों का परिणाम भयङ्कर होगा ।

सभी व्यक्ति लालसा की प्यास से व्याकुल हैं । उनके हृदय में बड़ी बड़ी उच्च आकांक्षाएँ उठा करती हैं और वे उन्हें पूर्ण करने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहते हैं । यहाँ तो प्रेम की अवस्था भी बड़ी निष्करुण है । मनुष्य के प्रेम के पीछे भी उसकी स्वार्थ भावना ही काम करती दिखाई देती है । प्रेम को साधन बनाकर मनुष्य अपनी इच्छाओं को तृप्त करना चाहता है । इसीलिए प्रेम का स्वरूप भी विकृत हो गया है ।

यहाँ गिरघाती ।

शब्दार्थ—शासनादेश=हुकूमत की आज्ञा । हुङ्कार=नाद । विकल= व्याकुल । दलित=पिसा हुआ । पदतल=चरणों के नीचे ।

भावार्थ—यहाँ पर राज्य की ओर से विजय के नाद सुनाए जाते हैं । राज्य अपनी विजय पर गर्व से झूम रहे हैं । किन्तु इन राज्यों की वास्तविक दशा की ओर कोई भी देखने का प्रयास नहीं करता । वही शासन या विजय के घमण्ड में मस्त है, भूख से व्याकुल पिसे हुए व्यक्तियों को बारबार अपने पाँव पर गिराता है । गरीबों का शोषणकर उन्हें दास बना लिया जाता है । इसे शासन की विजय चाहे कहा जाए किन्तु यह जनता या समाज की विजय नहीं है । और जनता तथा समाज की विजय ही सच्ची विजय है ।

यहाँ छाले ।

शब्दार्थ—दायित्व=भार । छाले=घाव ।

भावार्थ—यहाँ के लोगों ने अपने ऊपर—कर्म का भार ले रखा है । वे अपने को कर्म का अधिष्ठाता समझते हैं और सभी उन्नति करने के लिए, बड़े बनने के लिए बावले हो रहे हैं । किन्तु कोई यह नहीं देखता कि समाज के दोष बार-बार भयङ्कर छालों के समान फूट कर बह रहे हैं । जिस व्यक्ति के शरीर में छाले होंगे, घाव होंगे भला वह क्या उन्नति कर सकता है ? जब शरीर ही स्वस्थ नहीं तो मनुष्य क्या करेगा ? उसी प्रकार जब समाज की दशा ही स्वस्थ तथा दृढ़ नहीं है, जब उसमें विषमता और दोष भरे पड़े हैं, तब भला समाज आगे कैसे बढ़ सकता है ?

यहाँ .... रहे।

शब्दार्थ—राशिकृत=संचित, एकत्रित। विपुल=अपार। विभव=वैभव। ऐश्वर्य। मरीचिका=मृग जल। विलीन=नष्ट। जड़ रहे=बना रहे।

भावार्थ—यहाँ जो अपार ऐश्वर्य और संपत्ति संचित है वह सब मृग जल के समान मिथ्या है। एक क्षण भर के लिए उस वैभव का भोग किया जाता है और वह फिर नष्ट हो जाता है। किन्तु उसकी इस नश्वरता को देख कर भी मनुष्य नई संपत्ति को कमाने में, सजाने में लगा हुआ है।

मनुष्य जब कुछ संपत्ति पाकर उसका भोग कर लेता है तो कुछ दर बाद ही उससे विरक्त हो जाता है और अपनी संपत्ति बढ़ाने के लिए फिर दुखों से भिड़ जाता है। और जब वह कुछ बढ़ जाती है तो फिर उससे असन्तुष्ट होकर और बढ़ाना चाहता है और इस प्रकार उसका सारा जीवन दुखों में व्यतीत होता है।

यहाँ .... गिनती।

शब्दार्थ—लालसा=आकांक्षा। सुयश=कीर्ति। अध प्रेरणा=मोह जीवित उत्तेजना। परिचालित=प्रेरित, प्रवर्तित। कर्त्ता=करने वाला। निज=अपनी।

भावार्थ—यहाँ के लोगों में कीर्ति प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा और कीर्ति पाने के लिए यहाँ के लोग अपराध भी स्वीकार कर लेते हैं। यही इस समाज का अन्तर्विरोध है। वह दुराचार द्वारा अपनी कीर्ति का प्रचार चाहता है। भला यह कैसे संभव है!

यहाँ के लोग मोह से उत्पन्न प्रेरणा के कारण कर्मों में लीन हैं। जब कार्य की प्रेरणा ही अविवेक से हुई तो उसका शुभ फल कैसे हो सकता है! वह सिद्ध ही कैसे हो सकता है! किन्तु फिर भी मनुष्य आप को बहुत बड़ा परिश्रमी और अध्यवसायी मान लेता है।

प्राण .... तनता।

शब्दार्थ—प्राण-तत्व = शक्ति। सघन=गंभीर। साधना=उद्यम। हिम=बर्फ। उपल=पत्थर।

भावार्थ—यहाँ पर तो शक्ति के लिए गंभीर प्रयास हो रहा है। वह शक्ति शारीरिक शक्ति है, स्थूल है, आत्मिक या सूक्ष्म नहीं। इसका प्रभाव

बहुत बुरा होता है। प्यासे व्यक्ति को जल से सन्तोष होता है, बर्फ के टुकड़ों से नहीं। चाहे कितनी ही बर्फ क्यों न हो व्यक्ति जल के बिना तृप्त नहीं हो सकता, अपने जीवन की रक्षा नहीं कर सकता। वैसा ही प्रभाव इस समाज की साधना का भी होता है। जीवन का जो तरल रूप है, वह पत्थर के समान ठोस हो जाता है। हृदय अत्यन्त कठोर हो जाता है, कोमल भावनाओं का नाश हो जाता है। इसका प्रभाव यह होता है कि प्रेम, सवेदना आदि कोमल भावों का प्यासा मनुष्य दुःखी रहता है और बहुत पीड़ा के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है।

यहाँ साधती।

शब्दार्थ—लोहित = लाल। गलती = बनाती। साधती=सेवन करती।

भावार्थ—यहाँ मनुष्य नीली और लाल आग की लपटों में जला कर आर गलाकर मनु ऐसी धातु बनाने का प्रयास करता है जो चोट को सहन कर के भी टिकी रहती है। बहुत तेज आग का रंग नीला होता है। और ऐसी तेज आग में ही लोहा आदि गलाकर शुद्ध किए जाते हैं जो बहुत शक्ति शाली होते हैं। मृत्यु भी इसका नाश नहीं कर सकती। आज से हमारी वर्ष पुराने लोहे के स्तम्भ आदि भी आज वैसे ही वर्त्तमान हैं। अभिप्राय यह है कि मनुष्य धातुएँ और यन्त्र बनाने में लगे हुए हैं, जिन्हें वे अमर समझते हैं।

वर्षा जाती!"

शब्दार्थ—घन नाद=मेघ का गर्जन, विपत्तियाँ। कूलों=किनारों। प्लावित करती=सींचती हुई। लक्ष्य प्राप्ति=उद्देश्य की सिद्धि। सरिता=नदी।

भावार्थ—बरसात की ऋतु में मेघ गर्जा करते हैं, भयंकर वर्षा हुआ करती है जिससे नदियों में बाढ़ आ जाती है। फिर नदियाँ अपने किनारों को गिराती हुई, वनों में फैलती हुई बहने लगती हैं।

इसी प्रकार यहाँ के समाज पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। मनुष्यों की उद्देश्य प्राप्ति रूपी नदी जीवन की सभी मर्यादाओं का उल्लंघन करती हुई सारे समाज में विषमता फैलाती हुई बह जाती है। मनुष्य यही चाहता है कि मेरा उद्देश्य सिद्ध होना चाहिए, चाहे उसकी सिद्धि में उसे कितना ही पाप क्यों न करना पड़े।

विशेष—कर्म लोक के वर्णन में प्रसाद जी ने यन्त्र-युग की विषमता का चित्रण किया है वो आज भी यथार्थ है। इसमें जीवन के शोषण और विष मता का गम्भीर चित्र मिलता है।

'बस   है।"

शब्दार्थ—अतिभीषण=अत्यन्त भयकर। पुञ्जीभूत=राशिकृत। रजत=चाँदी।

भावार्थ—मनु ने तब श्रद्धा से कहा—'बस! बस!! अब इसे और मत दिखाओ। यह कर्म लोक तो अत्यन्त भयंकर है। अच्छा यह तो बताओ कि यह जो सामने राशिकृत चांदी के समान शुभ्र लोक कौन सा है!"

"प्रियतम   ज्ञानता।

शब्दार्थ—निमम=कठोर। बुद्धि-चक्र=चिन्तन। दीनता=अहं शून्यता।

भावार्थ—श्रद्धा ने उत्तर दिया—"हे प्रिय यह तो ज्ञान लोक है। यहाँ के लोग सुख और दुख दोनों से उदासीन रहते हैं। यहाँ का न्याय बड़ा कठोर है, किसी पर भी दया नहीं की जाती। सभी सिद्धान्तवादी हैं। यहां तो सब बुद्धि का ही कार्य निरन्तर चलता रहता है, शास्त्रार्थ और वाद विवाद ही होता रहता है। इसमें दैन्य नहीं होता वरन् सभी ज्ञानी अहं से भरे होते हैं, उन्हें गर्व होता है।

अस्ति   से।

शब्दार्थ—अस्ति=सत्ता है। नास्ति=असत्, नहीं है। निरंकुश=कठोर। तर्क-युक्ति=तर्क का साधन। निस्संग=निष्काम। सबंध विधान=सम्बन्ध-योजना।

भावार्थ—यहाँ के लोग तर्क के साधन के द्वारा अस्ति और नास्ति का, सत्ता और शून्य का भेद कर लेते हैं। वैसे तो ये अपने आपको निष्काम कहते हैं, सारी कामनाएँ त्याग देते हैं, किन्तु फिर भी ये लोग किसी प्रकार मुक्ति से अपना सम्बन्ध अवश्य जोड़ लेते हैं। यही इनमें अन्तर्विरोध है।

यहाँ ... चाटती ।

शब्दार्थ—प्राप्य=साध्य, कमनीय वस्तु । तृप्ति=सन्तोष । विभूति=वैभव, संपत्ति । सिकता=रेत ।

भावार्थ—यहाँ साध्य ज्ञान तो प्राप्त हो जाता है, किन्तु व्यक्ति को सन्तोष नहीं होता । ज्ञान प्राप्त लेना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है । किन्तु ये लोग ज्ञान को ही साध्य बनाते हैं इसीलिए इन्हें यह नीरस ज्ञान सन्तुष्ट नहीं कर सकता । ज्ञान प्राप्त कर ये लोग परस्पर वाद विवाद और शास्त्रार्थ में लगे रहते हैं ।

बुद्धि व्यक्ति और व्यक्ति में भेद करके रेत के समान नीरस ज्ञान की विभूति को वितरित करती है । वह भेद का जन्म देती है । क्योंकि दर्शन के विभिन्न रूप और मत हैं जो परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं जिनमें विरोध होता है । यदि कोई व्यक्ति प्यासा है तो प्यास मिटाने के लिए उसे जल चाहिए । ओस से उसकी तृप्ति नहीं हो सकती । उसी प्रकार बुद्धि की प्यास को नीरस ज्ञान की यह ओस नहीं मिटा सकती । उसकी प्यास तो अनुभूति से ही मिट सकती है ।

न्याय ... जगते ।

शब्दार्थ—तपर=तपस्या । ऐश्वर्य = ज्ञान की विभूति । पगे=लीन । चमकीले=आकर्षक । निदाघ=गर्मी । मरु=रेगिस्तान । स्रोत=झरना । जगते=चमकते ।

भावार्थ—न्याय, तपस्या और ज्ञान के ऐश्वर्य में लीन ये मनुष्य दूर से देखने पर तो बड़े आकर्षक लगते हैं । किन्तु यह आकर्षण केवल दूर का ही है । गर्मी के दिनों में रेगिस्तान के झरने सूख जाते हैं किन्तु उनके तट दिखाई देते हैं । कोई प्यासा व्यक्ति दूर से इन तटों को देखकर बहुत प्रसन्न होता है और समझता है कि यहाँ उसे जल मिलेगा । किन्तु जब वह यहाँ पहुँचता है तो उसे केवल रेत ही दिखाई देती है । जल तो यहाँ है ही नहीं । उसी प्रकार इन ज्ञानियों में अनुभूति की गरिमा तो है ही नहीं । पास जाकर देखने पर प्रतीत होता है कि भीतर से तो ये भी मरुस्थले और सारहीन हैं ।

मनोभाव विस से।

शब्दार्थ—मनोभाव=मन के भाव। कार्य=करने योग्य। सम-तोलन= मूल्यांकन। दत्त चित्त=लगे हुए। निस्पृह=निष्काम। न्यायासन=न्याय के आधार पर चलने वाले। वित्त=धन।

भावार्थ—ये ज्ञानी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार कर्त्तव्य कर्म के मूल्यांकन में लीन हैं। बड़े ध्यान से विधि निषेध की मर्यादा की प्रतिष्ठा की जाती है। किन्तु ये निष्काम और न्याय पर चलने वाले हैं। ये धन से तनिक भी विचलित नहीं हो सकते।

इसमें बड़ा गूढ़ व्यंग्य है। यदि कोई दूकानदार अपनी इच्छा के अनुसार सौदा तोलता है, तो वह इसीलिए कि उसे कम वस्तु का अधिक धन मिले। अधिक धन प्राप्त करने का ही वे कम वस्तु की अपनी इच्छा के अनुसार अधिक तोलते हैं। उसी प्रकार ये ज्ञानी भी अपनी वृत्तियों के अनुसार कर्मों का निर्धारण करते हैं फिर भी लाभ से विचलित नहीं होते। यही अन्तर्विरोध है। जब कर्मों का निश्चय ही अपने मन के अनुसार किया जाए तो उसमें अपने लाभ की भावना छिपी ही है। मीमांसक अपनी इच्छानुसार कर्त्तव्य निश्चित करते हैं और वेदान्ती अपने अनुसार कर्म का मूल्यांकन करते हैं। फिर भला कैसे कहा जा सकता है कि वे अपने लाभ से चंचल नहीं होते।

अपना में।

शब्दार्थ—परिमित = छोटा, सीमित। पात्र=बर्त्तन। निर्झर=झरना। अक्षर=जो कभी क्षुद्र नहीं होता।

भावार्थ—इन ज्ञानियों का पात्र बड़ा छोटा है। बूँद-बूँद करके बहने वाले झरने से यह जीवन का रस माँग रहे हैं। ये स्वयं अक्षर अमर बन कर यहाँ बैठे हैं।

इनका सीमित सिद्धान्त उनका पात्र है। प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी सीमाएँ होती हैं। उन सीमाओं से युक्त अपने दृष्टि कोण के अनुसार ही ये जीवन का आनन्द प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। किन्तु जीवन का समग्र आनन्द ये प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि ज्ञान की साधना में आनन्द बहुत सीमित होता है। इन्होंने बहुत कम जीवन का रस प्राप्त किया है फिर भी

अपने आपको अमर और अमर समझते हैं।

यहाँ ... मरता।

शब्दार्थ—विभाजन=बँटवारा। धर्म तुला=धम की तराजू। निरीह= इच्छाओं से हीन। ढीली=शिथिल। साँसें भरता=जीवन व्यतीत करता।

भावार्थ—यहाँ पर धम की तराजू पर तोल कर ही अधिकारों का निश्चय किया जाता है। धम के नियमों के अनुरूप ही व्यक्तियों की सीमाओं का निश्चय किया जाता है। ये सब ज्ञानी वैसे तो इच्छाओं से मुक्त हैं, पर कुछ प्राप्त करके ही अपने नीरस एवं शिथिल जीवन को व्यतीत करते हैं। ज्ञान के अभिमान के सहारे ही ये थोड़ा बहुत सन्तोष करते हैं।

उत्तमता ... लेखो।

शब्दार्थ—उत्तमता=श्रेष्ठता। निज वत=सम्पत्ति। अम्बुज=कमल। सर= तालाब। जीवन-मधु=जीवन का रस रूपी शहद—रूपक अलंकार। ममाखियाँ= मधुमक्खियाँ।

भावार्थ—श्रेष्ठता इनकी सम्पत्ति है। किन्तु ये स्वयं उसका उपभोग नहीं कर सकते। जैसे कमल वाले तालाब का अपने कमलों पर अधिकार होता है, वे कमल उसकी सम्पत्ति होते हैं किन्तु वह स्वयं उनका उपभोग नहीं कर पाता। कमलों पर मधुमक्खियाँ मँडराया करती हैं और शहद सञ्चित किया करती हैं किन्तु उसका पान ये स्वयं नहीं करतीं। अन्य व्यक्ति ही उनके शहद का उपभोग करते हैं। ये ज्ञानी भी अपनी श्रेष्ठता से मधुमक्खियों के समान ही जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण बनाते हैं, अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं। किन्तु वे स्वयं उन अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकते। अन्य व्यक्ति ही उनके अनुभवों का प्रयोग करते हैं।

यहाँ ... बिखरती।

शब्दार्थ—शरद=शीतकाल। धवल=शुभ्र। ज्योत्स्ना=चाँदनी। भेद= दूर कर के। अनवस्था=ऐसा तर्क जिसका अन्त न हो। युगल=दो। विकल= व्याकुल करने वाली—विशेषण विपर्यय।

भावार्थ—यहाँ पर शरद् ऋतु की चाँदनी रात के अंधकार का भेद न कर अधिक रमणीय बन जाती है। ज्ञान का प्रकाश अज्ञान के अन्धकार को

विशीर्ण कर देता है। किन्तु जिस प्रकार रात हमेशा होती है और चाँदनी हमेशा चमकती है, उसी प्रकार अज्ञान भी फैलता है और ज्ञान का प्रकाश भी होता है। इस प्रकार व तर्क में अनवस्था दोष है। ये ज्ञानी अपने ज्ञान को अज्ञान से पूर्णतया पृथक नहीं कर पाते क्योंकि कोई भी बौद्धिक मत सर्वांग पूर्ण नहीं हो सकता। ज्ञान और अज्ञान दोनों के मिलने से सदैव व्याकुलता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का जन्म होता है। प्रत्येक दार्शनिक मत के कारण समाज में विषमता का जन्म हो ही जाता है। इसका कारण यही है कि उसमें कुछ न कुछ दोष रह ही जाते हैं।

देखो से।

शब्दार्थ—सौम्य=सरल। दंभ=गर्व। भ्रू-चालन=भौंहों का इशारा। मिस=बहाना। परितोष=सन्तोष।

भावार्थ—देखो तो सही वे सब कितने सीधे और सरल बने बैठे हैं। किन्तु मन ही मन वे दोषों से संत्रस्त हैं। उन्हें भय है कि कहीं उनसे कोई अपराध न हो जाए। ये जो अपने इशारों से सन्ताप प्रकट कर रहे हैं उनमें उनका अभिमान साफ झलक रहा है। उनके सन्तोष में भी अहंकार है।

यहाँ दो।

शब्दार्थ—संचित=राशिकृत। भाग=हिस्सा। तृषा=प्यास। मृषा=मिथ्या। संचित होना=लगना।

भावार्थ- यहाँ के मनुष्य जीवन रूपी रस का पान नहीं करते। उनका मिथ्याभ्रम है कि जीवन के रस को छूआ मत वरन उसे राशिकृत होने दो। वे कभी जीवन का उपभोग नहीं करते। बस तुम्हारे हिस्से में तो प्यास और अतृप्ति ही। यह संसार तो मिथ्या है इसलिए तुम सांसारिकता से मुक्त रहो।

सामंजस्य हैं।

शब्दार्थ—विषमता=भेद-बुद्धि। स्वत्व=अधिकार।

भावार्थ—ये ज्ञानी वैसे तो सामरस्य की स्थापना का प्रयास करते हैं किन्तु वास्तव में भेद-बुद्धि का प्रचार करते हैं, किसी के प्रति आकर्षण और किसी के प्रति विकर्षण जगाते हैं। ये कहते हैं कि जीवन का वास्तविक अधिकार

इच्छाओं पर नहीं है वरन् यह तो किसी अन्य सूक्ष्म तत्व पर है। इच्छाओं को तो ये मिथ्या मानते हैं। यह करते कुछ हैं और होता कुछ है। इसका कारण यह है कि इनका दृष्टिकोण दूषित है।

स्वर्य दक्षते।

शब्दार्थ—व्यस्त=कार्यरत। विज्ञान=ज्ञान। अनुशासन=आदेश।

भावार्थ—वास्तव में तो ये कार्य में रत रहते हैं किन्तु ऊपर से शान्त बने बैठे रहते हैं। ये शास्त्र की रक्षा में ही अपनी सुरक्षा और विकास समझते हैं। इनके लिए शास्त्र ही प्रधान है। ये जो ज्ञानपूर्ण आदेश देते हैं वे प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। आज जो कार्य है यह कल अकार्य हो जाता है और तब नए कर्त्तव्य की प्रतिष्ठा होती है।

यही कितने।

शब्दार्थ—त्रिपुर=एक राक्षस का नाम—प्रसादजी ने इन तीन लोकों के समूह को त्रिपुर (तीन लोक) माना है और इसका अपने दर्शन के साथ सामंजस्य किया है। ज्योतिर्मय=चमकदार।

भावार्थ—मैं जो तुमने तीन प्रकाशपूर्ण लोकों को देखा है इन्हीं के समूह का नाम त्रिपुर है। ये अपने ही सुख और दुःख में केन्द्रित हैं। ये सब एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

ज्ञान की।"

शब्दार्थ—विडम्बना=उपहास।

भावार्थ—यदि ज्ञान कुछ कहता है और कर्म भिन्न प्रकार है तो फिर मन की इच्छा कैसे पूर्ण हो सकती है। यदि कर्म ज्ञान के अनुसार नहीं होता तो, सफलता नहीं मिल सकती। इन तीनों में समन्वय होने पर ही जीवन की समरसता सिद्ध हो सकती है। ज्ञान और कर्म एक दूसरे से मिल नहीं सकते, यही जीवन का उपहास है। इसीलिए ये सारी विपत्तियाँ और दुःख हैं।

विशेष—ये छन्द प्रसादजी के सामरस्य के सिद्धान्त के मूल सत्य को व्यक्त करता है।

महा निरत।

शब्दार्थ—महाज्योति=तीव्र प्रकाश । स्मिति=मुस्कान । सम्न्वित= समन्वित । ज्वाला=प्रकाश, उत्तेजना ।

भावार्थ—श्रद्धा मुस्कराई । उसकी मुस्कान तीव्र प्रकाश की किरण के समान उन तीनों लोकों में दौड़ गई । उसके प्रभाव से वे तुरन्त समन्वित हो गए । उनमें उत्तेजना की आग जल उठी । श्रद्धा के कारण ही ज्ञान इच्छा और क्रिया में समन्वय हो सकता है ।

नीचे सी।

शब्दार्थ—महाशून्य=आकाश ।

भावार्थ—वह ज्वाला विराट आकाश में नीचे और ऊपर उस विषम वायु में ममक रही थी । वह नीचे और ऊपर सर्वत्र व्याप्त हो गई थी । ऐसा प्रतीत होता है मानो वह यम का नहीं-नहीं कर रही है । उन तीनों लोकों के वासियों को अपने अलग अलग मार्ग पर चलने से रोक रही है ।

शक्ति-तरंग उठा-सा।

शब्दार्थ—शक्ति-तरंग=शक्ति की लहर । प्रलय पावक=भयंकर अग्नि । शृंग=सिंगी बाजा जो योगियों के पास और आदिनाथ शिव के पास होता है । निनाद=ध्वनि ।

भावार्थ—उस त्रिपुर में प्रचण्ड अग्नि की शक्तिशाली लहर मूर्तिमान हो उठी । इस अग्नि में सारी विषमता भस्म हो गई । उस समय शिव के सिंगी और डमरू की सी ध्वनि सारे संसार में व्याप्त हो गई ।

चितिमय था।

शब्दार्थ—चितिमय=चेतना पूर्ण । अविरल=निरन्तर । विश्व-रंध्र=संसार के छिद्र दोष । विषम=कठोर । कृत्य=कार्य ।

भावार्थ—उसमें चेतना की ज्वाला निरंतर जल रही थी । महाकाल शिव प्रलयंकर नृत्य कर रहे थे । भगवान शिव संसार के सभी दोषों को आग में लपट पर कठोर कार्य कर रहा था । अब वह विषमता समाप्त नहीं हो

जाती, तब तक सामरस्य का प्रकाश नहीं फैल सकता। इसलिए यहाँ पर भी शिव के ताण्डव नृत्य को दिखाने की आवश्यकता हुई।

स्वप्न थे।

शब्दार्थ—स्वाप=निद्रा। लय=लीन। दिव्य=स्वर्गीय। अनाहत। निनाद=ध्वनि। श्रद्धायुत=श्रद्धा सहित। तन्मय=लीन।

भावार्थ—उस समय स्वप्न, निद्रा और जागरण भस्म होगए थे। इच्छा क्रिया और ज्ञान परस्पर मिलकर लीन होगए थे। उस समय स्वर्गीय संगीत सुनाई दे रहा था। उस अलौकिक गुंजार में श्रद्धा सहित मनु लीन होगए थे।

उपनिषद में जीव की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं कि—जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति और तुरीयावस्था। तुरीयावस्था ही समाधि की दशा है जिसमें सामरस्य की अनुभूति होती है। श्रद्धा और मनु दोनों इस तुरीयावस्था को प्राप्त हो गए थे।

श्रद्धा का अर्थ निष्ठा भी लिया जा सकता है। निष्ठा को प्राप्त करके ही मनु इस आनन्द का अनुभव करने में समर्थ हुए थे।

आनन्द

नदी के सुन्दर किनारे में, पर्वत के मार्ग से एक यात्रियों का दल चला आ रहा था। उनके साथ एक सफेद बैल था। यह सोम लताओं से लदा हुआ था। जब यह धीरे धीरे चलता था तो घंटे की मधुर आवाज होती थी। मानव ने बाएँ हाथ में बैल की रस्सी पकड़ी थी और उसके दाँए हाथ में त्रिशूल था। उसके मुख पर अपार तेज था।

मानव के अंग सिंह के बच्चे के अंगों के समान विकसित हुए थे। उसका यौवन गंभीर हो उठा था और उसमें नवीन भाव उदित हुए थे।

इड़ा भी बैल के साथ साथ उसकी दूसरी ओर चुपचाप चल रही थी। उसने गेरुए वस्त्र धारण किए थे इसलिए वह सन्ध्या के समान दिखाई देती थी। उसके भावों की चंचलता शान्त हो चुकी थी। वह भी गंभीर बन गई थी।

उस दल में जितने युवक थे वे बहुत प्रसन्न थे। सारे बालक भी आनन्द में मग्न थे। महिलाएँ मंगल गीत गा रही थीं। इस प्रकार उनका सारा दल गूँज रहा था। चमरों के ऊपर सामान लदे थे। कुछ बालक भी उन्हीं पर बैठे थे। उनकी माताओं ने उन्हें पकड़ रखा था और वे उनसे बातें करती जा रही थीं। वे उन्हें यह समझा रही थीं कि हम कहाँ जा रहे हैं।

एक बालक अपनी माँ से यह कह रहा था—'तू तो बड़ी देर से यह कह रही है कि बस अब हम आ पहुँचे हैं किन्तु फिर भी तू आगे बढ़ती ही जा रही है। रुकती ही नहीं। बता तो सही कि जिस तीर्थ पर तू जा रही है वह कितनी दूर है?"

माँ ने उत्तर दिया—'यह जो सामने समभूमि दिखाई दे रही है जिसके ऊपर देवदारु का वन है और जहाँ पर मंच बनाये हैं, जब हम उसे उतर जाएंगे तो हम उस पवित्र तीर्थ पर पहुँच जाएँगे।

किन्तु बालक का इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। वह इड़ा के समीप पहुँचा और उससे अधिक कथा सुनने का आग्रह करने लगा।

इड़ा अपने अपलक नत्रों से पाँव के अग्रभाग को देखते हुए पथ प्रदर्शिका के समान धीरे धीरे चली आ रही थी। बालक का आग्रह देखकर उसने कहा—"जहाँ हम चले जा रहे हैं वह अत्यन्त पवित्र स्थान है। वह किसी की साधना का स्थान और शान्त तपोवन है।"

बालक ने पूछा—'वह कैसा प्रदेश है? उसे शान्त तपोवन क्यों कहा जाता है? तुम मुझे विस्तार से ये सब बातें क्यों नहीं बताती हो?"

इड़ा ने संकोच के साथ कहा—'मैंने यह सुना है कि एक दिन यहाँ एक चिन्तक आया था। वह ससार के दुःखों के कारण अत्यन्त व्याकुल था। उसके दुखों की भयंकर ज्वाला सारे पर्वत प्रदेश में फैल गई। उसके कारण सारा घना वन व्याकुल हो उठा। उसी की पत्नी उसे खोजती हुई यहाँ आ निकली। उसने जब यह दशा देखी तो उसकी आँखों में आँसू छलक आए। उसके वे आँसू वरदान बन गए जिन्होंने ससार का कल्याण किया। उनसे सारे दुख शान्त होगए। सर्वत्र हरियाली छा गई। सूखे हुए वृक्ष भी लह लहा उठे और मधुर झरने बहने लगे। अब वे दोनों उस तीर्थ पर बैठे तपस्या करते हैं और सारे ससार की सेवा कर उसे सन्तुष्ट करते हैं। यहीं पर विशाल मानसरोवर है जो मन के असन्तोष को दूर कर देता है।"

बालक ने फिर पूछा— 'तो तुम यह वृष क्यों व्यर्थ ही ले जा रही हो? तुम इस पर बैठ क्यों नहीं जाती? क्यों पैदल चलकर अपने आपको थका रही हो?"

इड़ा ने उत्तर दिया—"हम सारस्वत नगर के निवासी यात्रा करने के लिए आए हैं। इस यात्रा के द्वारा हम अपने जीवन के सूने पात्र को आनन्द के अमृत से भरने जा रहे हैं। वहाँ जाकर हम धर्म के प्रतीक इस बैल को छोड़ देंगे ताकि ये निर्भीक होकर वहां विचरण करे।"

आगे सीधी उतराई आगई थी इसलिए सब समल गए। वहां से उतरते ही उन्हें सामने विशाल श्वेत पर्वत दिखाई दिया जिसे देखकर उनकी सारी थकावट और व्याकुलता क्षण भर में ही दूर होगई। उसकी तराई बड़ी रम

णीक थी उसमें वृक्ष और लताएँ लहरा रही थीं। वृक्ष की डालियाँ फूलों से लदी थीं। यात्रियों के समूह ने रुक कर मानसरोवर के अपूर्व दृश्य को देखा। यह दृश्य तो पशु और पक्षियों को भी आनन्दित करता था। यह मानसरोवर ऐसा प्रतीत होता था मानो नीलम की वेदी पर हीरे का शुभ्रपानी रखा हो।

अब सूर्य पर्वत के पीछे छिप गया था। आकाश में चन्द्रमा निकल आया था। उस रात में कैलाश किसी ध्यान में लीन था। गेरुए वस्त्र धारण किए हुए संध्या समीप आ गई थी। पक्षियों का समूह चहचहा रहा था।

मानसरोवर के किनारे मनु ध्यान लगाए बैठे थे। उनके पास ही श्रद्धा खड़ी थी। उसके हाथों में पुष्प भरे थे। श्रद्धा ने फूल बिखर दिए। उस समय आकाश में सैकड़ों भँवरों का गुंजार मुखर हो उठा। मनु समाधि की अवस्था में लीन था।

सब यात्रियों ने मनु और श्रद्धा को पहचान लिया था। इसलिए वे उनके चरणों में झुक गए। तब साम वहन करने वाला बैल तभी से आगे बढ़ने लगा। उनके साथ साथ इड़ा और मानव भी चल रहे थे। श्रद्धा ने मानव के सिर को अपनी गोदी में भर लिया। इड़ा ने अपना सर श्रद्धा के चरणों पर रख दिया था।

इड़ा ने कहा—"मैं यहाँ आकर अपने आपको धन्य समझ रही हूँ। हे देवी! तुम्हारी ममता ही मुझे यहाँ खींच लाई है। हे माता! अब मैं समझ पाई हूँ कि मैं बड़ी भूल में थी। मुझे केवल सब को भ्रम में डालने का ही अभ्यास था। इस तपोवन का नाम सुनकर हम सब एक कुटुम्ब बनाकर यहाँ आए हैं जिससे हमारे सारे पाप दूर जाएँ।

मनु ने मुस्करा कर उन्हें कैलाश दिखाया और फिर बोले— 'यहाँ पर कोई भी पराया नहीं है। हम और कुटुम्ब के ये लोग अलग-अलग नहीं हैं। तुम सब मेरे ही अङ्ग हो। यहाँ न तो कोई दुखी है और नहीं कोई पापी है। यहाँ सब सामरस्य है। जीवन तो चेतना के समुद्र में लहरों के समान बिखरा हुआ है। पर एक व्यक्ति ने कुछ विशेष व्यक्तित्व बना लिया है। अपने सुखों और दुखों में लीन यह स्थूल विश्व महाचिति का मंगलमय शरीर है जो अमर तथा रमणीक है। समाज की सेवा में ही चेतना सुख है। अहंकार त्याग

है क्योंकि यह सब को मोहित कर देता है। अब तो मनुष्य को सारे सुख दुःख भूलकर इस प्रकार रहना चाहिए जिससे यह सारा संसार एक घोंसला बन जाए।

श्रद्धा के मधुर अधरों पर उषा की किरणों के समान मनोहर मुस्कान बिखर गई। वह कामायनी संसार का मंगल करने वाली थी। वह इच्छाओं की तृप्ति की मूर्ति थी। जब कामायनी हँसती थी, तो ऐसा प्रतीत होता था मानो चराचर में मुरली का संगीत गूँज रहा है। क्षण भर में ही संसार का अणु अणु बदल गया। सर्वत्र सुगन्धि बिखर गई।

उस समय अत्यन्त मधुर वायु धीरे धीरे बहने लगी। वह कमल केशर के स्पर्श से रंगीन था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह वायु असंख्य फूलों को मिला आया है। वह फूल के सुनहले करणों से युक्त था। ऐसा प्रतीत होता था मानो संसार की साँसें वायु के झोंकों के रूप में बिखर रही हैं। लताएँ नाच रही थीं। भँवरों की मधुर गुंजार सुनाई दे रही थी। कोयल भी सुगंधि से नहाई सी प्रतीत होती थी।

विश्वरूपी सुन्दरी पर गेरुआ वस्त्र सा छाया हुआ था। सुख उसका साथी था और दुःख उसका विदूषक था। रस भरे फूल झरने लगे। बर्फ के टुकड़ों के ऊपर जब किरणें पड़ती थीं तो वहाँ मणियों का सा प्रकाश बिखरा होता था। किरणें अप्सराओं के समान नाच रही थीं। आज वह स्थान सजीव प्रतीत हो रहा था। चन्द्रमा के मुकुट से सुशोभित वह हिमालय शिव के समान दिखाई देता था जो पार्वती के नृत्य के समान लहरों का नृत्य देख रहा था। उस प्रेम की ज्योति के प्रभाव से सब की आँखें कृत कृत्य हो गईं। सब में एक ही शक्ति समाई दिखाई दे रही थी। उस समय समय जड़ और चेतन सभी वस्तुएँ साकार थीं। सौन्दर्य मूर्तिमान हो रहा था। चेतना की लीला का दर्शन हो रहा था। सर्वत्र आनन्द का ही प्रसार था।

चलता मंगल।

शब्दार्थ—धरित्री=नदी। रम्य=सुन्दर। पुलिन=किनारा। गिरि-पथ=

पथव के मार्ग से। सबल=मार्ग की सामग्री, पाथेय।

भावार्थ—यात्रियों का एक समूह धीरे धीरे चला आ रहा था। वह नदी के सुन्दर किनारे पर पर्वत के माग से चला चा रहा था। उसके साथ मार्ग की सारी सामग्री भी लदी थी।

था विधि।

शब्दार्थ—आवृत=ढका हुआ। वृष=बैल। धवल=सफेद। प्रतिनिधि=प्रतीक। मथर=मन्द। गति विधि=चाल।

भावार्थ—धर्म के प्रतीक के रूप में एक सफेद बैल भी उनके साथ था। यह सामलता से ढका हुआ था। वह धीरे-धीरे चला आ रहा था। धीरे-धीरे चलने के कारण उसके गले में बँधा घंटा ताल में बज रहा था।

वृष अपरिमित।

शब्दार्थ—वृष-रज्जुत = बैल की रस्सी। वामकर=बाँया हाथ। दक्षिण=दायाँ। अपरिमित = अपार।

भावार्थ—मानव भी बैल के साथ चला आ रहा था। उसके बाँएँ हाथ में बैल की रस्सी थी और उसके दाएं हाथ में त्रिशूल सुशोभित था। उसके मुख पर अपार ओज था।

कहरि थे।

शब्दार्थ—कहरि किशोर=शेर का बच्चा। अभिनव=नवीन। अवयव=अंग। प्रस्फुटित हुए थे=विकसित हुए थे। गंभीर=उद्दीप्त।

भावार्थ—मानव के नवीन अङ्ग शेर के बच्चे के अङ्गों के समान दृढ़ थे। उसका यौवन उद्दीप्त हो उठा था और उसमें नए-नए भाव उदित हो चुके थे।

पक्ष कलरव।

शब्दार्थ—पार्श्व = बगल, ओर। नीरव=शान्त। गैरिक वसना=गेरुए वस्त्र वाली। कलरव=मधुर ध्वनि, भावनाएं।

भावार्थ—इड़ा भी बैल के दूसरी ओर चुपचाप चली आ रही थी। जिस प्रकार संध्या के समय लालिमा छाई रहती है। उसी प्रकार इड़ा ने भी गेरुए वस्त्र धारण किए हुए थे। इड़ा की सारी भावनाएँ शान्त थीं।

उसमें अब गम्भीरता आगई थी।

उल्लास   दल।

शब्दार्थ—उल्लास=हर्ष। शिशुगण=बच्चों का समूह। मृदु=कोमल, मधुर। गुञ्जरित था=गूँज रहा था।

भावार्थ—उस दल के सारे युवक बड़े हर्षित थे। बच्चों का समूह भी प्रसन्नता से बोल रहा था। स्त्रियां मङ्गल गीत गा रही थीं। उन गीतों की ध्वनि से यात्रियों का समूह गूँज रहा था।

चमरों   कुतूहल।

शब्दार्थ—चमर=सुरागाय—एक प्रकार की जंगली गाए जिसकी पूँछ का चमर बनाया जाता है। अविरल=निरन्तर।

भावार्थ—सुरागायों के ऊपर बोझ लदा हुआ था। वे सब मिलकर निरन्तर चल रही थीं। उन पर कुछ बच्चे भी बैठ थे। वे अपने ही कुतूहल बने हुए थे। उन्हें बड़ी जिज्ञासा हो रही थी कि हम कहाँ जा रहे हैं।

माताएं   समझातीं।

शब्दार्थ—विधिवत = तरीके से ठीक-ठीक।

भावार्थ—माताओं ने उन बच्चों को पकड़ रखा था। वे उन से बातें करती हुई जा रही थीं। उन्हें ये बताती हुई जा रही थीं कि हम कहाँ जा रहे हैं।

कह   रही है।"

भावार्थ—एक बालक अपनी माँ से कह रहा था—"तू तो कब से ही यह कह रही है कि बस अब हम लक्ष्य पर आ पहुंचे। सामने की भूमि पर ही हमें जाना है।

किन्तु फिर भी निरन्तर चलती ही जाती है, रुकने का नाम तक नहीं लेती। यह तो बता कि वह तीर्थ कहाँ है जिसके लिए तू चल रही है!"

'वह   पावन तम।"

शब्दार्थ—समतल=समभूमि। कानन = वन। घन=मेघ। प्याली भरते=

जल भरते। दल=पत्ता। हिमकन=ओस की बूँद। सहज=सरलता से। उज्ज्वल=कांतिमान। पावन-तम=अत्यंत पवित्र।

भावार्थ—माँ ने उत्तर दिया—"यह सामने जो सम भूमि दिखाई दे रही है जिसके ऊपर देवदारु का वन दिखाई देता है और जहाँ वृक्षों के पत्तों की ओस की बूँदों से मेघ अपने में जल भरते हैं—

उस स्थान को जब हम सरलता से उतर जाएंगे तब सामने वह तीर्थ मिलेगा जो अत्यन्त शोभाशाली और पवित्र है।

वह .... को।

शब्दार्थ—मचल गया था=ज़िद पकड़ गया था।

भावार्थ—इससे बालक का सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए वह इड़ा के समीप पहुँचा और बालक ने उसे रुकने के लिए कहा। वह भन्ना ही तो था, इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ और सुनने के लिए ज़िद पकड़ गया था।

वह .... भरती।

शब्दार्थ—अपलक लोचन=अपलक नेत्रों वाली। पदाग्र=पाँव का अग्र भाग, नाखून। विलोकन करती=देखती। पथ-प्रदर्शिका-सी=पथ दिखाने वाली के समान। डग=कदम।

भावार्थ—इड़ा अपने अपलक नेत्रों से पाँव के अगले हिस्सों को देखती हुई, पथ दिखाने वाली के समान धीरे धीरे कदम बढ़ाती चल रही थी।

वाली .... तपोवन।"

शब्दार्थ—जगती—संसार। पावन=पवित्र करने वाला। साधन प्रदेश=वह स्थान जहाँ व्यक्ति साधना करता है।

भावार्थ—इड़ा ने कहा—"जहाँ हम आ गए हैं, यह स्थान संसार को पवित्र करने वाला स्थान है। यहाँ पर कोई साधना कर रहा है। यह अत्यन्त सन्ताप प्रदान करने वाला तपोवन है।"

"कैसा .... मधुघाती।

शब्दार्थ— विस्तृत=विस्तार के साथ। मधुघाती=गुंजार करती हुई।

भावार्थ—बालक ने फिर प्रश्न किया—'यह कैसा स्थान है ? क्यों शांत तपोवन है ! तुम मुझे ये सब बातें विस्तार के साथ क्यों नहीं बताती हो !" यह सुनकर इडा सकरुण के साथ बोली।

"सुनती मुरझाया।

शब्दार्थ—मनस्वी=विद्वान। जगती की ज्वाला=सांसारिक दुख। विकल=दुखी। झुलसाया=जला हुआ।

भावार्थ—मैं ने सुना है कि एक दिन यहाँ एक विद्वान व्यक्ति आया था। वह सांसारिक दुखों के कारण अत्यन्त व्याकुल और दग्ध सा था।

उसकी अस्थिर।

शब्दार्थ—गिरि-अचल=सारा पर्वत। दावाग्नि=वन में लगने वाली आग। प्रखर=शक्ति शाली प्रचंड। अस्थिर=चंचल, अशांत।

भावार्थ—जब वह यहाँ आया तो उसके दुखों की वह भयंकर ज्वाला इस सारे पर्वत प्रदेश में फैल गई। भयंकर वन की आग के समान उस ज्वाला की लपटें जलाने लगीं, जिससे सारा वन अशांत हो गया, यहाँ के सारे निवासी व्याकुल हो गए।

थी लाया।

शब्दार्थ—अर्धांगिनी=पत्नी। करुणा की वर्षा=दुख के आँसू। दृग=नेत्र।

भावार्थ—उसकी पत्नी उसे ढूँढती हुई यहाँ आगई। उसने जब यह दग्ध भरी अवस्था देखी तो उसकी आँखों से वर्षा के समान करुणा के आँसू बरसने लगे। वर्षा शब्द के प्रयोग से यह ध्वनि निकलती है कि जिस प्रकार वर्षा से दावाग्नि शान्त होती है उसी प्रकार उसके आँसुओं से सारे दुख शान्त हो गए। अगले छन्द में यही कहा है।

वरदान शीतल।

शब्दार्थ—जग-मंगल=संसार का कल्याण। हरित=हरा।

भावार्थ—उसके वे आँसू संसार के लिए वरदान बन गए। उन्होंने संसार का कल्याण कर दिया। सारे दुख शान्त हो गया और वन फिर से हरा

भरा और शीतल हो गया। यहाँ के निवासी प्रसन्न हो गए।

गिरि   लाली।

शब्दार्थ—गिरि निर्झर=पर्वत के झरने। तरु=वृक्ष। पल्लव=कोंपल।

भावार्थ—पर्वतों के झरने फिर तेजी से बहने लगे। चारों ओर हरियाली छा गई। सूखे हुए वृक्ष भी हरे होने लगे। नए-नए कोंपल फूट निकले और उनकी लालिमा सर्वत्र छा गई।

प्रकृति के इस वर्णन द्वारा कवि ने जनता की सुख और समृद्धि का वर्णन किया है। प्रसन्नता के झरने बहने लगे। चारों ओर हर्ष छा गया। मनुष्यों के जले हुए हृदय लहलहा उठे, उनमें नई-नई इच्छाएँ प्रस्फुरित हो गई।

य   हरते।

शब्दार्थ—युगल=दोनों। संसृति=संसार। दुख-ज्वाला=दुख की आग।

भावार्थ—अब वे दोनों वहाँ बैठे हुए संसार की सेवा करते हैं। वे सारे संसार को सन्तोष आनन्द देकर उनके दुखों की आग को दूर कर देते हैं।

है   (आता।"

शब्दार्थ—महाह्रद=महान तलाब। निर्मल=स्वच्छ। मन की प्यास=मन का असन्तोष। मानस=मानसरोवर।

भावार्थ—यहाँ पर स्वच्छ महान तालाब है जो मन के सारे असन्तोष को दूर कर देता है। उसका नाम मान सरोवर है। जो भी यहाँ आता है, यह सुख प्राप्त करता है।

"तो   ह।"

शब्दार्थ—वृष=बैल।

भावार्थ—बालक ने श्रद्धा से पूछा—"तो यह इस बैल को क्यों यों ही चला रही है? तू इस पर बैठ क्यों नहीं जाती? क्यों तू अपने आप को पैदल चलकर थका रही है?"

"सारस्वत　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　भरने।

शब्दार्थ—व्यर्थ=बेकार। रिक्त=खाली, सूना। जीवन-घट=जीवन रूपी घड़ा। पीयूष सलिल=अमृत रूपी जल।

भावार्थ—इड़ा ने उत्तर दिया—"सारस्वत नगर के निवासी हम यात्रा करने के लिए आए हैं। इस यात्रा के द्वारा हम अपने खाली और बेकार जीवन रूपी घड़े को अमृत-जल से भरने के लिए आए हैं—सूने जीवन में आनन्द भरने के लिए आए हैं।

हम　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पाकर।"

शब्दार्थ—वृषभ=बैल। धर्म-प्रतिनिधि=धर्म का प्रतीक। उत्सर्ग करेंगे=छोड़ देंगे। चिर मुक्त=सदैव स्वतन्त्र।

भावार्थ—यह बैल धर्म का प्रतीक है। हम इसे यहाँ आकर छोड़ देंगे ताकि यह सदैव स्वतन्त्र और निर्भर होकर सदैव सुखपूर्वक विचरण किया करे।

सब　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　छायी।

शब्दार्थ—समतल=समभूमि वाली।

भावार्थ—आगे नीची उतराई आई थी इसलिए सब सँभलकर चल रहे थे। यहाँ की समभूमि वाली घाटी में सर्वत्र हरियाली छाई हुई थी।

श्रम　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　विलसित।

शब्दार्थ—श्रम=थकावट। ताप=गर्मी। पथ-पीड़ा=सफर की विपत्तियाँ। अंतर्हित=नष्ट। विराट=विशाल। धवल=शुभ्र। नग=पर्वत। महिमा=गरिमा। विलसित=सुशोभित।

भावार्थ—यहाँ का रमणीक दृश्य देखकर एक क्षण में ही थकावट, गर्मी और मार्ग की विपत्तियों का दुख नष्ट हो गया। सामने ही विशाल शुभ्र पर्वत था, जो अपनी गरिमा से सुशोभित था।

उसकी　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　निराली।

शब्दार्थ—तलहटी=घाटी। श्यामल=हरी। तृण=तिनका, घास।

पहचान ... झुकते।

शब्दार्थ—देव द्वन्द=देवताओं का जोड़ा, श्रद्धा और मनु। द्युतिमय=तेजोमय। प्रणति=प्रणाम।

भावार्थ—सब ने उन्हें पहचान लिया था, फिर भला वे कैसे रुक सकते थे! श्रद्धा और मनु का यह जोड़ा तेजोमय था इसलिए वे स्वयमेव ही उनकी वन्दना में झुक गए।

सब ... भरता।

शब्दार्थ—सोमवाही=सोम लता को ले जाने वाला। डग=कदम।

भावार्थ—तब सोम लता को लेकर चलने वाला बैल भी अपने घण्टे की ध्वनि करता हुआ इड़ा के पीछे-पीछे चला। मानव भी तेजी से कदम भर रहा था।

हाँ ... थी।

शब्दार्थ—निज=अपने। दृग-युगल=दोनों नेत्र।

भावार्थ—आज भी इड़ा अपने को भूल गई थी किन्तु इसके लिए वह श्रद्धा से क्षमा की कामना नहीं कर रही थी। वरन वह तो इस दृश्य को देखने के लिए अपने दोनों नेत्रों की सराहना कर रही थी।

चिर ... शोभन।

शब्दार्थ—चिर मिलित=सदैव सम्बद्ध रहने वाले। पुलकित=रोमांचित। चेतन पुरुष पुरातन=सनातन चेतना - शिव। तरंगायित=तरंगित। आनन्द अम्बु निधि=आनन्द का सागर। शोभन=रमणीय।

भावार्थ—वह शाश्वत चेतना जो कि सदैव अपनी प्रकृति से सम्बद्ध रहती है वह आनन्द में रोमांचित दिखाई दी। इड़ा ने शिव और शक्ति का अभिन्न रूप में देखा। आनन्द का रमणीय सागर अपनी शक्ति में तरंगित हो रहा था।

भर ... स्वामी।

शब्दार्थ—अङ्क=गोद।

भावार्थ—मानव श्रद्धा की गोदी को अपनाकर उसमें अपना सर रखे हुए था। इड़ा का सर श्रद्धा के चरणों पर था। इड़ा पुलकित होकर गद्गद्

स्वर में बोली—

"हे माता ! मैं यहाँ भूलकर आकर धन्य हुई हूँ । मुझे तो बस तुम्हारा प्रेम ही यहाँ तक खींचकर लाया है ।

भगवति मुझको ।

शब्दार्थ —भगवति=देवि ।

भावार्थ—हे देवी ! अब मैं समझ पाई हूँ कि पहले तो मैं बिलकुल भूल थी । मेरी यही भ्रान्त थी कि मैं सब को भ्रम में डाला करती थी ।

हम जाए ।"

शब्दार्थ—दिव्य=दैवी, स्वर्गीय । अघ=पाप ।

भावार्थ—इस स्वर्गीय तपोवन का नाम सुनकर आज हम सब एक कुटुम्ब बनाकर यहाँ आए हैं ताकि हमारे सारे पाप छूट जाए ।

मनु पराया ।

भावार्थ—मनु धीरे से मुस्कराए और उन्होंने इड़ा को कैलाश दिखाया और फिर से बोले—' देखो ! यहाँ पर कोई भी अपना या पराया नहीं है ।"

हम कमी है ।

शब्दार्थ—कुटुम्बी=सम्बन्धी । अवयव=अङ्ग ।

भावार्थ— हम और अन्य सम्बन्धी अलग-अलग नहीं हैं । हम तो बस हमीं ही हैं । तुम सब मेरे अङ्ग हो और तुम में कोई भी कमी नहीं है ।

शापित जहाँ हैं ।

शब्दार्थ—शापित=शाप युक्त । तापित=दुःखी । वसुधा=धरती । समतल= समभूमि, समरस ।

भावार्थ—यहाँ पर कोई भी शापग्रस्त नहीं है । कोई दुःखी, पापी भी यहाँ नहीं है । जीवन रूपी भूमि सम है । जो कुछ भी यहाँ है, उसमें समरसता का ही प्रसार है ।

चेतन ... है।

शब्दार्थ—चेतन समुद्र = चेतना का सागर। निर्मित बना हुआ आकार= मूर्ति।

भावार्थ—जिस प्रकार सागर में लहरें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार जीवन भी महाचेतना में जन्म लेता है। लहरों और सागर में अभेद है, उसी प्रकार जीवन और महाचिति में भी अभेद है। किन्तु व्यक्ति में कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं जिसके कारण उसकी अलग प्रतिमा का निर्माण होता है।

इस ... चमकाए।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चाँदनी। जलनिधि=सागर। बुद्बुद्=बुलबुला। आभा=प्रकाश।

भावार्थ—इस चाँदनी के सागर में बुलबुले के समान ही नक्षत्र दिखाई देते हैं जो कि अपना प्रकाश विकीर्ण करते हैं। इसी प्रकार उस महाचेतना के प्रसार में भी व्यक्ति अपना व्यक्तित्व अलग बनाए रखता है।

जैसे ... चरम है।

शब्दार्थ—अभेद=अद्वैत। सृष्टि-क्रम=विकास। चरम भाव=उच्चतम सत्ता।

भावार्थ—जिस प्रकार चाँदनी में तारे चमकते हैं, उसी प्रकार अद्वैत सत्ता के भीतर जीवन का विकास होता है। यह परम सत्ता सब में लीन रहती है, यह किसी से भी अलग नहीं है।

अपने ... सुन्दर।

शब्दार्थ—पुलकित=रोमांचित। मूर्त=स्थूल। सचराचर=जड़ और चेतन वस्तुओं के सहित। चिति=चेतना, मूल सत्ता। विराट=विशाल। वपु=शरीर। मंगल=कल्याणकारी। अखंड=अनन्त।

भावार्थ—अपने सुखों और दुखों में लीन यह स्थूल संसार जड़ और चेतन सृष्टि के सहित मूल चेतना का विशाल एवं कल्याणमय शरीर है। यह सत्य है, अनन्त है और इसमें अक्षय सौंदर्य है।

सब ... है।

शब्दार्थ—सुख-दुःख-संसृति=सुख का संसार। चूमता=मन्द बुद्धि। विस्मृति= अज्ञान।

भावार्थ –सब की सेवा करना किसी दूसरे की सेवा करना नहीं है। यह तो वास्तव में अपने ही सुख का संभार है। इस विश्व का अणु-अणु और कण-कण अपना ही है, हमसे अलग नहीं है। भेद बुद्धि ही तो अज्ञान है।

मैं सी।

शब्दार्थ—मैं=अहम्। स्पर्श=छूना। मादक=नशीला।

भावार्थ—सब के साथ अहम् का ज्ञान भी लगा हुआ है। यह अहम का ज्ञान ही सब भिन्न परिस्थितियों का नशीला घूँट पिया करता है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भी अहम का ज्ञान बना रहता है। प्रत्येक परिस्थिति का व्यक्ति पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है। और व्यक्ति अज्ञान के कारण ही भिन्न परिस्थितियों की कल्पना कर लेता है।

ऊषा घसता-सा!

शब्दार्थ –ऊषा के दृग में=ऊषा के नेत्रों में, ऊषा की छाया में। निशि= रात। अलक=बाल। उलझन वाली अलकों में=उलझी हुई चेतना में। चेतन=आत्मा। निर्विकार=पवित्र। मानस=हृदय।

भावार्थ –मनुष्य ऊषा की मधुर छाया में जाग उठे, रात के समय सो ले और उलझी हुई चेतना के कारण स्वप्न देख ले। जब चेतना में कोई विशिष्ट कामना रह जाती है, तभी स्वप्न का उदय होता है जो उलझा होता है, धुँधला होता है।

किन्तु इन सभी दशाओं में आत्मा का साथी मनुष्य पवित्र होकर सदैव आनन्द में लीन रहे और हृदय के मधुर मिलन की गहरी अनुभूति करता चले। सब प्राणियों के साथ अपने अभेद की अनुभूति करे।

सब आता!"

शब्दार्थ—दृश्य=अभिनय, जिसे मनुष्य तटस्थ रूप से देखे। नीड़= घोंसला।

भावार्थ—हे मानव! तू जनता के सारे भेद भाव को भुलवा दे तथा सुख और दुख को दर्शक की भाँति देखता रह। और इस अवस्था को प्राप्त करके इस बात की घोषणा कर कि यही मेरा वास्तविक स्वरूप है। यदि तू ऐसा कर सके तो सारा संसार ही एक घोंसला बन जाएगा।

श्रद्धा ……… रेखाएँ।

शब्दार्थ—मधु अधर=सुन्दर होंठ। रागारुण=प्रेम से लाल। स्मिति लेखाएँ=मुस्कराहट की रेखाएँ।

भावार्थ—श्रद्धा के सुन्दर होंठों की छोटी-छोटी रेखाएँ प्रेम से लाल किरण के माधुर्य के समान मुस्कराहट के रूप में फैल गई। वह मुस्कराने लगी।

वह ……… वन बेली।

शब्दार्थ—मंगल कामना=कल्याण की आकांक्षा। द्युतिमती=कांतिमान। प्रफुल्लित=खिली हुई। मानसतट=मानसरोवर का किनारा। वन-बेली=वन की लता।

भावार्थ—अकेली कामायनी ही संसार के कल्याण की कामना करती थी। वह कांतिमान थी, हर्षित थी और मानसरोवर के किनारे की फूलों से युक्त लता के समान रमणीय थी।

वह ……… गरिमा।

शब्दार्थ—विश्व चेतना=विराट चेतना। प्रतिमा=मूर्ति। महाह्रद=विशाल मान सरोवर। विमल=निर्मल।

भावार्थ—वह रोमांचित विराट चेतना के समान थी। वह सब कामनाओं की पुष्टि की मूर्ति थी। वह निर्मल जल से भरे हुए विशाल मानसरोवर के समान महिमा से भरी थी। प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सामंजस्य है।

जिस ……… होता।

शब्दार्थ—निस्वन=ध्वनि। रागमय=प्रेमपूर्ण। जग जग=जड़ और चेतन मुखरित=मुखरित।

भावार्थ—वह कामायनी जब हँसती थी तो जड़ और चेतन सभी उससे गूँज उठते। जिस प्रकार मुरली की ध्वनि से भरा सूना वातावरण प्रेमपूर्ण और मधुर हो जाता है उसी प्रकार कामायनी की हँसी से सारा वातावरण मुखरित हो उठता था।

घण ... छलक।

शब्दार्थ—परिवर्तित=बदल गए। विश्व कमल=संसार रूपी कमल। पिंगल पराग=पीला पुष्प रज। आनन्द-सुधा रस छलके=आनन्द रूपी अमृत के रस से छलकते हुए।

भावार्थ—एक पल भर में ही संसार रूपी कमल का एक एक कण बदल गया। सारा संसार आनन्द और सुगन्धि से भर गया। जिस प्रकार कमल से पीला पराग बिखरता है उसी प्रकार उस विश्व रूपी कमल से आनन्द रूपी अमृत के रस से लदे हुए पीले पराग कण से बिखर पड़े।

मति ... रञ्जित।

शब्दार्थ—गंधवह=गंध को धारण करने वाला वायु। परिमल बूंद=सुगन्धित रस की बूंदें। सिञ्चित=भीगा हुआ। स्पर्श=छूना। कमल केसर=का वह भाग जिसमें पराग के कण संलग्न होते हैं। रज=पराग। रञ्जित=रङ्गीन।

भावार्थ—उस समय अत्यन्त मृदुल वायु बह रही थी। वह पुष्प रस की बूंदों से लदी थी। वह कमलों के केसर से स्पर्श करके अपने आपको पराग से रंगीन बना आया था। वायु में कमलों का पराग इतना अधिक था, कि वह रङ्गीन हो गई थी।

जैसे ... लाया।

शब्दार्थ—मुकुल=कली। मादन=मोहक। चुम्बन=स्पर्श।

भावार्थ—ऐसा प्रतीत होता था मानो वह वायु अनगिनत कलियों का मोहक विकास करके आ रहा था। इसीलिए उसमें इतनी सुगन्धि भरी थी। वह कलियों के होठों को खूब चूम-चूम कर आया था। कलियों के इस अधिक संसर्ग के कारण ही उसमें इतनी मोहकता आ गई थी।

रुक ... फूला।

शब्दार्थ—नव=नवीन। कनक-कुसुम रज=सुनहरी फूलों का पराग। धूसर=युक्त। मकरन्द=पुष्प रस। जलद=बादल।

भावार्थ—वायु रुक रुक कर इठलाता हुआ चल रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कुछ भूल गया हो, क्योंकि भूला हुआ व्यक्ति ही कुछ

महरता हुआ सा सोचता हुआ सा चलता था। वह वायु नवीन सुनहरी फूलों के पराग से भरा हुआ था। वह पुष्प रस के मादक के समान हर्षित था। जैसे बादलों में जल भरा होता है, उसी प्रकार वायु में पुष्प रस भरा था।

जसे निज।

शब्दार्थ—वन लक्ष्मी=वन की श्री। केसर रज=केसर का पराग। हेम कूट=सोने का पर्वत। हिमजल=बर्फ के समान जल।

भावार्थ—उस पराग से युक्त वायु को देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो वनदेवी ने केसर का पराग बिखेर दिया हो। अथवा ऐसा प्रतीत होता था मानो सोने का पर्वत पर के स्वच्छ जल में अपनी परछाईं झलका रहा है।

संसृति मंगल।

शब्दार्थ—संसृति=संसार। मधुर मिलन=प्रेममय मिलन। उच्छ्वास=साँस। निज दल=अपना समूह। अभिनव=नवीन। मंगल कल्याणकारी गीत।

भावार्थ—वायु चल रही थी और उसके चलने से मधुर शब्द होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो संसार के प्रेम पूर्ण श्वास अपना समूह बनाकर नवीन शुभ गीत गाते हुए आकाश रूपी आँगन में चले जा रहे थे।

वल्लरियाँ ठहरे।

शब्दार्थ—वल्लरियाँ=लताएँ। नृत्य-निरत=नृत्य में लीन। रेणु रंध्र=बाँस के छिद्र। मूर्छना=तान।

भावार्थ—वायु के चलने से लताएँ नाच रही थीं। सुगन्धि की लहरें इधर उधर बिखरी थीं। जब वायु बाँस के छिद्रों से टकराती थी तो संगीत की मधुर तान उत्पन्न होती थी। वायु की तेजी के कारण वह भी अत्यन्त चंचल हो रही थी।

गूँज उठा कर।

शब्दार्थ—मदमाते=मस्त। मधुकर=भँवरे। वाणी=सरस्वती।

भावार्थ—मग्न होकर भँवरे गुंजार कर रहे थे। उनकी गुंजार नूपुरों की

ध्वनि के समान थी। वह ध्वनि ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश में सर स्वती की वीणा झनझना उठी हो।

उन्मद झड़ते।

शब्दार्थ—उन्मद=मस्त। माधव=वसंत। मलयानिल=मलय पवन। परिमल=सुगन्ध। काकली=कोयल की ध्वनि।

भावार्थ—वसन्त के वायु के झौंके मस्त होकर गिरते पड़ते दौड़ रहे थे। जैसे शराबी व्यक्ति गिरता-पड़ता रुक-रुक कर चलता है, उसी प्रकार वह वायु भी रुक-रुक कर चल रही थी। कोयल की कूक सुगन्धि से नहाकर बिखर रही थी। पवन के झोंकों से कलियों से फूल झड़ रहे थे।

सिकुड़न पर।

शब्दार्थ—कौशेय=रेशमी। वसन=वस्त्र। विश्व-सुन्दरी=संसार रूपी सुन्दरी। मादन=मस्त कर देने वाला। मृदु तम=अत्यन्त कोमल। सृजन= सृष्टि।

भावार्थ—पुष्प रस से रंगीली वह वायु ऐसी प्रतीत होती थी मानो संसार रूपी सुन्दरी के शरीर पर रेशमी वस्त्र की सिकुड़न हो। अथवा सारी सृष्टि के ऊपर मस्ती भरा और अत्यन्त कोमल कम्पन सा छा गया है।

सुख निर्भय।

शब्दार्थ—सहचर=साथी। विदूषक=हँसाने वाला पात्र जो सदैव राजाओं के साथ रहता था। परिहास पूर्ण=हँसी से भरा। अभिनय=नाट्य। पट= वस्त्र।

भावार्थ—सुख उस विश्व सुन्दरी का साथी था। सुख उसको हँसाने वाला था। वह अपना हास्यपूर्ण अभिनय करके अब सब की विस्मृति के पर्दे में निर्भय होकर किया गया था। जैसे रंग मंच पर विदूषक अपना अभिनय करके रंगमंच के पीछे चला जाता है। अब सब लोग सुख को भूल गए थे।

सुख को विदूषक इसलिए कहा कि दुःख के पश्चात ही सुख की प्राप्ति आती है। दूसरा कारण यह भी है कि बीती हुई सुख-पूर्ण घटनाएँ मनुष्य की प्रस न्नता का कारण ही होती है।

थ .... बरसे।

शब्दार्थ—मधुमय=रसीले। मृदु=कोमल। मुकुल=कलियाँ। प्रफुल्ल=खिले। सुमन=फूल।

भावार्थ—प्रत्येक डाली में रसीली और कोमल कलियाँ झालर के समान सुशोभित थीं। रस के भार से विकसित सारे फूल ही धीरे-धीरे झड़ गए थे।

हिम खण्ड .... बजाता।

शब्दार्थ—हिम-खण्ड=बर्फ का टुकड़ा। रश्मि मंडित=चन्द्रमा की किरणों से युक्त। मणि-दीप=मणि का दीपक। समीर=वायु। मृदंग=एक बाजा जो ढोलक जैसा है।

भावार्थ—बर्फ के खण्ड चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित होकर मणिमय दीपकों का सा प्रकाश विकीर्ण कर रहे थे। जब वायु उनसे टकराती थी तो मृदंग के समान मधुर ध्वनि निकलती थी।

संगीत .... की।

शब्दार्थ—संकेत=इंगित।

भावार्थ—मनोहर संगीत सर्वत्र व्याप्त था। जीवन की मुरली बज रही थी, जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो रहा था। कामना इशारे मन का मिलन का उपाय बता रही थी। सब मनुष्यों की भाव-भंगिमा से उनके हृदय के मिलन की अनुभूति प्रदर्शित होती थी।

रश्मियाँ .... थीं।

शब्दार्थ—रश्मियाँ=किरणें। अन्तरिक्ष=आकाश। परिमल=सुगन्धि। रंगमंच=नृत्य आदि करवाने का ऊँचा स्थान।

भावार्थ—चन्द्रमा की किरणें अप्सराओं के समान आकाश में नाच रही थीं। वे सुगन्धि का कण-कण लेकर अपने नृत्य के रंगमंच का निर्माण कर रही थीं।

मांसल .... कल्याणी।

शब्दार्थ—मांसल=सजीव। हिमवती=बर्फीली। पाषाणी=पथरीली। पवनीय। लास=भंगिमा। रास=नृत्य। विहसित=मुस्कित। कल्याणी=मंगलमय।

भावार्थ—आज यह बर्फीली और पथरीली प्रकृति सजीव सी दिखाई

देती थी। उसमें चेतना की अनुभूति हो रही थी। यह मङ्गलमय प्रकृति उस नृत्य तथा भंगिमाओं के बीच हँसती सी दिखाई देती थी।

यह नर्त्तन।

शब्दार्थ—चन्द्र किरीट=चन्द्रमा का मुकुट। रजत नग=चाँदी का पहाड़। स्पन्दित=कम्पित। पुरातन=सनातन। मानसी गौरी=हृदय रूपी पार्वती।

भावार्थ—यह चाँदी सा सफेद पर्वत चन्द्रमा का मुकुट धारण किए हुए शिव के समान प्रतीत होता था। शिव भी चन्द्रमा का मुकुट धारण करते हैं और पर्वत के ऊपर भी चन्द्रमा उदित था। शिव भी गौर वर्ण के हैं, वह पर्वत भी चाँदी सा सफेद है। जिस प्रकार शिव अपनी शक्ति रूपा पार्वती के के नृत्य को देखते हैं, उसी प्रकार पर्वत भी मानसरोवर में लहरों का नृत्य देख रहा था।

प्रतिफलित से।

शब्दार्थ-=प्रतिफलित=सफल। प्रेम ज्योति=प्रेम के प्रकाश वाली। विमल=पावन श्रद्धा। कला=प्रकाश।

भावार्थ—प्रेम का प्रकाश फैलाने वाली उस श्रद्धा का दर्शन कर सबकी आँखें सफल हुई। सभी व्यक्ति अपने ही प्रकाश के कारण एक दूसरे को पह चाने से दिखाई देते थे।

समरस था।

शब्दार्थ—साकार=मूर्त्त। खिलखती=शोभा देती।

भावार्थ—उस समय जड़ और चेतन सब में सामरस्य थे। कहीं भी विषमता नहीं थी। उस समय सौंदर्य मूर्त्त हो गया था। सर्वत्र चेतन शक्ति ही सुशोभित थी। उस समय सबको गम्भीर तथा अखण्ड आनन्द की अनु भूति हो रही थी।

अन्तिम छन्द में प्रसादजी ने जीवन की उच्चतम अनुभूति को व्यक्त किया है। यह अनुभूति सामरस्य की है जिसमें मनुष्य सारे भेदों तथा विषमताओं से ऊपर उठ जाता है। जीवन की यह परम अनुभूति जिसम मनु और श्रद्धा को ही नहीं होती वरन् सारस्वत प्रदेश के सारे निवासियों को—जो जीवन में पगे हैं—भी होती है।